देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
May 2025
Vol.-21, Issue-5

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

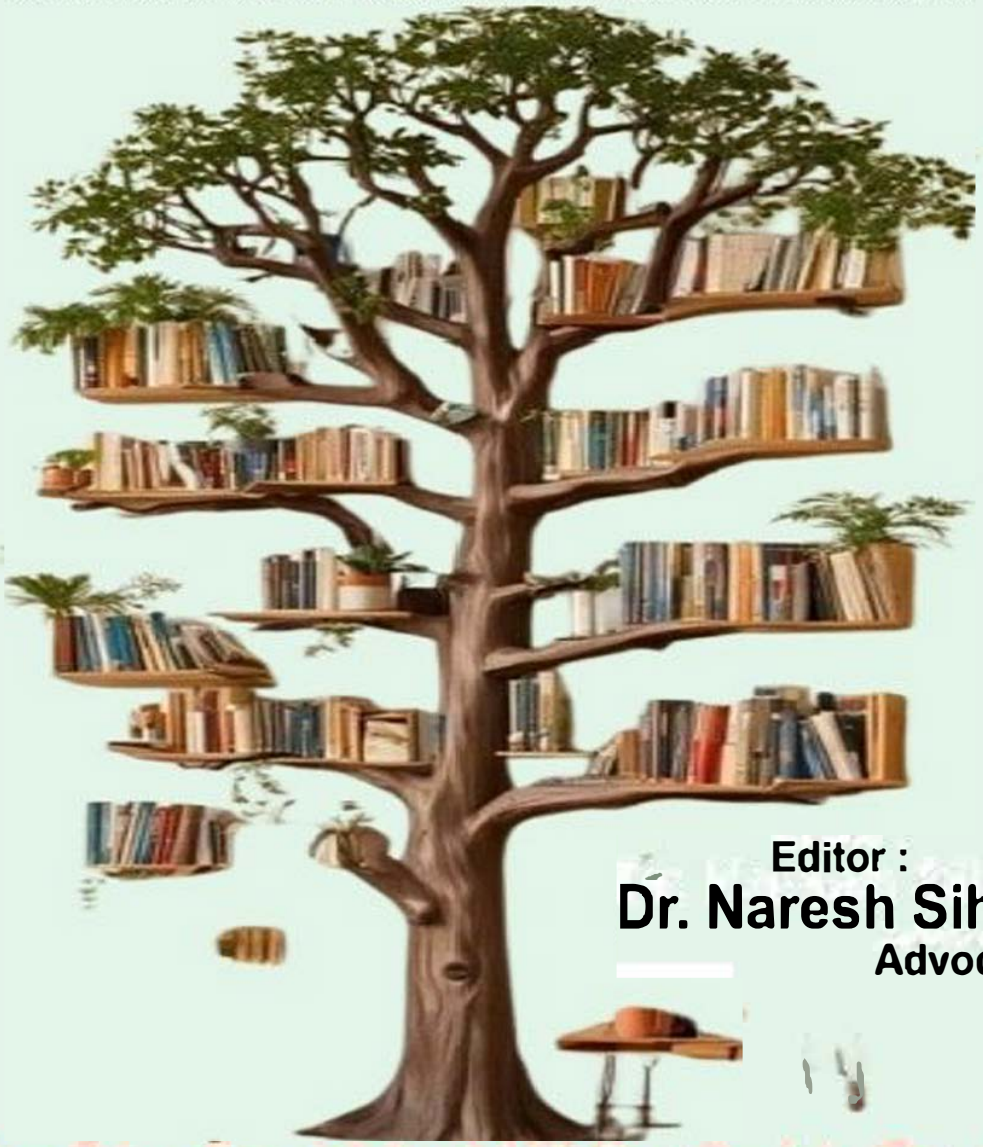

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol.21 ISSUE-5 (मई 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमणिका - मई 2025

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10-10
2.	“गीता में मनसूत्र"	राजेंद्र	11-15
3.	અખિલન રચિત 'ચિત્તિરપાવૈ" નવલકથામાં સ્ત્રી-પુરુષ સંબંધ	DR. MANISH PATEL	16-19
4.	ग्रामीण जनजाति का सामाजिक एवं आर्थिक और राजनितिक स्वरूप में परिवर्तन का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (झारखंड के उरांव जनजाति के संदर्भ में)	राजकुमार	20-25
5.	ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानी संग्रह 'सलाम' की भाषा और शिल्प	नरेश कुमार, डॉ० प्रफुल्ल कुमार	26-38
6.	डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी की दृष्टि में नई शिक्षा नीति, 2020	डॉ. श्याम सिंह	39-43
7.	कबीर : एक वाणी तानाशाह ?	तमन्ना	44-48
8.	ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ-ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦੇ ਸੰਦਰਭ 'ਚ	ਡਾ. ਲਖਵਿੰਦਰ ਕੌਰ	49-53
9.	हिंदी दलित स्त्री कहानियों में महिलाओं का सामाजिक एवं आर्थिक संघर्ष	श्रीमती पार्वती, प्रो. प्रीति आर्या	54-59
10.	Mathematics plays a crucial role in the fild of Artificial Intelligence (AI)	Dr.Vivek Kumar Nmdeo	60-63
11.	‘हेराका' एक धार्मिक-सामाजिक आंदोलन: पूर्वोत्तर भारत के संदर्भ में	डॉ. गोमा दे. शर्मा	64-68
12.	اعلیٰ تعلیم میں ابھرتے ہوئے رجحانات (زبان وادب کے بدلتے ہوئے رجحانات)	Sayyed Abdul Hannan Hilaluddin	69-71
13.	बदले शक्ति ध्रुवीकरण में विश्व राजनीति	भंवराराम	72-74
14.	राजस्थानी लोक गीत : एक सांस्कृतिक धरोहर	रविन्द्र	75-76
15.	विश्व की प्राचीन जीवित भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का आधार ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता'	कु० स्वीटी यादव	77-79
16.	पितृसत्तात्मक अवधारणा और किन्नर समाज (‘मैं पायल' उपन्यास के संदर्भ में)	आशिमा गोयल	80-84

17.	A STUDY OF E-BANKING IN INDIA	Dr. Anju Singla	85-89
18.	हिन्दी साहित्य में कबीर के दोहों का योगदान	डॉक्टर वैशाली सिंह	90-93
19.	AN ANALYSIS OF WORKING CAPITAL MANAGEMENT AND FINANCIAL STATEMENTS OF BSSKM SUGAR FACTORY OF C.G.	Mr. Linendra Kumar Verma, Dr. Harjinder Pal Singh Saluja,	94-100
20.	सूरदास के साहित्य में वात्सल्य वर्णन	डॉ मिनाक्षी सोनवणे,	101-104
21.	419 वें शहादत दिवस (30 मई सन 2025 ई.) पर विशेष :- शहीदों के सरताज: श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी की जीवन-गाथा	डॉ. रणजीत सिंह 'अर्श'	105-109
22.	दिल्ली की पहली महिला शासक रजिया सुल्तान की शासन-व्यवस्था : एक अध्ययन	रोहित रंजन	110-115
23.	मानव भाषा: लक्षण, प्रवृत्ति और विशेषताएँ	सविता अधाना	116-119
24.	गंगा मैया : शोषित समाज के संघर्ष का एक जीवंत दस्तावेज	डॉ॰ पूजा	120-123
25.	भारतीय ज्ञान परंपरा में योग का इतिहास-दर्शन और पतंजलि	जीवन कुमार साह	124-131
26.	'गीतांजलि श्री' के उपन्यासों में सामाजिक रीति-रिवाज एवं मानवीय मूल्यों में सरोकार	सुरेश कुमार, डॉ कविता चौधरी	132-136
27.	केरल में राजभाषा हिन्दी	सुजिता एल	137-141
28.	Value Crisis among Youth in Present Scenario	Dr. Harpreet Kaur	142-144
29.	Selfless Action and Moral Duty: Nishkama Karma in Light of Kant's Deontological Ethics	UtpalGogoi	145-148
30.	आधुनिकताबोध क्या है?	उमा, पी.राजरत्नम	149-152
31.	शिक्षा में वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर छात्रों की आत्मवधारणा का अध्ययन	डॉक्टर वैशाली सिंह	153-157
32.	नारी विमर्श: एक बहुआयामी दृष्टिकोण	डॉ॰ निशा चौहान	158-163
33.	हरियाणवी लोक साहित्य में श्रम गीत एवं राष्ट्र प्रेम	डॉ. मधु बाला	164-167
34.	Concept of Niskama Karma: An Analytical Study *(Special reference to Bhagavat Gita)*	Dr. Appu Borah	168-171

35.	चार्वाक दर्शन	डॉ. रंजीता कटकवार	172-175
36.	हिन्दी साहित्य मैं भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान	डॉक्टर वैशाली सिंह	176-180
37.	अमृतलाल नागर के उपन्यास 'नाच्यो बहुत गोपाल' में दलित चित्रण	डॉ0 निशा चौहान	181-185
38.	हिंदी भाषा और हिंदी सिनेमा	प्रा. छाया गुलाबराव जाधव	186-189
39.	कृषक समाज और कृषि नीति (शिक्षा)	बॉबी	190-194
40.	निर्मल वर्मा और कृष्णनाथ के यात्रा साहित्य में समकालीन परिवेश : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	रीना कुमारी, डॉ. मीनू	195-198
41.	भारत : वैश्विक शान्ति निर्माता	विनोद कुमार, डॉ. एस. के. सिद्धार्थ	199 -203
42 .	इक्कीसवीं सदी की दलित हिन्दी कविताएँ: प्रतिरोध का आख्यान	चंद्रकांत यादव, डॉ. दीनानाथ मौर्य	204 -210
43.	THE ROLE OF HUMAN FACTORS IN CYBER SECURITY VULNERABILITY	Dr. Ved pal	211-217
44.	महिला कलाकारों की चुनौतियां और संगीत में उनकी उपलब्धियां	डॉ० रचना	218-222
45.	भूगोल एक विज्ञान के रूप में	अन्नू यादव	223-226

संपादकीय

प्रिय पाठकों!

"बोहल शोध मंजूषा" के इस मई अंक में आप सभी का हृदय से स्वागत है। जब हम किसी रचनात्मक परियोजना को आकार देते हैं, तो उसमें केवल शब्द नहीं, बल्कि समय, संस्कृति, संवेदना और सामाजिक चेतना की सघन उपस्थिति होती है। यह पत्रिका भी उसी भाव-प्रवाह का हिस्सा है - जहाँ साहित्य न केवल मनोरंजन करता है, बल्कि मार्गदर्शन देता है, प्रश्न खड़े करता है, और जीवन के विविध पहलुओं को उकेरने का माध्यम बनता है।

जब दुनिया लगातार तकनीक, राजनीति, जलवायु परिवर्तन और सामाजिक असमानताओं के बीच बदल रही है, तब साहित्य और शोध का कार्य केवल इतिहास को दर्ज करना नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए चेतना का बीज रोपना भी है। ऐसे समय में 'बोहल शोध मंजूषा' का यह अंक उन विचारशील हस्तक्षेपों की झलक देता है जो समय की धड़कनों को पहचानते हैं।

आज जब युवा पीढ़ी सोशल मीडिया और तेज़ भागती तकनीकी दुनिया में संलग्न है, तब साहित्य को उनके लिए अधिक प्रासंगिक और संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है। हमें यह समझना होगा कि भावनाएँ, मूल्य और संस्कृति सिर्फ पाठ्यक्रम में नहीं, बल्कि जीवंत अभिव्यक्ति में सांस लेती हैं।

आज शोध-कार्य को यदि केवल डिग्री या प्रकाशन की दृष्टि से देखा जाएगा, तो वह अपनी मूल भूमिका खो देगा। शोध का मूल उद्देश्य समाज, मनुष्य और विचार की गहराइयों को समझना है। हमें इस बात की सतत कोशिश करनी चाहिए कि शोध का स्तर केवल संदर्भ ग्रंथों तक सीमित न रहे, बल्कि वह जीवित अनुभवों और सामाजिक यथार्थ से जुड़कर आगे बढ़े। 'बोहल शोध मंजूषा' इस दिशा में एक छोटा लेकिन सशक्त प्रयास है।

हम इस अंक में योगदान देने वाले सभी लेखकों, समीक्षकों, तकनीकी सहायकों और पाठकों का धन्यवाद करते हैं। आपकी भागीदारी ही हमारी सबसे बड़ी प्रेरणा है। अगर आपके पास सुझाव, आलोचना या विचार हों, तो हमें अवश्य लिखें – क्योंकि 'बोहल' केवल एक संपादकीय इकाई नहीं, बल्कि एक सहभागी यात्रा है।

आइए, हम सब मिलकर साहित्य और समाज के इस जीवंत संवाद को आगे बढ़ाएँ।

आपका,

डॉ॰ नरेश सिहाग, एडवोकेट

'संपादक' बोहल शोध मंजूषा

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 11-15
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"गीता में मनसूत्र"

राजेंद्र, असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय कांस्टीचुयेंट कालेज सिंखवाला ,श्री मुक्तसर साहिब, पंजाब, भारत।

भूमिका :

१ .एक मात्र नित्य चेतन सत्ता जो जगत का कारण हैं। वही चेतन सत्ता जगत को चला रहीं हैं । १. एक अकार है रब का। ॐ अक्षर ध्वनि (आवाज) शब्द है । जिसे शास्त्रों में अनाहद नाद कहा गया है। रब निराकार भी है और साकार भी ।

राजेंद्र नाम का अर्थ - धंना, सम्राट्, राजाओं का राजा ।

कर्मेन्द्रियाँ जड़ पदार्थ की अपेक्षा श्रेष्ठ है, मन इन्द्रियों से बढ़कर है, बुद्धि मन से भी उच्च है और वह (आत्मा) बुद्धि से भी बढ़कर है।

इन्द्रियाँ काम के कार्यकलापों के विभिन्न द्वार है। काम का निवास शरीर में है, किन्तु उसे इन्द्रिय रूपी झरोखे प्राप्त है। अतः कुल मिलाकर इन्द्रियाँ शरीर से श्रेष्ठ हैं आत्मा भगवान् के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करता है, अतः यहाँ पर वर्णित शारीरिक कार्यों की श्रेष्ठता परमात्मा में आकर समाप्त हो जाती है। शारीरिक कर्म का अर्थ है– इन्द्रियों के कार्य और इन इन्द्रियों के अवरोध का अर्थ है– सारे शारीरिक कर्मों का अवरोध। लेकिन चूँकि मन सक्रिय रहता है, अतः शरीर के मौन तथा स्थिर रहने पर भी मन कार्य करता रहता है– यथा स्वप्न के समय मन कार्यषील रहता है। किन्तु मन के ऊपर भी बुद्धि की संकल्पषक्ति होती है और बुद्धि के ऊपर स्वयं आत्मा है। अतः यदि आत्मा प्रत्यक्ष रूप में परमात्मा में रत हो तो अन्य सारे अधीनस्थ – यथा –बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ –स्वतः रत हो जायेंगे। इन्द्रिय विषय इन्द्रियों से श्रेष्ठ हैं और मन इन्द्रिय–विषयों से श्रेष्ठ है। अतः यदि मन रब की सेवा में निरन्तर लगा रहता है तो इन इन्द्रियों के अन्यत्र रत होने की सम्भावना नही रह जाती। इस मनोवृत्ति की विवेचना की जा चुकी है। यदि मन भगवान् की दिव्य सेवा में लगा रहे तो तुच्छ विषयों में उसके लगने की सम्भावना नहीं रह जाती। आत्मा को महान कहा गया है। अतः आत्मा इन्द्रिय–विषयों, इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि –इन सबसे ऊपर है। अतः सारी समस्या का हल यह ही है कि आत्मा के स्वरूप को प्रत्यक्ष समझा जाए। ''जो लोग इन्द्रियभोग तथा भौतिक ऐश्रवर्य के प्रति अत्यधिक आसक्त होने से ऐसी वस्तुओं से मोहग्रस्त हो जाते हैं, उनके मनों में भगवान् के प्रति भक्ति का दृढ़ निश्चय नहीं होता।''

''जब मनुष्य मनोधर्म से उत्पन्न होने वाली इन्द्रियतृप्ति की समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है और जब इस तरह से विशुद्ध हुआ उसका मन आत्मा में सन्तोष प्राप्त करता है तो वह विशुद्ध दिव्य चेतना को प्राप्त (स्थितप्रज्ञ) कहा जाता है।''

मनुष्य को चाहिए कि बुद्धि के द्वारा आत्मा की स्वाभाविक स्थिति को ढूंढे और फिर निरन्तर परमात्मा में लगाये रखे। इससे सारी समस्या हल हो जाती है। सामान्यतः नवदीक्षित अध्यात्मवादी को इन्द्रिय–विषयों से दूर रहने की सलाह दी जाती है। किन्तु इसके साथ मनुष्य को अपनी बुद्धि का उपयोग करके मन को सषक्त बनाना होता है। यदि कोई बुद्धिपूर्वक अपने मन को भगवान् के शरणागत होकर लगाता है, तो मन स्वतः सषक्त हो जाता है और यद्यपि इन्द्रियाँ सर्प के समान अत्यन्त बलिष्ट होती हैं, किन्तु ऐसा करने पर वे दन्त–विहीन साँपों के समान अषक्त हो जाएँगी। यद्यपि आत्मा बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों का भी स्वामी है तो भी जब तक इसे सदृढ नहीं कर लिया जाता तब तक चलायमान मन के कारण नीचे गिरने की पूरी सम्भावना बनी रहती है। विष्णु के दस अवतारों में श्री कृष्ण का स्थान मुख्य रूप से लिया जाता हैं।

जिसके द्वारा सब क्रियाकलापों को क्रियानवृत किया जाता है। उसे साधारण भाषा में मन कहते हैं। अंतर्मन और मन अंतर्मन – जो प्रमुख विधुत तरंग उत्पन्न करने वाला बिन्दु है यही से स्वयं के जीवन का उचित मार्गदर्शन होता है मन दूसरा विधुत तरंग बिन्दु यहीं मन किसी की भी बातों में आ जाता हैं यहीं अनेक प्रेम प्रसंग में आकर्षित होता है यहीं क्रोध यहीं छोटी बातों में गुस्सा करता है यही मन लालची होती है यही मन देश दुनिया परिवार से प्यार करता है यहीं मन धन दौलत नाम प्रसिद्धि प्राप्त कर घमण्डी या अहंकारी बना देता है मनुष्य को इसलिए इसको हराकर इसके भीतर जो अंतर्मन है जो सदैव मनुष्य को सत्य मार्ग दिखाता है परमात्मा से जुड़ता है जो सुख शांति आनंद देता है उस तक पहुंचाता है पहुंचाने वाला स्वयं की मस्तिष्क की चेतना है। हृदय या दिल में मन रहता है उसके भीतर अंतर्मन रहता है जो मन के चक्कर में रहता है वह दुखी रहता है। संसारिक जीवन के कर्तव्य उत्तदायित्व व उद्देश्य की पूर्ति के लिए उलझे रहता है परंतु इसके भीतर अंतर्मन होता है उस तक पहुंच जाने पर सारे दुखों का नाश हो जाता है सही मायने में यहीं भगवान है। मन अंतर्मन तक पहुंचने से रोकता है इसलिए मन को धार्मिक ज्ञान से स्वयं को वश में करना पड़ता है स्वयं अर्थात मस्तिष्क में जो चेतना है वहीं जागते समय खुद है। अंतर्मन में पहुंच जाना मुक्ति है मोक्ष है देश दुनिया परिवार समाज के दुख सुख से कोई फर्क नही पड़ता स्वयं को दुख सुख से भी कोई फर्क नहीं पड़ता हमेशा इंसान खुश व आनंदित रहता है। इसलिए तो कहते हैं मन का नाटक है दुख सुख असली में आत्मा चिर आनंदित रहती है इसलिए स्वयं के दिमाग को दिल के अंतर्मन से जोड़ देना चाहिए। '' जिस पुरूष की इन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों से सब प्रकार से विरत होकर उसके वश में हैं, उसी की बुद्धि निस्सन्देह स्थिर है।, '' [1]

अंतर्मन में स्वयं चेतना की चेतना को स्थापित कर देने पर संसारिक दुख से कोई फर्क नही पडता न गरीबी ना बदसूरती का ना अपमान का ना परिवारिक के सदस्य मित्र प्रियजन की मौत का दुख होता है प्रेमिका पत्नी धोखा दे भी तो कोई दुख नहीं होता देश दुनिया मानव समाज में अशांति हो युद्ध हो अराजकता हो तो भी कोई फर्क नही पड़ता हर चीज में असफल हो जाऐं तो भी दुख नहीं होता वहीं अमीरी प्रसिद्धि ज्ञानी सौन्दर्य युक्त होने पर भी अहंकार नही होता पत्नी परिवार अच्छे हो सुखी हो तो भी उनके सुख व अच्छाई से कोई महत्व नही होता है यही स्थिति परमानंद को प्राप्त करना है अर्थात परमात्मा को प्राप्त करना है। '' जिस व्यक्ति ने इन्द्रियतृप्ति की समस्त इच्छाओं का परित्याग कर दिया है, जो इच्छाओं से रहित रहता है और जिसने सारी ममता त्याग दी है तथा अंहकार से रहित है, वही वास्तविक शान्ति को प्राप्त कर सकता है।, '' [2]

मन एक ऐसा शब्द है जिससे प्रत्येक व्यक्ति परिचित है,। मनुष्य का मन ही समस्त शक्तियों का स्त्रोत होता है मन की दो शक्तियां होती हैं, एक कल्पना शक्ति तथा दूसरी इच्छा शक्ति। मन की कल्पना शक्ति के बढने पर व्यक्ति कवि, वैज्ञानिक, अनुसंधान कर्ता, चित्रकार, साहित्यकार बनता है अपनी कल्पना शक्ति का विकास लोगों को अच्छी कवितायें, अच्छा साहित्य, अच्छे मित्र तथा वैज्ञानिक खोजों से मनुष्य को सुखी सम्पन्न बनाता है तथा मनोरंजन कर व्यक्ति के जीवन में खुशियों की बहार ले आता है।

जब व्यक्ति की इच्छा शक्ति का विकास होता है तो इस मन से व्यक्ति प्रत्येक कार्य को करने में सक्षम हो जाता है वह चाहे तो अमीर बन सकता है वह चाहे तो स्वयं स्वस्थ रह सकता है तथा ओरों को भी स्वस्थ रख सकता है वह चाहे तो परमात्मा का भी अनुभव कर सकता है। अध्यात्मिक उन्नति के लिए भी आवश्यक है कि व्यक्ति मन को वश में करे। '' जो कर्मेन्द्रियों को वश में तो करता है, किन्तु जिसका मन इन्द्रियविषयों का चिन्तन करता रहता है, वह निश्चित रूप से स्वयं को धोखा देता है और मिथ्याचारी कहलाता है।'' [3]

यदि आप मानसिक शांति को प्राप्त करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम मन को वश में करें। हमारे सारे सुख तथा कष्टों का कारण भी है मन पर उचित नियंत्रण न होना। मन हमारा मालिक बन बैठा है तथा हमें यह नचा रहा है जबकि वास्तव में हम मन के मालिक हैं। हमें चंचल मन की चचलता को कंट्रोल कर उसे केंद्रित करना होगा तभी हमारे जीवन के दुखों का अन्त होगा।

मन की एकाग्रता हमें एक दूसरे से भिन्न बनाती हे तथा कार्य करने की क्षमता में अंतर ला देती है जिससे कोई व्यक्ति जीवन में सफलता प्राप्त करता है जबकि कोई असफल व्यक्ति की श्रेणी में आ जाता है। यदि मन को केंद्रित कर लें तो व्यक्ति का व्यक्तित्व पुरा बदल जायेगा तथा मानसिक शांति प्राप्त होगी। तथा व्यक्ति एकाग्र मन से जो भी कार्य करेगा उसमे सफलता प्राप्त होगी। '' दूसरी

ओर यदि कोई निष्ठावान व्यक्ति अपने मन के द्वारा कर्मेन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करता है और बिना किसी आसक्ति के कर्मयोग प्रारम्भ करता है, तो वह अति उत्कृष्ट है।, ''[4]

मन हमारे भीतर की शक्ति है जो इन्द्रियों एवं मस्तिष्क के दवारा देखता है, सुनता है, सुंघता है, स्वाद लेता है, तथा स्पर्श की अनुभूति करता है। मन शरीर को सुख दुख का अनुभव कराता है। व्यक्ति जब बेहोशी की अवस्था में होता है तब मन का संपर्क शरीर से टूट जाता है इस कारण बेहोशी में आपरेशन करने के कारण दर्द महसूस नही हेाता।

कई लोग मस्तिष्क को मन ही समझ लेते हैं वह गलत है मस्तिष्क एक कम्प्यूटर की तरह का उपकरण है जिसके द्वारा मन शरीर पर नियंत्रण रखता है। अर्थात मस्तिष्क शरीर व मन को जोडने का कार्य करता है। शरीर पांच तत्वों से बना हुआ निर्जीव पुतला है उसी प्रकार मस्तिष्क भी निर्जीव है परन्तु इस शरीर में जब मन या आत्मा प्रवेश करती है तो शरीर व मस्तिष्क जीवित हो उठते हैं तथा व्यक्ति को सोचने, महसुस करने, कल्पना करने, तर्क करने इत्यादि कार्य सम्पन्न होते हैं।

मन, चेतना या आत्मा को अमर कहा गया है उसे कोई भी नष्ट नही कर सकता इसी को ही शब्द भी कहा गया है जब कोई भी नही था, तब भी यह था आज भी ये है तथा कोई भी नहीं रहेगा तब भी ये रहेंगे। जब बालक जन्म लेता है उसका मन निश्चल होता है परन्तु जैसे–2 वह बडा होने लगता है मन के ऊपर धूल जमा होने लगती है तथा यदि हमें पहले की तरह निश्चल मन को प्राप्त करना है तो मन पर जमीं धूल को साफ करना होगा। '' इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि इस काम के निवासस्थान हैं। इनके द्वारा यह काम जीवात्मा के वास्तविक ज्ञान को ढक कर उसे मोहित कर लेता है।, ''[5]

यदि किसी नदी, गडडे की तली में देखना संभव है जब पानी की लहरें स्थिर हो जायें। जब पानी की लहरें स्थिर हो जाती हैं तथा गंदगी तल में बेठ जाती है हमें उसकी तली में पड़े कंकड़ भी दिखाई देने लगते हैं इसी प्रकार जब मन में विचारों की लहरें स्थिर हो जाती है तथा मन निर्विकारी हो जाता है तब हमें अंदर का सत्य उदघाटित हो जाता है तथा हमें ज्ञान प्राप्त हो जाता है। मन आत्मा का साधन है। इसके दवारा ही आत्मा की इच्छित क्रियाऐं हेाती है। आत्मा का मन से मन का इन्द्रियों से और इन्द्रियों का विषयों से सम्पर्क होने पर ही आत्मा को ज्ञान तथा उसकी इच्छित क्रियाऐं होती हैं। ज्ञान आत्मा का गुण है, मन का नहीं।

यह मन ऐसा है जिसके बिना कोई भी काम नही हेाता। यहीं कारण है कि इसके सम्पर्क में होने पर हम देखते हुए भी नही देखते तथा सुनते हुए भी नही सुनते। यह आत्मा के पास हृदय में रहता है। वेद में इसे (हृदय में निवास वाला) कहा गया है। यह जड़ पदार्थ है। इसीलिए आत्मा से अलग होकर कोई भी क्रिया नही कर सकता । यह आत्मा के साथ जन्म जन्मान्तर में रहता है।

मृत्यु पर भी आत्मा के साथ दूसरे शरीर में जाता है। इसके पश्चात आत्मा को नया मन मिलता है। इसे अमृत इसलिए कहा गया है कि यह शरीर के नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता। क्योंकि यह एक जड़ पदार्थ है। इसलिये इस पर भोजन का प्रभाव पड़ता है। जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। यह संस्कारों का कोष है। सभी संस्कार इस पर पड़ते हैं तथा वहीं जमा होते हैं। जो संस्कार प्रबल होते हैं वे ही उभर कर सामने आते हैं। जो दुर्बल होते हैं वे दबे पडे रहते हैं। जैसे किसी गड्डे में बहुत प्रकार के अनाज डाले जाये पहले गेहूं, फिर चने, फिर चावल उसके उपर जौ, उसके उपर मूंग, उड़द आदि। देखने वाले को वही दिखाई देगा जो सबसे ऊपर होगा, नीचे का कुछ भी दिखाई नही देगा।

हम जो भी करते हैं, वह मन का पोषण है। मन को हम बढ़ाते हैं, मजबूत करते हैं। हमारे अनुभव, हमारा ज्ञान, हमारा संग्रह, सब हमारे मन को मजबूत और शक्तिशाली करने के लिए है। बूढ़ा देखें, बूढ़ा आदमी कहता है, मुझे सत्तर साल का अनुभव हैं ।मतलब? उनके पास सत्तर साल पुराना मजबूत मन है। और जैसे शराब पुरानी अच्छी होती है, लोग सोचते हैं, पुराना मन भी अच्छा होता है। वैसे शराब और मन में कुछ तादाम्य है, एकरसता है। जैसे शराब और नशीली हो जाती है, वैसे ही मन जितना पुराना होता है उतना नशीला हो जाता हैं। चेतना नही बदलती, चेतना तो वही बनी रहती है। मन की पर्त चारों तरफ घिर जाती है। मांग वही बनी रहती है, वासना वहीं बनी रहती है। शरीर सूख जाता, वासना हरी ही बनी रहती है।

नही , अनुभव वगैरह से कुछ नहीं। जिसको संसार का अनुभव कहते हैं, वह मन का पोषण है सिर्फ। संन्यासी अ–मन की तरफ चलता है। गृहस्थ मन की तरफ चलता है।

सभी लोग एक मन लेकर पैदा होते हैं, लेकिन धन्य वे हैं, जो मन के बिना मर जाते हैं। सभी लोग मन लेकर जन्मते हैं, लेकिन अभागे हैं वे, जो मन को लेकर ही मर जाते हैं। फिर जीवन में कोई फायदा न हुआ। फिर यह यात्रा बेकार गई। अगर मौत के पहले मन खो जाए, तो मौत समाधि बन जाती है। और अगर मौत के पहले मन खो जाए, तो मौत के बाद फिर दूसरा जन्म नही होता, क्योंकि जन्म के लिए मन जरूरी है। मन ही जन्मता है। मन ही अपूर्ण वासनाओं के कारण , जो वासनाऐं पूरी नहीं हेा सकीं, उनके लिए पूनः जन्म की आकांक्षा करवाता है। जब मन ही नहीं रहता, तो जन्म नही रहता। मौत पूर्ण हो जाती है।

हम सब भी मरते हैं, हम अधूरे मरते हैं। क्योंकि वहां जन्म की आकांक्षा भीतर जीती चली जाती है। वह जन्म की वासना फिर नया शरीर ग्रहण कर लेती है। संन्यासी जब मरता है, तो पूरा मरता है– टोटल डेथ। शरीर ही नहीं मरता, मन भी मरता है। भीतर कोई और जीने की वासना नहीं रह जाती। है जो पूरा मर जाता है, वह उस जीवन को उपलब्ध हो जाता है, जिसका फिर कोई अंत नहीं।

लेकिन मार्ग क्या है? मार्ग है अ–मन, नो –माइंड। धीरे–धीरे मन को गलाना, छुड़ाना, हटाना, मिटाना है। ऐसा कर लेना कि भीतर चेतना तो रहे, मन न रह जाए। चेतना और बात है। चेतना हमारा स्वभाव है। मन हमारा संग्रह है।

इसलिए दुनिया जितनी सुशिक्षित और सभ्य होती जाती है, ध्यान उतना ही मुश्किल होता चला जाता है। क्योंकि सुशिक्षा और सभ्यता का मतलब क्या है? एक ही मतलब है ट्रेनिंग आफ द माइंड। मन और ट्रेण्ड हो जाता है। इसलिए जितना सुशिक्षित और जितना सभ्य होता जाता है मनुष्य, उतना ही मन से छुटना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि मन का इतना प्रशिक्षण हो जाता है।

हमारी सारी शिक्षा, हमारी सारी व्यवस्था, हमारा सारा अनुशासन मन की तैयारी है मजबूती के लिये। कि बाजार में मन सफल हो सके, कि धंधे में मन सफल हो सके, कि संघर्ष में, प्रतियोगिता में, प्रतिस्पर्धा में मन सफल हो सके, तो उसको हम ट्रेण्ड कर रहे हैं। और ऋषि तो उल्टी बात कहते हैं। वे कहते हैं, मन को विसर्जित करना है, डिसपर्स द माइंड।

यह ठीक है। अगर संसार में गति करनी हो, तो मन प्रशिक्षित होना चाहिये। अगर परमात्मा में गति करनी हो, तो मन विसर्जित होना चाहिऐ। अगर पदार्थ को पाने जाना हो, तो बहुत सुशिक्षित मन चाहिए। सुआयोजित,सुसंगठित वेल आर्गेनाइजड मन चाहिए। लेकिन अगर परमात्मा में जाना हो, तो मन चाहिए ही नहीं– शिक्षित– अशिक्षित कोई भी नहीं, संगठित–असंगिठत कोई भी नहीं मन चाहिए ही नहीं।

बढ़ता कैसे है मन? बढ़ने का ढंग क्या हे मन का? उसे समझ लें, तो घुटने का ढंग ख्याल में आ जाए। बढ़ता कैसे है मन?

मन को हम सहारा देते हैं, पहली बात। वी कोआपरेट विद इट। रास्ते से गुजर रहे हैं, भूख बिल्कूल नहीं है, लेकिन रेस्तरां दिखाई पड़ गया। मन कहता है, भूख लगी है। पैर रेस्तरां की तरफ बढ़ने लगते हैं। पूछते भी नही अपने से कि भूख तो जरा भी न लगी थी, जब तक यह बोर्ड नही दिखाई पडा था। यह बोर्ड दिखाई पड़ने से भूख लगती है। यह मन है। मन से भूख का कोई संबंध नही है, स्वाद की आंकाक्षा है। मन का प्रयोजन नही है शरीर से, मन को स्वाद से प्रयोजन है।

तो भूख बिल्कूल नही लगी थी, लेकिन इसको देखकर भूख लग गई। यह भूख झूठी है। अब आप अगर पैर रेस्तरां की तरफ बढ़ाते हैं, तो मन को आप बढ़ाते हैं मजबूत करते हैं।

सोच से, विवेक से खड़े होकर ठहर जाएं एक क्षण। भीतर खोजें, भूख है? एक क्षण भी अगर रूक सकें, तो रेस्तरां में प्रवेश नही करना पड़ेगा। क्योंकि मन कितना ही शक्तिशाली दिखाई पड़े, बहुत निर्बल है विवेक के सामने। लेकिन विवेक हो ही न, तो फिर मन बहुत सबल है। जैसे अंधेरा कितना ही हो, एक छोटा सा दीया पर्याप्त है। हां, दीया हो ही न, तो अंधेरा बहुत सघन है। एक क्षण के लिए भी विवेक, तो पैर ठहर जाऐंगे। शरीर में कहीं भी कोई कामवासना की लहर न थी, एक सुंदर स्त्री दिखाई पड़ गई, या सुंदर पुरूष दिखाई पड़ गया और लहर उठ गई। यह मन है। इसलिए आदमी को छोड़कर इस धरती पर कोई भी जानवर सेक्सुअलिटी, कामुकता से पीड़ित नहीं है। कामवासना है, कामुकता नहीं है। सेक्स है, सेक्सुअलिटी नहीं है। इसलिए मनुष्य को छोड़कर सभी जानवरों का सेक्स पीरिआडिकल है। उसकी एक अवस्था है। वर्ष में महीने, दो महीने, तीन महीने काम आता है। बाकी नौ महीने काम से रिक्त हो जाते हैं। लेकिन आदमी चौबीस घंटे कामुक है– चौबीस घंटे, तीन सौं पैंसठ

दिन। और दुखी होता है कि साल में तीन सौ पैंसठ दिन ही क्यों होते हैं? थोडे ज्यादा भी हो सकते थे, ऐसी इतनी कृपणता की क्या जरूरत थी।

क्या बात क्या होगी? मनुष्य अकेला कामवासना को मन से जी रहा है, शरीर से नहीं। शरीर से सारे पशु जी रहे हैं, पौधे जी रहे हैं, वृक्ष जी रहे हैं, सारी प्रकृति जी रही है, मनुष्य मन से भी जी रहा हैं। तो कामवासना तो प्राकृतिक है, लेकिन कामुकता विकृति है। कामवासना से ऊपर उठ जाना तो परम क्रांति है। लेकिन आदमी कामवासना से भी नीचे गिर गया है, वह कामुकता में है। सेक्स से भी नीचे, सेक्सुअलिटी में है। मन है। तो जब एक सुंदर स्त्री या सुंदर पुरूष को देखकर मन में कामवासना जगने लगती है तब एक क्षण खड़े हो जाना और कहना कि यह बायलाजिकल है , यह कहीं कोई जैविक–प्राण की कोई गति नही है या मन का ही खेल है?

मन का ही खेल है। और जहां–जहां मन का खेल दिखे, डोंट कोआपरेट विद इट, नान–कोआपरेशन विल डू। सहयोग न करें। असहयोग । सिर्फ खड़े रह जाएं और कहें कि यह मन की बात है। एकदम गिर जाएगी। और ऐसे मन क्षीण होगा, नहीं तो सहयोग से मन बढ़ता चला जाएगा। बैठे हैं खाली। मन बेकार के विचार कर रहा है जिनसे कुछ लेना–देना नही , और आप उसमें भी सहयोग दिए चले जा रहे हैं। रूकें और कहें कि इस सबकी क्या जरूरत है? यह सब मैं क्या कर रहा हूं? यह कैसा पागलपन है, जो मेरे भीतर मैं ही चलाता हूं? असहयोग– और मन धीरे–धीरे विसर्जित होता है। और अगर चौबीस घंटे असहयोग चले और उसके साथ ध्यान हो, तो अ–मन में गति हो जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता (यथारूप): कृष्णकृपामूति : श्री मद् ए.सी भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, 1983, पृष्ठ 107
2. पृष्ठ 109
3. पृष्ठ 115
4. पृष्ठ 115
5. पृष्ठ 140

मोबईल 9815844696

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 16-19
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

અખિલન રચિત 'ચિત્તિરપાવૈ" નવલકથામાં સ્ત્રી-પુરુષ સંબંધ

DR.MANISH PATEL, DEPARTMENT OF COMPARATIVE LITERATURE,
VEER NARMAD SOUTH GUJARAT UNIVERSITY, SURAT GUJARAT

'ચિત્તિર પાવૈ" નવલકથાનો ગુજરાતી અનુવાદ નવનીત મદ્રાસી દ્વારા 'ચિત્રપ્રિયા" નામથી પ્રાપ્ત થાય છે. અખિલન દ્વારા રચિત 'ચિત્રપ્રિયા' નવલકથા સીધી સાદી માત્ર પ્રણયકથા જ નથી. અહીં પ્રણયનું ભારતીય સંસ્કારના આદર્શ અને વાસ્તવની સાથે ગૂંથીને વ્યાપક અને ઊંડા દ્રષ્ટિકોણથી નિરૂપણ કર્યું છે. 'ચિત્રપ્રિયા' ભારતીય સાહિત્યની એક ઉત્તમ ગણનાપાત્ર નવલકથા તરીકે આપણા સૌનું ધ્યાન ખેંચે છે. ચિત્રપ્રિયા'નું કથાવસ્તુ એક યુવાન ચિત્રકાર અણ્ણામલૈની આસપાસ વિસ્તરે છે. કલાકાર અણ્ણામલૈને સમાજ તરફથી અનિવાર્યપણે સંઘર્ષ અનુભવવો પડે છે. છતાં પણ એક કલાકારના જીવનની કલા એ કલાકારની કલાથી શ્રેષ્ઠ નથી એ સર્જક સિદ્ધ કરી બતાવવાનો પ્રયત્ન કરે છે. આપણા જનસમાજમાં માનવમાત્રને સમાજમાં વ્યાપ્ત દૂષિત વ્યવહારોને કારણે જે પીડા ભોગવવી પડે છે તેવી અસંખ્ય વ્યથાઓનો સરવાળો એટલે આ નવલકથાનો નાયક અણ્ણામલૈ છે છતાં તે છેવટ સુધી અત્યંત સ્વસ્થ રહીને એ વ્યથાઓ સામે, એ સંઘર્ષ સામે ઝઝૂમતો રહી પોતાને એક સાચા કલાકાર તરીકે પુરવાર કરે છે.

આપણે આગળ જોયું તે પ્રમાણે નવલકથાના કેન્દ્રમાં ચિત્રકળાનો કલાકાર અણ્ણામલૈ આ નવલકથાનો નાયક છે. એના જીવનમાં કોઈ એક નહિ પણ ત્રણ-ત્રણ નાયિકાઓ-આનંદી, શારદા અને સુંદરી આવે છે. એ ત્રણે નાયિકાઓ સાથેના તેના સંબંધોને, તેના સ્નેહ સંબંધોને લેખકે અહીં બરાબર કસોટીએ ચઢાવીને પ્રણય સંઘર્ષની સાથે સાથે દામ્પત્ય સંઘર્ષ પણ સર્જાયો છે. આ નવલકથાની પાત્રસૃષ્ટિમાં અણ્ણામલ્લૈ, આનંદી, શારદા, શરવણન, કદિરેશન જેવાં સદ્‌પાત્રો છે. તો તેનાથી તદ્દન સામે છેડાના માત્ર ભૌતિક સુખમાં રાચનારા અને ધન સંપત્તિ પાછળ આંધળી દોટ મૂકનારા, માત્ર પૈસાને જ ભગવાન સમજનારા ચિદમ્બરમ, સુંદરી, દંડપાણી, માણિકયમ જેવાં અસદ્‌ પાત્રો પણ છે. આ સમગ્ર નવલકથા સંસ્કૃતિની કથા છે. એના વિવિધ રંગો તે ચિત્રિત કરે છે, જેથી સંસ્કૃતિનો મનોહારી પર ભાવકને માણવા મળે છે. સત્‌-અસત્નું દર્શન પણ કરાવડાવે છે. તો સાથે સાથે ચિત્રકળાના કલાકાર અણ્ણામલ્લૈના પતન અને પુરુષાર્થ તથા પુનરુત્થાનની પણ કથા છે.

મિસ્ત્રી ચિદમ્બરમ અને મીનાક્ષી અમ્માળનો પાછલી ઉંમરે જન્મેલો એકનો એક પુત્ર અણ્ણામલ્લૈને લઈ ચિદમ્બરમ તમિળનાડુના નાનકડા ગામમાંથી મદ્રાસ શહેરમાં આવીને વસવાટ કરે છે. કેટલાંક વર્ષો< પહેલાં ખભાપર ખાલી ટુવાલ, હાથમાં પટ્ટી અને ઓજાર વગેરે લઈને આવેલા ચિદમ્બરમે પ્રચંડ પુરુષાર્થ અને સંઘર્ષ કરીને પોતાના ધંધાને વિકસાવ્યો હતો. પોતાના પુત્ર અણ્ણામલ્લૈને શ્રેષ્ઠ શિક્ષણ અપાવી ઈજનેર બનાવી વૈભવી સુખ માણતો જોવાનું સ્વપ્ન એમણે સેવ્યું હતું પણ પિતા કરતાં જુદી જ પ્રકૃતિ ધરાવતા અણ્ણામલૈને કલા પ્રત્યે પ્રેમ હોવાને કારણે પ્રકૃતિનો સંગ માણવાનું તેને વધારે ગમે છે. ચિત્રકળા તેનો પ્રિય વિષય છે. પોતાના પિતાની ભૌતિક સુખો પાછળની આંધળી દોટ પ્રત્યે એને છૂપો રોષ છે, અણગમો છે.

નાયક અણ્ણામલૈ, જે જન્મજાત કલાકારનું સંવેદનશીલ હૃદય ધરાવે છે, નવલકથાના આરંભે પરીક્ષામાં નાપાસ થયેલો છે. એ પોતાની ચેતનામાં ચિત્રપ્રિયાનો માનસિક સ્તરે અનુભવ કરે છે. અણ્ણામલૈને સમુદ્ર કાંઠે ભિખારણનું ચિત્ર દોરતાં પહેલીવાર મહાન ચિત્રકાર કદિરેશન અને એની પુત્રી આનંદીનો ભેટો થાય છે. ધીમે ધીમે પછી એ જ આનંદીમાં અણ્ણામલૈને પોતાના મનમાં વસેલી ચિત્રપ્રિયાનું દર્શન થવા માંડે છે. અણ્ણામલૈને આનંદી અને કદિરેશનની પ્રેરણા અને પ્રયાસથી ચિત્રકળા મહાવિદ્યાલયમાં પ્રવેશ મળે છે. અણ્ણામલૈને એ જ મહાવિદ્યાલયમાં અન્ય કલાકાર શારદાનું સાંનિધ્ય પણ મળી જાય છે. આમ આનંદી, શારદા અને ત્યાર પછી તેની પત્ની સુંદરી એમ ત્રણે સ્ત્રીઓ અણ્ણામલૈના જીવનમાં ચિત્રપ્રિયા થઇને આવે છે.

અણ્ણામલૈ ઉપર નાનપણથી જ એની માતા મીનાક્ષી અમ્માળના સદ્‌ચરિત્રના ઉચ્ચ સંસ્કારો પડયા છે. અણ્ણામલૈ ઉપર પિતા કરતાં માતાનો જ બાળપણથી પ્રબળ અને ઊંડો પ્રભાવ પડતો રહ્યો છે. મીનાક્ષી કાંઈ ભણી ન હતી, છતાં તે ગીતો અને વાર્તાઓ જાણતી હતી. તે સ્લેટ પર પક્ષીઓ વગેરેનાં ચિત્રો દોરતી. અણ્ણામલૈ નિશાળે જતો થયો પછી જ તેની સમજમાં પ્રકૃતિનાં ઘણાં રહસ્યો આવતાં ગયાં હતાં. પરંતુ પિતા મિસ્ત્રી ચિદમ્બરમ પત્નીથી તદ્દન જુદા જ સ્વભાવના હતા તેઓ પત્નીની બધી કલાકારીગરી, સૂઝ, પ્રકૃતિપ્રેમ વગેરેમાં ક્યારેય રસ લેતા નહિ. તેથી કદાચ એ જ કારણે અણ્ણામલૈને તેના બાપુજી તદ્દન ગમાર અને વિવેકહીન લાગતા. બીજી બાજુ માતાના સંસ્કારને કારણે જ નાનપણથી અણ્ણામલૈને ચિત્રકળા, પ્રકૃતિ સૌંદર્ય વગેરેમાં વધારે ને વધારે ઊંડો રસ જાગતો ગયો. અણ્ણામલૈના પિતાનું તો સ્વપ્ન હતું એને એન્જિનિયર બનાવવાનું પણ મેટ્રિકની પરીક્ષામાં નાપાસ થઇને અણ્ણામલૈએ પિતાને નિરાશ કર્યાં< હતા. પરંતુ અનાયાસે જ, સમુદ્ર કાંઠે રઝળતાં અણ્ણામલૈને વિખ્યાત ચિત્રકાર કદિરેશન અને એમની પુત્રી આનંદીનો પરિચય થાય છે. એ પરિચયે જ એને ચિત્રકળા મહાવિદ્યાલયમાં દાખલ થઇને પોતાની ઈચ્છા મુજબના કલાકાર થવાની એક તક આપે છે.

માણિકયમ એ એનો પુત્ર ન હોવા છતાં, ચિદમ્બરમે પોતાની સાથે રાખીને નાનપણથી જ પોતાના ધંધામાં એને ગોઠવ્યો છે. એટલું જ નહિ ચિદમ્બરમ પોતાના આ સુપરવાઇઝર પાલક પુત્રના હાથ નીચે કંપનીમાં કામ કરવામાં પોતે સંકોચ અનુભવતા નથી. તેઓ પોતાના સગા પુત્ર અણ્ણામલૈ કરતાં, માણિકયમને સ્હેજે ઓછો કે અદકો ગણતાં નથી. એટલે સુધી કે મિસ્ત્રી માણિકયમની મા અને એના દીકરા બંનેને સુખી કરવા પારકા અને પોતીકા એવા કોઈ પણ ભેદ

રાખ્યા વગર જીવનભર તેઓનું પાલનપોષણ કરે છે. પોતાના ઘરના જ એક ભાગમાં એ બંને મા-દીકરાને સ્વતંત્ર રીતે પગભર કરીને રાખ્યા છે, સાચવ્યા છે. છતાં એ બંને મા - દીકરા કૃતઘ્ની છે.

દંડપાણી અણ્ણામલૈના મામા છે. તમિલોના રિવાજ મુજબ પહેલેથી જ તેની બહેન મીનાક્ષીનો દીકરો અણ્ણામલૈ દંડાપાણીને પોતાની દીકરી સુંદરીના વેવિશાળ માટેના મૂરતિયા તરીકે મનમાં વસી ગયો છે. તેઓ વેપાર ધંધામાં કુશળ છે. એમની ધનલાલસા પણ દિવસેને દિવસે વધતી ગઈ છે. ધનસંપત્તિ કમાવવાની ઘેલછામાં, દંડપાણી કુટુંબ ઉપર ધ્યાન આપી શકયા નથી. સંતાનોના સંસ્કાર, શિક્ષણ કેળવણીની એમણે ચિંતા કરી નથી. સુંદરીનો ઉછેર, શિક્ષણ જ એવા મળ્યાં છે કે એ બદલાતી જતી પેઢી માટે પોલો નમૂનો બની રહે છે. નાનપણથી ચાર ભાઇઓની એક માત્ર બહેન સુંદરી અતિશય લાડ-પ્યારમાં મોટી થઈ છે. એ માંગે તે બધું જ એને સહેલાઈથી મળતું રહે છે. એ માત્ર પોતાનું સુખ જુએ છે. એના ઉછેર અને શિક્ષણમાં એવી ખામી રહી ગઈ છે કે, એ અણ્ણામલૈ સાથેના પ્રેમમાં શારદા અને આનંદી ઉપર વહેમાતી ઈર્ષ્યામાં બળતી રહે છે. સુંદરીનો ઉછેર, સંસ્કાર, શિક્ષણ જીવનના સમાજના યથાર્થને સૂચવે છે.

નવલકથાકારે આ કથામાં આનંદી, સુંદરી અને શારદા દ્વારા પ્રણય અને દામ્પત્યની ભાવના અને દામ્પત્યજીવનના યથાર્થનું ચિત્રણ કર્યું છે. કલાકાર અણ્ણામલૈને પોતાની ચેતનામાં વસેલી ચિત્રપ્રિયાનું દર્શન આનંદીમાં થાય છે. તેઓના બંનેના મનમાં અન્યોન્ય પ્રત્યે પ્રણયના અંકુર ફુટે છે. પરંતુ બાળકના જેવા અણ્ણામલૈ પોતે શારદાને કે આનંદીને કે બીજી કોઇને પોતાના પ્રણયસાથી તરીકે નક્કી કરી શકતો નથી. અણ્ણામલૈ આનંદી સાથે પણ પૂરેપૂરી મર્યાદાથી વર્તે છે. આનંદીના દેહ તરફ એ કદી હાથ લંબાવતો નથી. આનંદી પણ અણ્ણામલૈને ચાહે છે, દૈહિક આકર્ષણ પણ અનુભવે છે, પરંતુ તેની સાથે અવૈધ દેહસંબંધ કદી બંધાતો નથી. તેવી જ રીતે અણ્ણામલૈને શારદા ચાહે છે. શારદા અણ્ણામલૈની માંદગીમાં તેની ખૂબ સેવા કરે છે. એના નિર્મળ, સ્વાર્પણ, ત્યાગથી પ્રભાવિત થઈને અણ્ણામલૈ શારદા આગળ લગ્નનો પ્રસ્તાવ મૂકે છે પણ શારદા એને ચાહતી હોવા છતાં એને આનંદી પ્રત્યેની તેની પ્રીતિનું ભાન કરાવી, અંતે એ બંનેને મેળવી આપીને પોતાના પ્રણયજીવનની સાર્થકતાનો અનુભવ કરે છે. શારદા અને અણ્ણામલૈ બંને અન્યોન્યને ચાહતાં હોવા છતાં, કદીય શારીરિક છૂટ લેતાં નથી, તેઓ પણ એકબીજાની મર્યાદા જાળવે છે.

માણિકયમને પહેલેથી જ આનંદીના દેહનું દૈહિક સૌંદર્યનું તીવ્ર આકર્ષણ હતું, એ કામાંધ માણિકયમ એના પ્રપંચની જાળમાં આનંદીને ફસાવી લગ્ન પહેલાં જ આનંદીના દેહને બળજબરીપૂર્વક અભડાવે છે. અણ્ણામલૈ સાથે સ્પર્ધામાં પડીને એ આનંદીને ઝૂંટવી લેવા એ અંતિમ ઉપાય અજમાવી, એની સાથે પરણવામાં સફળ થાય છે. લગ્ન પછી, આનંદીને એ કામવાસનાથી પે્રરાયેલો માણિકયમ પત્નીની ઈચ્છા અનિચ્છાની પરવા કર્યા વિના પશુની જેમ એના દેહને સ્વાર્થી બની ચૂંથતો રહે છે. એના ઉપર જુલ્મ અત્યાચાર કરતો રહે છે. આનંદીને અસહ્ય માનસિક ત્રાસ આપતો રહે છે. છતાં, આનંદી દાદીમાએ આપેલી શિખામણ મુજબ પતિનો બધો ત્રાસ મૂંગે મોંએ સહન કરતી રહે છે. આનંદી અણ્ણામલૈને ચાહતી હોવા છતાં પતિની ઈચ્છા વિરુધ્ધ જઈને, એ બીમાર અણ્ણામલ્લૈની ખબર કાઢવા જતી નથી. પરંતુ કામાતુર માણિકયમનો

મોહ આનંદીમાંથી ઓછો થતાં એ એક માળીની મુત્તમ્માળ નામની ગરીબ છોકરી સાથે અવૈધ દેહસંબંધ બાંધે છે. માણિકયમને મન સ્ત્રી એક તુચ્છ રમકડાંથી વિશેષ નથી. કામવાસના સંતોષવાનું એક સાધન માત્ર છે. એ ભોગવિલાસી છે. પશુ જેવો દુરાચારી છે. જયારે એની દુષ્ટતાની હદ વટાવી જાય છે, ત્યારે પતિ સામે આનંદી વિદ્રોહ કરી, એનું મંગળસૂત્ર એના જ હાથમાં પકડાવી દઈને પોતાના પ્રેમી અણ્ણામલૈ સાથે વિદાય થાય છે. નવલકથાના અંત તરફ આનંદીનું તેજસ્વિની સ્વરૂપ પ્રગટે છે. પોતાના દેહને કોઇ વિવશ બનાવી ક્ષણવાર માટે અભડાવી જાય પરંતુ એના અસ્તિત્વ કે આત્માને પૈસાથી કે સત્તાના બળથી જીતી જઇ શકે નહીં; એટલે જ એ નવલકથાને અંતે માણિકયમને સાફ સાફ સંભળાવી પણ દે છે કે, "પૈસાથી તમે દેહ જીતી શકો, પ્રાણ નહીં; ઇન્દ્રિયોને અભડાવી શકો, આત્માને નહીં"" આ રીતે આનંદી પણ ભારતીય નારીનું મૂર્ત સ્વરૂપ છે. એની કોમળતામાં એક દ્રઢતા છે એટલે જ એ માણિકયમને છોડીને અ•ણામલૈના આંગણે જઇ ઊભી રહે છે. પરંપરાગત દામ્પત્ય જીવન નહીં પણ આત્માના બળે સ્નેહના સરવાળા રૂપે જીવાતું, આંતર ભાવસૃષ્ટિને સુગંધિત બનાવનારું સહજીવન જીવે છે. એની સામેનું જે ચરિત્ર છે તે સુંદરી છીછરી, ભોગપ્રધાન ઢીંગલીનું પ્રતીક રૂપ છે અને એના વિરોધમાં આનંદીનું ચરિત્ર ઊપસે છે. શારદા પોતે પોતાનું સમર્પણ કરતી નથી પણ જેઓ પરસ્પરને સમર્પિત છે તેમનું સંમિલન કરવામાં સેતુ બની રહે છે. આમ અણ્ણામલૈનું સુંદરી સાથેનું દામ્પત્યજીવન અને આનંદીનું માણિકયમ સાથેનું દામ્પત્યજીવન માનસિક કમજોરીની કરુણ કથા કહી શકાય.

અણ્ણામલૈ અને આનંદીમાં આદર્શ યુગલ થવાના બધા જ ગુણો દેખાય છે. એમાં કોઈ સંદેહ નથી. પરંતુ આનંદીને માણિકયમ અને અણ્ણામલૈને સુંદરી સાથેનો અભિશાપ આવી પડે છે. બંનેના દામ્પત્યની વિષમતા અને વિસંવાદિતતાનું હૃદયવેધક અને હૃદયસ્પર્શી આલેખન થયું છે. એટલે જ નવલકથાકાર આ નવલકથાને 'ચિત્રપ્રિયા"થી વિશેષ ઉચિત અન્ય કોઈ શીર્ષક આપી શકયા નથી. પણ નવલકથાકારે કૃતિનું નામાભિધાન તો એક કલાકારની સૂઝબૂઝથી કર્યું છે એ તો સ્વીકારવું જ રહ્યું.

સંદર્ભ સૂચિ

1. બક્ષી જયંત., 'આધુનિક ભારતીય સાહિત્ય", સાહિત્ય અકાદમી, પ્રથમ આવૃત્તિ ૧૯૭૬
2. ચૌધરી રઘુવીર, પટેલ ભોળાભાઇ, દવે હરિન્દ્ર 'સાહિત્ય દર્શન-૧ (ભારતીય)" જ્ઞાન ગંગોત્રી ગ્રંથશ્રેણી-૭
3. અખિલન, 'ચિત્રપ્રિયા" અનુ.નવનીત મદ્રાસી, આદર્શ પ્રકાશન,

EMAIL:MM1211MANISH@GMAIL.COM
MO:9428578401

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 20-25
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण जनजाति का सामाजिक एवं आर्थिक और राजनीतिक स्वरूप में परिवर्तन का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (झारखंड के उरांव जनजाति के संदर्भ में)

राजकुमार, सहायक प्राध्यापक,
एस एस एम एस डिग्री कॉलेज, तरहसी, जिला–पलामू, झारखंड,

सारांश

झारखंड की 32 जनजातियों में से एक प्रमुख जनजाति के रूप में उरांव जनजाति का महत्वपूर्ण स्थान है । जनसंख्या के दृष्टिकोण से जनजातियों में उरांव जनजाति दूसरे स्थान पर आती है। झारखंड में इसका मुख्य निवास स्थान गुमला तथा लातेहार जिला है 2001 की जनगणना के अनुसार इस राज्य में इनकी आबादी 1057066 है। झारखंड के अलावा उरांव पश्चिम बंगाल, ओडिशा, और छत्तीसगढ़ में भी निवास करते है । उरांव जिस क्षेत्र में निवास करते हैं वह इलाका उबर खाबर नदी नालों से खंडित जंगलों से परिपूर्ण तथा ऊंची नीची पहाड़ियों से घिरा होता है जिसे घेरा पहाड़ कहते हैं ।उरांव एक कुशल और सफल कृषक होने के साथ–साथ खेती में हमेशा कुछ जोड़ने रहते हैं ।उरांव अपनी कुशल कृषक विद्या का परिचय देते हुए बंजर तथा पथरीली भूमि में सुरगुजा तथा कुरथी की अच्छी फसल उपज लेते हैं।उरांव जनजाति का मुख्य पेसा कृषि रहा है परंतु वर्तमान में शिक्षा वृद्धि और इसी कारण के प्रभाव स्वरूप उरांव सरकारी नौकरी बिजनेस इत्यादि में भी अर्थव्यवस्था से जुड़ गए हैं। उरांव समाज पितृशासित समाज हैइस जनजाति में गोत्र पिता के ही वंश से चलता है उरांव भाषा में गोत्र को किली कहा जाता है। उरांव के बीच 50 से भी अधिक गोत्रों का पता चला है। उरांव सामाजिक व्यवस्था में एक विशेष बात है कि उरांव गांव में युवा गिरी धूमकुड़ियां एवं अखरा होते हैं। उरांव जनजाति का राजनीतिक व्यवस्था शुरुआत से ही संगठित रहा है। इनमें भूईहर ,महतो, पडहा ,पंच इत्यादि ने मुख्य भूमिका निभाई है। गांव में किसी भी प्रकार की समस्याओं का समाधान इन लोगों के द्वारा हो जाता है। उरांव जनजाति का आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन समय के साथ धीरे–धीरे हो रहा है। उरांव जनजाति का धार्मिक विश्वास में परिवर्तन हो रहा है जिससे उनके समाज अर्थव्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन संभव है। 1911 में 71.9 प्रतिशत उराव सरना धर्म को मानते थे 1961 में यह प्रतिशत घट कर 47.8 हो गया है इस प्रकार स्पष्ट है कि उराव का धार्मिक विश्वास में परिवर्तन आया है।

शिक्षा , आधुनिकीकरण और बाहरी संपर्क के कारण ग्रामीण परिवेश में रह रहे उरांव के जीवन में बहुत बदलाव आया है शिक्षा से चेतना जगी फिर अवसर का लाभ उठाकर उरांव जनजातिआगे बढ़ाना सीखा और आज पढ़–लिख नौकरियों में बने हुए है ।

मुख्य बिंदु.– उरांव जनजाति , गांव, सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, परिवर्तन।

उद्देश्य

1) उरांव जनजाति का सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन का अध्ययन करना ।

भूमिका

उरांव जनजाति, भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है. वे झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, और छत्तीसगढ़ में रहते हैं। ये झारखंड की दूसरी बड़ी जनजाति है झारखंड में इसका मुख्य निवास स्थान गुमला तथा लातेहार जिला है 2001 की जनगणना के अनुसार इस राज्य में इनकी आबादी 1057066 है। प्रजाति दृष्टि से उरांव को प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड समूह में रखा जाता है। इनका कद छोटा कल दुर्गा संकीर्ण नाक चौड़ी रंग गहरा सांवला और बाल काला घुंघरीला होता है। आंखें मंजूरी और छोटी होती हैं और आंख की पुतलियां काली होती हैं। होंठ मोटे होते हैं। बिजली द्वारा उरांव के मानव मिट्टी आंकड़ों से इनका औसत कद 162.1 से. मी. पाया गया है । झारखंड में उरांव के प्रवेश अथवा बेसन के पूर्व के इतिहास का मुख्य स्रोत मिथक परंपरा किवंटिया आदि ही है। परंतु इतिहास को बूंद बूंद छुआ कर जो इतिहास प्राप्त होता है वही मुख्य है अंग्रेजों की आगमन की पूर्व लिखित सामग्री बहुत कम मिलती है परंपरा तो यही बताती है कि इनका मूल निवास स्थान कोकण था जहां से बढ़ती जनसंख्या एवं बाहरी दबाव के कारण भारत के पश्चिमी तट से हटते हुए नदी घाटियों से होते उत्तर भारत आए और फिर उत्तर भारत से होते हुए उरांव शाहबाद पहुंचे यहां भूमि के मालिक और कृषक के रूप में स्थापित हो गए उरांव की एक सरदार कर उसने राज्य स्थापित किया और उसे क्षेत्र का नाम कर उसे देश रखा पौराणिक साहित्य में कर उसे नमक प्राचीन राजा का उल्लेख मिलता है जो आर्यों के आगमन के पूर्व जिस क्षेत्र में निवास करते थे उसे कर उसे देश नाम दिया गया था यह क्षेत्र शाहाबाद के रूप में चिन्हित किया जा सकता है जो उरांव का मुख्य निवास स्थल माना जाता है। बुकानन भी बदलते हैं की सन और कर्मनाशा नदी के बीच का प्रदेश जो उसे समय कर उसे देश कहलाता था कारख नामक दैत्य की कब्जे में था बाद में इस क्षेत्र का नाम कीकट दिया जाता है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। बहुत लोग कहते हैं की समस्त की कट प्रदेश कालांतर में मगध कहा जाने लगा शायद यह नाम इसके पूर्वी भागों में बसे मांगों के नाम पर पड़ा। कालचक्र के बाद आई नहीं जातियों के दबाव में उरांव को शाहाबाद से हटना पड़ा और रोहतास पत्थर प्रसारण लेनी पड़ी जहां किले बंदी कर दी गई कुछ समय बाद इन्हें रोहतास भी छोड़ना पड़ा वहां शेरो बहुत शक्ति शाली हो गए थे चेरों ने उरांव मलेर के पूर्वजों को रोहतासगढ़ से खदेड़ दिया रोहतास से भी स्थापित होने पर उरांव दो दल में बट गए एक शाखा जिसे माले कहा गया राजमहल में जा बसी दूसरी शाखा सोन पर कर उतरी कोयल के ऊपर से पलामू होते हुए छोटा नागपुर में प्रवेश कर गई अतः राजमहल पहाड़ी के माले और उरांव के पूर्वज एक ही जनजाति के दो शाखाएं हैं। नागपुर में आने के बाद उरांव का सामना मुंडा जाति के लोगों से हुआ।

टोलमी ने अपनी पुस्तक असिएंट ज्योग्राफी में नागपुर की चर्चा करते हुए यहां उरांव के होने का संकेत किया है इससे ऐसा लगता है कि उराव दूसरी सदी ईसवी के पूर्व यहां बस चुके थे शायद उनके यहां बसने के बाद ही चुनाव नागपुर का नाम खुखरा पड़ा। नाग वंशावली से पता चलता है कि फनी मुकुट राय के राज्यरोहन के समय मुंडा के साथ उरांव भी मौजूद थे। जब उराव झारखंड में प्रवेश किया तो उधर मुंडाओं ने इनका कोई विद्रोह नहीं किया साथ मिलकर रहने लगे उरांव मुंडा से अधिक चतुर कृषि में प्रवीण और रण कौशल में दक्ष थे।

उरांव जनजाति के गांव .–उरांव जिस क्षेत्र में निवास करते हैं वह इलाका उबर खाबर नदी नालों से खंडित जंगलों से परिपूर्ण तथा ऊंची नीची पहाड़ियों से घिरा होता है जिसे घेरा पहाड़ कहते हैं पहाड़ों के ऊपर छोटे गांव और छोटी–छोटी झोपड़ियां डालो वह घाटी में बड़े–बड़े गांव तथा मैदानी इलाके में बड़ी फैली बस्तियां होती है। इन गांव में उरांव की आबादी 150 से 200 तक रहती है। प्रत्येक उरांव गांव में तीन मुख्य स्थल होते हैं सरना अखरा तथा सासंग होते है। सरना पवित्र स्थल है जहां पूजा धार्मिक कार्य की जाती है वहीं अक्षर एक मनोरंजन और सामाजिक स्थल के रूप में माना जाता है जहां नाचगान की जाती है सासंग एक ऐसा स्थल है जहां थे क्रिया संपन्न किया जाता है नृत्य को की याद में यह लोग बड़े–बड़े पत्थर की सिलाई अपने निवास स्थल के नजदीक करते हैं। उरांव जनजाति में गाड़ने और जलाने दोनों की प्रथाएं पाई जाती है।

उरांव जनजाति का सामाजिक व्यवस्था

उरांव समाज पितृसत्तात्मक समाज है परिवार के धन को प्राप्त करने और खर्च करने का अधिकार पुरुष का ही होता है स्त्री का कोई अधिकार नहीं रहता अधिकतर उरांव गांव में विस्तृत परिवार देखने को मिलता है। सामाजिक संगठन में परिवार वंश समुदाय गोत्र आदि के प्रमुख अंग है किंतु इन सबों में गोत्र का सबसे प्रमुख स्थान है उरांव चुकी पितृसत्तात्मक परिवार है इसलिए अन्य जनजाति के समान इस जनजाति में गोत्र पिता के ही वंश से चलता है उरांव भाषा में गोत्र को किली कहा जाता है। उरांव के बीच 50 से भी अधिक गोत्रों का पता चला है जिनका नाम वृक्षा लता पशु पक्षियों के नाम पर होता है। जैसे लकड़ा, तिर्की, इक्का , वेक , खायेगा, मंजनी, मिंकी ,कुजूर, केरकेट्टा आदि।

उरांव सामाजिक व्यवस्था में एक विशेष बात है कि उरांव गांव में युवा गिरी धूमकुड़ियां एवं अखरा होते हैं। धूमकुड़ियां में 8 से 10 वर्ष की आई यू से लेकर विवाह न होने तक लड़के लड़कियां एक साथ रहते हैं और जीवन व्यतीत करने के लिए तरह–तरह की कलाएं सीखते है। उरांव जनजाति में लड़का और लड़की के लिए अलग–अलग धूमकुड़ियां होती है। लड़कों की धूमकुड़िया को जोख ऐरपा और लड़कियों के धूमकुड़ीया को पेल ऐरपा कहते हैं। धूम कुड़िया में प्रवेश लगभग 10 से लेकर 11 वर्ष की आयु में होता है और विवाह के पूर्व तक इसके सदस्य रहते हैं इसकी तीन श्रेणियां है पुना जोखार जो नए प्रवेश करते हैं दूसरा मांझ जोखर जो 3 साल से रह रहे हैं तीसरा कोहा जोखर । धूमकुड़िया को उरांव के परंपरागत स्कूल के रूप में भी जाना जाता है जहां उपरोक्त तथ्यों की शिक्षा दीक्षा दी जाती है। आधुनिक समय में सामाजिक संस्था के रूप में धूमकुरिया लगभग मृत्यु प्राय हो चुका है। लेकिन आजकल इसे पुनर्जीवित करने के लिए अभियान चलाए जा रहे हैं एक समय में अर्थात दो तीन दशक पूर्व तक इस गांव का प्रमुख केंद्र स्थल माना जाता था। धूमकुड़िया के समान ही अखरा भी उरांव जनजातियों में मुख्य सामाजिक सांस्कृतिक संस्था है। अखरा एक ऐसा स्थल है जहां नाच गान उत्सव सामाजिक सांस्कृतिक मनोरंजन का कार्य होता है। पर्व त्यौहार पर नाच गान होता है स्त्री पुरुष साथ मिलकर मनोरंजन करते है।

उरांव जनजाति की आर्थिक व्यवस्था

उरांव एक कुशल और सफल कृषक होने के साथ–साथ खेती में हमेशा कुछ जोड़ने रहते हैं ।अपने क्षेत्र के कृषि योग्य भूमि को दोन और टांड़ में विभाजित किए है। दोन वाली भूमि में धान की खेती की जाती है तथा टांड वाली मूवी में विभिन्न प्रकार के अन्य अप जाते हैं । उरांव अपनी कुशल कृषक विद्या का परिचय देते हुए बंजर तथा पथरीली भूमि में सुरगुजा तथा कुरथी की अच्छी फसल उपज लेते हैं। दोन भूमि में धान की खेती दो तरह से करते है बाउग और रोपा ।

उरांव जनजाति का मुख्य पेसा कृषि रहा है परंतु वर्तमान में शिक्षा वृद्धि और इसी कारण के प्रभाव स्वरूप उरांव सरकारी नौकरी बिजनेस इत्यादि में भी अर्थव्यवस्था से जुड़ गए हैं।आर्थिक जीविका के लिए जंगलों और कृषि पर बहुत अधिक निर्भर था। हालांकि, समय के साथ, कई उराँव ने खेती को अपना प्राथमिक व्यवसाय बनाते हुए स्थायी कृषि जीवन शैली अपना ली। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान, असम, पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश में चाय के बागानों में काम करने के लिए बड़ी संख्या में उराँव चले गए। इसके अलावा, कुछ को फिजी, गुयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो और मॉरीशस जैसे दूर के देशों में ले जाया गया, जहाँ उन्हें हिल कुली के रूप में जाना जाता था। आज, उरांव लोगों को भारत की आरक्षण प्रणाली के तहत अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता प्राप्त है, जो उन्हें ऐतिहासिक नुकसानों को दूर करने में मदद करने के लिए विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक लाभ प्रदान करता है।

उरांव जनजाति का राजनीतिक व्यवस्था

जब उरांव छोटानागपुर में आया तो परिवार के कुल के लोगों ने जंगल के किसी उपयुक्त भाग को चुना तथा जंगलों को साफ करके खेती योग्य भूमि बनाया इस तरह से अनेकों गांव बसे यह प्रथम जंगल साफ कर खेत बनाने वाले भुईहर कहलाए बाद में आने वाले उरांव जेठ रैयत कहलाए भई हर का अर्थ भूमि का स्वामी उनकी जमीन हुई हर जमीन कहलाई उसके द्वारा बसाए गए गांव को कुछ ने भूईहर गांव तक कहा गांव के प्रबंधन और संरक्षण तथा धार्मिक कृतियों के संपादन के लिए एक व्यक्ति को करता के रूप में चयन किया गया उसे वहां कहा गया और जिस स्कूल का वह था उसे वहां खूंट कहा गया । पाहन का

कार्य धार्मिक और प्रशासनिक दोनों तरह का होता है बाद में उसकी सहायता के लिए मुखिया का चयन किया गया वह मुखिया महतो के रूप में जाना गया इस प्रकार भूईहर कुल को महतो खूंट के रूप में जाना गया। गांव में बढ़ती आबादी के साथ विवादों को सुलझाने के लिए गांव में पंचायत बनी जिसमें सभी वरिष्ठ सदस्य पंच के रूप में चयनित हुए और महत्व उनका अध्यक्ष बना यह ग्राम पंचायत हर उरांव गांव में आज भी है। धीरे–धीरे गांव का विस्तार हुआ आसपास के गांव में प्राकृतिक और अलौकिक शत्रुओं से सुरक्षा के लिए एक साथ मिल जुल कर काम करने की जरूरत का एहसास हुआ जिसके बाद पड़हा संगठन शिकार समूह के दर्ज पर खड़ा हुआ जिसका आधार संबंधियों का समूह ना होकर स्थानीय समीपता बना।पड़हा जैसा आज अस्तित्व में है कई निकटवर्ती पड़ोसी गांव का संघ समुदाय है जिसका केंद्रीय संगठन पड़हा मंच है। पड़हा का संगठन 7, 12, 21 या 22 गांव को मिलाकर होता है जिसका मुखिया राजा कहलाता है अब इस व्यवस्था के आशिक विघटन के कारण पड़हा के गांव की संख्या 5 ,4 या तीन रह गई है पड़हा के गांव में से एक को राजा गांव दूसरे को दीवान गांव तीसरे को पनेरे गांव चौथ को कोतवार गांव और शेष गांवों को प्रजा गांव कहते हैं हर गांव का अपना विशेष प्रकार होता है।

पहन और महतो गांव के दो मुख्य अधिकारी होते हैं पहन पहन खूंट का होता है कुंवारा पहन नहीं बन सकता महतो खूंट का होता है दोनों के कामकाज एक साथ जुड़े हुए हैं फिर भी गांव के कल्याण और उन्नति का संयुक्त दायित्व दोनों पर है दोनों के सहयोग से गांव समुदाय का समुचित संचालन संभव है।

ग्राम पंचायत गांव के अंदरूनी विवादों का निपटारा करती है इससे संपत्ति के बंटवारा विवाह संबंधी विवाद यौन अपराध निषेध उल्लंघन कभी मारपीट चोरी के मामले आते हैं। दंड के रूप में जुर्माना के पैसे भोज भारत और शराब पर खर्च किए जाते हैं। एक गांव का दूसरे गांव के साथ हुए विवादों का निपटारा पड़हा करते है ।

उरांव जनजाति का सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन

परिवर्तन सामाज का वो पहिया है जो निरन्तर चलता है। परिवर्तन की इस धारा ने किसी सामाज को अछूता नहीं छोड़ा है। अर्थात जिस प्रकार परिवर्तन अन्य समाजों में होता है उसी तरह परिवर्तन आदिवासी सामाज में भी होता है।

परिवर्तन लाने वाले कारण निम्न हैं।

1) औद्योगिकरण ।
2)आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ।
3) आधुनिक मूल्य व्यवस्था जैसे स्वतंत्रता समानता धर्मनिरपेक्षता ।
4) आधुनिक कानून व्यवस्था ।
5) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास ।
6) संचार क्रांति ।
7) वैश्वीकरण एवं संस्कृति का प्रभाव ।

झारखंड के उरांव जनजाति का धर्म के आधार पर तालिका

वर्ष	हिंदू	ईसाई	सरना	कुल
1911	8ण्9	19ण्2	71ण्9	100
1921	17ण्0	21ण्1	61ण्9	100
1941	34ण्9	22ण्8	42ण्3	100
1961	58ण्4	23ण्8	47ण्8	100

इस तालिका के द्वारा स्पष्ट है कि उरांव जनजाति का धार्मिक विश्वास में परिवर्तन हो रहा है जिससे उनके समाज अर्थव्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन संभव है। 1911 में 71.9 प्रतिशत उराव सरना धर्म

को मानते थे 1961 में यह प्रतिशत घट कर 47.8 हो गया है इस प्रकार स्पष्ट है कि उराव का धार्मिक विश्वास में परिवर्तन आया है।

शिक्षा, आधुनिकीकरण और बाहरी संपर्क के कारण उरांव के जीवन में बहुत बदलाव आया है शिक्षा बड़ी चेतना जगी अवसर का लाभ उठाकर आगे बढ़ाना सीखा आज पढ़े–लिखे नौकरियों में बने और शहरों में निवास करने वाले उरांव का रहन–सहन खान पान वेशभूषा संपन्निता और संस्कृति सभी कुछ इतना बदल गया है कि वह एलीट वर्ग के समान बन गए हैं और अपने ग्रामीण लोगों से अलग जीवन जी रहे है । ग्रामीण उरांव खेत और गांव से जुड़े हुए है । परंतु उनके जीवन में भी बदलाव आया है । परन्तु सामान्य उरांव के जीवन में अभी भी अभाव और सुविधा और शिक्षा अभियंता अंधविश्वास असंतोष और अधूरापन बना हुआ है अभी भी हर साल कटनी के बाद प्राय प्रत्येक गांव में से दो तिहाई पुरुष बाहर निकल जाते हैं खदानों कल कारखानों चाय बागानों में काम करने के लिए अभी भी कहते हैं तो कहते हैं सरकारी योजनाएं और विकास कार्यक्रम चल रहे हैं किंतु उनकी गति कछु की चाल से भी धीमीहै। सरकार के द्वारा ऐसे तो बहुत सारी योजनाएं चलाई जा रही है परंतु उनका लाभ केवल क्षणिक लाभ होता है सरकार प्रलोभन देकर वोट बैंक जमा कर लेती है आगे उनका क्या होगा इस विषय में सरकार कभी नहीं सोचती है। उरांव जनजाति के सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक जीवन में कई बदलाव आये हैं. इन बदलावों में ईसाई धर्म का प्रचार, नई राजनीतिक चेतना, और प्रवास शामिल हैं।

निष्कर्ष

उरांव जनजाति, भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है. वे झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, और छत्तीसगढ़ में रहते हैं। ये झारखंड की दूसरी बड़ी जनजाति है झारखंड में इसका मुख्य निवास स्थान गुमला तथा लातेहार जिला है 2001 की जनगणना के अनुसार इस राज्य में इनकी आबादी 1057066 है। प्रजाति दृष्टि से उरांव को प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड समूह में रखा जाता है। उरांव एक कुशल और सफल कृषक होने के साथ–साथ खेती में हमेशा कुछ जोड़ने रहते हैं ।अपने क्षेत्र के कृषि योग्य भूमि को दोन और टांड़ में विभाजित किए है।उरांव जनजाति का मुख्य पेसा कृषि रहा है परंतु वर्तमान में शिक्षा वृद्धि और इसी कारण के प्रभाव स्वरूप उरांव सरकारी नौकरी बिजनेस इत्यादि में भी अर्थव्यवस्था से जुड़ गए हैं।उरांव समाज पितृसत्तात्मक समाज है सामाजिक संगठन में परिवार वंश समुदाय गोत्र आदि के प्रमुख अंग है किंतु इन सबों में गोत्र का सबसे प्रमुख स्थान है उरांव चुकी पितृसत्तात्मक परिवार है इसलिए अन्य जनजाति के समान इस जनजाति में गोत्र पिता के ही वंश से चलता है उरांव भाषा में गोत्र को किली कहा जाता है। उरांव के बीच 50 से भी अधिक गोत्रों का पता चला है ।उरांव सामाजिक व्यवस्था में एक विशेष बात है कि उरांव गांव में युवा के लिए धूमकुड़ियां एवं अखरा होते हैं। धूम कुड़ियां में 8 से 10 वर्ष की आई यू से लेकर विवाह न होने तक लड़के लड़कियां एक साथ रहते हैं और जीवन व्यतीत करने के लिए तरह–तरह की कलाएं सीखते है। उरांव जनजाति में लड़का और लड़की के लिए अलग–अलग धूमकुड़ियां होती है। लड़कों की धूमकुड़िया को जोख ऐरपा और लड़कियों के धूमकुड़ीया को पेल ऐरपा कहते हैं। धूम कुड़िया में प्रवेश लगभग 10 से लेकर 11 वर्ष की आयु में होता है और विवाह के पूर्व तक इसके सदस्य रहते हैं इसकी तीन श्रेणियां है पुना जोखार जो नए प्रवेश करते हैं दूसरा मांझ जोखर जो 3 साल से रह रहे हैं तीसरा कोहा जोखर । धूमकुड़िया को उरांव के परंपरागत स्कूल के रूप में भी जाना जाता है जहां उपरोक्त तथ्यों की शिक्षा दीक्षा दी जाती है। आधुनिक समय में सामाजिक संस्था के रूप में धूमकुरिया लगभग मृत्यु प्राय हो चुका है। लेकिन आजकल इसे पुनर्जीवित करने के लिए अभियान चलाए जा रहे हैं एक समय में अर्थात दो तीन दशक पूर्व तक इस गांव का प्रमुख केंद्र स्थल माना जाता था।उरांव जनजाति का राजनीतिक व्यवस्था शुरुआत से ही संगठित रहा है। इनमें भूईहर ,महतो, पडहा ,पंच इत्यादि ने मुख्य भूमिका निभाई है। गांव में किसी भी प्रकार की समस्याओं का समाधान इन लोगों के द्वारा हो जाता है।

उरांव जनजाति का आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन समय के साथ धीरे–धीरे हो रहा है। उरांव जनजाति का धार्मिक विश्वास में परिवर्तन हो रहा है जिससे उनके समाज अर्थव्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन संभव है। ग्रामीण उरांव खेत और गांव से जुड़े हुए है ।

परंतु उनके जीवन में भी बदलाव आया है । परन्तु सामान्य उरांव के जीवन में अभी भी अभाव और सुविधा और शिक्षा अभियंता अंधविश्वास असंतोष और अधूरापन बना हुआ है अभी भी हर साल कटनी के बाद प्राय प्रत्येक गांव में से दो तिहाई पुरुष बाहर निकल जाते हैं खदानों कल कारखानों चाय बागानों में काम करने के लिए अभी भी कहते हैं तो कहते हैं सरकारी योजनाएं और विकास कार्यक्रम चल रहे हैं किंतु उनकी गति कछु की चाल से भी धीमीहै। सरकार के द्वारा ऐसे तो बहुत सारी योजनाएं चलाई जा रही है परंतु उनका लाभ केवल क्षणिक लाभ होता है सरकार प्रलोभन देकर वोट बैंक जमा कर लेती है आगे उनका क्या होगा इस विषय में सरकार कभी नहीं सोचती है। और अगर जब कभी सरकार कार्य भी करती है तो बिचौलिया और कुछ दुष्ट भ्रष्ट आदमी सरकार की योजनाओं का पूर्ण लाभ जानते तक पहुंचने नहीं देते हैं।

उरांव जनजाति के सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक जीवन में कई बदलाव आये हैं. इन बदलावों में ईसाई धर्म का प्रचार, नई राजनीतिक चेतना, और प्रवास शामिल हैं। उरांव जनजाति ने धर्म परिवर्तित कर जीवन को आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। हालांकि सरना धर्म को अपनाकर भी वह आगे बढ़ सकते थे परंतु कुछ अन्य सामाजिक संगठनों ने अन्य प्रकार के प्रलोभन देकर उनके धर्म को परिवर्तित कर उन्हें आगे बढ़ाने में मदद की। ग्रामीण उरांव जो सिर्फ कृषि कार्य से जुड़े हुए थे वर्तमान में प्रवास कर रहे हैं और सरकारी नौकरियां प्राप्त कर रहे हैं बिजनेस के तरफ भी आगे बढ़े हैं और कुछ कारखाने में कार्य कर रहे हैं कुछ चनों में कार्य कर रहे हैं इस प्रकार देखा जाए तो उरांव भी विभिन्न प्रकार के अर्थव्यवस्थाओं से जुड़ चुके हैं। उरांव समाज जो पितृवंशी ए समाज के रूप में जाना जाता है वह संगठित एवं कुशल समाज है उरांव के समाज में आधुनिकीकरण के प्रभाव स्वरूप शहरी वस्तुओं का आगमन हुआ जिस परिणाम स्वरूप उनके रहन–सहन के तरीकों में परिवर्तन हुआ। अब वर्तमान समय में भारत के किसी भी कोने में पौराणिक राजनीतिक व्यवस्था नहीं चलती वर्तमान कानून और व्यवस्था भारत के सभी गांव में लागू है इस प्रकार प्रशासनिक रूप से भी और राजनीतिक रूप से भी उरांव जनजाति के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। अतः स्पष्ट है कि ग्रामीण उरांव जनजाति के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक जीवन में परिवर्तन आया है।

संदर्भ सूची

1. साहु चतुर्भुज, (2012), '' झारखण्ड की जनजातियाँ '' , के.के. पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 51 से 53
2. शर्मा बिमला चरण, (2014) , '' झारखण्ड की जनजातियाँ '' , झारखण्ड झरोखा रांची , पृष्ठ संख्या 404 से 415
3. वही पुस्तक पेज संख्या 430 से 432
4. पाण्डेय एस.एस.(2010), ''समाजशास (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के लिय)'' , टाटा एम सी.ग्रो हील इजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, , पृष्ठ संख्या 9.5–9.7
5. https://jharkhandculture-com/hi/node/53
6. https://www-trijharkhand-in/en/oraon
7. https://www-trijharkhand-in/en/tribes&of&jharkhand

Mail - rajk2042@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 26-38
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानी संग्रह 'सलाम' की भाषा और शिल्प

नरेश कुमार, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
डॉ० प्रफुल्ल कुमार, पर्यवेक्षक, सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग,
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा(बिहार)

दलित साहित्य ने समाज के वर्चस्व और शोषण का प्रतिरोध करते हुए अपनी आवाज उठाई है। इसलिए इसकी भाषा और शिल्प में बदलाव स्वाभाविक है। यह साहित्य परंपरागत भाषाई मानदंडों को अस्वीकार करता है। इसमें प्रयुक्त बिंब, मिथक, प्रतीक और मुहावरे दलित जनजीवन से जुड़े होते हैं। इस भाषा का निर्माण उन्हीं साहित्यकारों ने किया है, जो इस परिवेश में रहे हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की भाषा को लेकर अलग दृष्टिकोण है। उन्हें शास्त्रीय और कृत्रिम भाषा असहज लगती है। उनके संपर्क में कारखाने के मजदूर और आम लोग रहते हैं। वे अपने रिश्तेदारों, मित्रों और सामाजिक कार्यकर्ताओं से मिलते हैं, इसलिए उनके लेखन में जनसामान्य की भाषा स्वाभाविक रूप से आती है। इस संदर्भ में वे हिंदी समीक्षकों की आलोचना भी करते हैं - यह हिंदी समीक्षकों की एक वैचारिक त्रासदी है कि जिस कृति की भाषा गूढ़, आध्यात्मिक एवं तत्वज्ञान से भरी होती है, वह कृति ही उन्हें श्रेष्ठ लगती है। जिस कृति में रोजमर्रा की भाषा अपनी दुख व्यथा है। यानि जिस कृति में साधारण जीवन की साधारण भाषा है, वह उनके लिए श्रेष्ठ नहीं है।"[1]

दलित साहित्य में सबसे अधिक आत्मकथाएँ लिखी गई हैं, जिनमें लेखकों के जीवन का परिवेश स्पष्ट रूप से उभरता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन सर्वाधिक चर्चित रचना है, जिसमें उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर की जनपदीय भाषा का प्रयोग हुआ है। ग्रामीण प्रसंगों में संवादों के माध्यम से वहाँ की भाषा जीवंत हो उठती है। हालाँकि, ऐसा नहीं है कि दलित साहित्य में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। दलित साहित्य की भाषा समय के साथ परिष्कृत हो रही है, जिसे दलित चिंतकों ने आलोचनाओं के माध्यम से स्पष्ट किया है। इस पर अक्सर सपाट बयानी और अभिधात्मक होने के आरोप लगते रहे हैं, लेकिन इसमें

संवेदना महत्वपूर्ण है। दलित साहित्यकारों ने इन आरोपों का खंडन किया है। स्वयं ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी इसका विरोध किया है -"दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ परंपरागत साहित्यिक भाषा काव्य शैली, प्रस्तुतीकरण को नकार कर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो दलितों को पीड़ा, अपमान, व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है, जिसमें युगों की यातनाएं साकार हो उठी है।"[2]

दलित साहित्यकारों ने वर्णनात्मक शैली में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, तुलसीराम, मोहनदास नैमिशराय आदि ने अपनी आत्मकथाओं में ऐसी भाषा का व्यापक प्रयोग किया है, जिससे झुग्गी-झोपड़ी, कच्चे-पक्के मकान, नदी-तालाब, तंग गलियों में घूमते सूअर, दुर्गंधयुक्त बस्तियाँ, नंगे घूमते बच्चे और आवारा कुत्तों के दृश्य सजीव हो उठते हैं। इसके साथ ही, वहाँ की सभ्यता और संस्कृति भी स्पष्ट रूप से उभरकर आती है। दलित साहित्य को लेकर शील-अश्लील, सभ्य-असभ्य जैसे मुद्दों पर विवाद होते रहे हैं। यह विवाद मुख्य रूप से दलित साहित्य में प्रयुक्त गालियों को लेकर रहा है। दलित साहित्यकारों का तर्क है कि गालियाँ, अपमानजनक व्यवहार और जातिसूचक शब्द हमारे जीवन का हिस्सा रहे हैं। यथार्थ की सटीक अभिव्यक्ति के लिए इस अपमान और पीड़ा को हू-ब-हू लिखना स्वाभाविक है।

भाषा : साहित्य की सभी विधाओं में कहानी एक ऐसी विधा है, जो छोटी होने के बावजूद जीवन की अभिव्यक्ति को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करने में सक्षम होती है। यह अलग बात है कि साहित्यिक भाषा और व्यावहारिक भाषा में अंतर होता है, लेकिन जब लेखक अपनी कुशलता से इन दोनों भाषाओं में संतुलन स्थापित कर कहानी लिखता है, तो वह पाठकों के हृदय को अधिक प्रभावी रूप से स्पर्श कर पाती है। संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेज़ी, अरबी, पुर्तगाली आदि अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग लेखक अपनी कहानियों में करते आए हैं। किसी कहानीकार ने अपनी कहानी में संस्कृत को प्रमुखता दी, तो किसी ने उर्दू को। हिंदी कहानी लेखन में प्रेमचंद और उपेंद्रनाथ अश्क जैसे लेखकों ने उर्दू प्रधान भाषा का प्रयोग किया। वे प्रारंभ में उर्दू में ही कहानियाँ लिखते थे, लेकिन जब उन्होंने हिंदी में लिखना शुरू किया, तब भी वे उर्दू शब्दों को पूरी तरह छोड़ नहीं सके। आधुनिक युग में कहानीकार भाषा के प्रति उतने सजग नहीं दिखते, जितने कथावस्तु, पात्र-योजना और अन्य तत्वों के संयोजन में होते हैं। फिर भी, भाषा ने कहानी की आत्मा और स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। आंचलिक कहानी इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें स्थानीय या ग्रामीण भाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

शिल्प : शिल्प का अर्थ कौशल, कला या युक्ति होता है। अंग्रेज़ी में इसे 'टेकनीक' कहा जाता है। साहित्यिक दृष्टि से विचार करें तो शिल्प का तात्पर्य रचना की बनावट और उसकी प्रस्तुति की शैली से है। शिल्प के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन किया जाए, तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। गद्य साहित्य का मूल्यांकन शिल्प की दृष्टि से निम्नलिखित छह बिंदुओं के आधार पर किया जाता है– कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, देश-काल, भाषा-शैली और प्रतिपाद्य/उद्देश्य। शिल्प के माध्यम से कथाकार अपने विषय को मूर्त रूप प्रदान करता है, जिससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है। यह कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। हिंदी में इसे शिल्प, शिल्प विधान या शिल्प विधि भी कहा जाता है। अर्थात, कथा साहित्य की रचना के लिए अपनाई जाने वाली पद्धति ही शिल्प विधि कहलाती है।

कहानी और शिल्प : जब कोई कथाकार कहानी लिखता है, तो उसके मन में विचारों और भावनाओं का ज्वार उमड़ता है। वह इन भावनाओं को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है, लेकिन यह किस प्रकार किया जाए, यह शिल्प का विषय है। अर्थात, कहानी की संरचना ही उसकी शिल्पगत प्रक्रिया होती है। सही ढंग से शिल्प का प्रयोग करने से न केवल कहानी और कहानीकार के उद्देश्य को सफलता मिलती है, बल्कि अभिव्यक्ति भी अधिक प्रभावशाली बनती है। शिल्प विधान का समुचित प्रयोग होने से कई संभावनाएँ खुलती हैं। यह न केवल सौंदर्यबोध को उभारता है, बल्कि भावबोध को भी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। शिल्प विधान को समझने के लिए अंग्रेज़ी के स्ट्रक्चर (Structure) और फॉर्म (Form) शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जो कहानी की आंतरिक संरचना को व्यक्त करने में सहायक होते हैं। कहानीकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि संवेदना के प्रदर्शन के लिए शिल्प के साथ अनावश्यक प्रयोग न किया जाए। उसे बुनियादी ढाँचे के साथ एक रचनात्मक संसार का निर्माण करना चाहिए, जिसमें भाव और शिल्प एक-दूसरे से इतनी गहराई से जुड़े हों कि उनमें कोई असंगति न आए। शिल्प कौशल दिखाने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह कथा को प्रभावशाली बनाने का उपकरण है। कहानीकार जब अपने शिल्प को संवेदना के साथ संतुलित करता है, तभी उसकी कहानी सार्थक और प्रभावशाली बनती है।

शिल्प की शक्ति और कथाकार की क्षमता : शिल्प की प्रभावशीलता कथाकार की क्षमता और उसकी दृष्टि पर निर्भर करती है। कुछ कहानीकार अपने कथा-संरचना में दक्ष होते हैं, जबकि कुछ इस कला में कमजोर रह जाते हैं। शिल्प विधान मौलिक भी होता है और परंपरागत भी। कहानी रचना की प्रक्रिया में शिल्प की परंपरा को आगे बढ़ाया जाता है और कहानीकार अपनी क्षमता के अनुसार उसमें नवीनता भी लाता है। इसलिए, शिल्प को एक ओर जहाँ मौलिक माना

जाता है, वहीं दूसरी ओर इसे रूढ़ भी माना जाता है। एक कुशल कहानीकार अपने शिल्प के प्रयोग से अपनी बात को स्पष्ट और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत कर सकता है। किसी भी कहानी में भाव और संवेदना जितनी भी प्रबल हों, यदि शिल्प अनगढ़ है, तो वह प्रभावहीन हो सकती है। इसलिए, कहानी में भाव योजना के साथ-साथ शिल्प योजना भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है। शिल्प कोई चमत्कार नहीं है, बल्कि यह कहानी के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कथ्य को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का एक साधन है।

अतः कहानीकार को चाहिए कि वह अपने शिल्प के साथ खिलवाड़ न करे, बल्कि उसे संवेदना के साथ इस प्रकार जोड़ें कि भावनाओं की गहराई और अभिव्यक्ति की स्पष्टता दोनों ही पाठकों तक पूरी सजीवता के साथ पहुँचें। शिल्प कहानी का एक अनिवार्य तत्व है, जो उसे प्रभावी, रोचक और भावनात्मक रूप से संपन्न बनाता है। एक कुशल कथाकार वही होता है, जो संवेदना और शिल्प में संतुलन स्थापित कर, पाठकों को अपने लेखन से जोड़ सके।

भाषा और शिल्प : सलाम संग्रह के संदर्भ में -

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित साहित्य के वरिष्ठ साहित्यकार हैं। आत्मकथा और कविता के साथ-साथ 'सलाम' और 'घुसपैठिए' उनके दो चर्चित कहानी संग्रह हैं। 'सलाम' संग्रह की सभी कहानियाँ दलित जन-जीवन के यथार्थ को उजागर करती हैं। ये कहानियाँ दलितों के जीवन को गहराई से उद्घाटित करने में इसलिए सक्षम हैं क्योंकि इनकी भाषा और शिल्प बेजोड़ हैं। इस संदर्भ में इस कहानी संग्रह का विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत है –

भाषिक पक्ष : मनुष्यों के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का सक्षम होना आवश्यक है। जब कोई लेखक समाज और परिवेश से जुड़ी हुई भाषा का प्रयोग करता है, तो समाज के लोग उन कहानियों को अधिक सहजता से समझ पाते हैं और उनकी संवेदना को महसूस कर सकते हैं। पाठक इस बात को समझ पाता है कि कहानीकार क्या कहना चाहता है और उसका उद्देश्य क्या है। पाठक की समझने की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि कहानीकार ने किस प्रकार का शिल्प विधान अपनाया है। कहानी पाठकों पर कितनी जल्दी प्रभाव छोड़ती है, यह भी शिल्प विधान की शक्ति पर निर्भर करता है। भाषा के स्तर पर, यदि किसी कहानी की भाषा सहज, सरल, प्रभावशाली और संप्रेषणीय हो, तो वह अधिक आकर्षक बन जाती है और पाठक उसे पढ़ने के लिए प्रेरित होता है। इस तरह की कहानियाँ पाठक को अपने समाज और परिवेश से रूबरू कराती हैं।

पात्र अनुकूल भाषा : ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहानी संग्रह 'सलाम' दलित जन-जीवन से जुड़ी हुई कहानियों का संकलन है। इसमें भारतीय समाज में दलितों के साथ हुए अन्यायपूर्ण व्यवहार

का दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है। गंदी बस्तियाँ, नंगे-धड़ंग घूमते बच्चे, भौंकते हुए आवारा कुत्ते, कीचड़ में लोटते सूअर आदि तमाम चीजें दलित समाज की दुर्दशा को दर्शाती हैं। वर्गभेद, वर्णभेद, जाति-पाँति, छुआछूत और समाज के विभिन्न स्तरों पर होने वाले भेदभाव की मानसिकता इस संग्रह की कहानियों में प्रकट होती है। इन भावों की प्रभावी अभिव्यक्ति के लिए कहानीकार ने पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। इस प्रयोग से पात्रों की मनोदशा एवं उनकी सामाजिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है। इसकी सहज, सरल और नाटकीय भाषा पाठक को अनायास अपनी ओर आकर्षित करती है। उनके संवादों में दलित समाज की बेचैनी, छटपटाहट और लाचारी स्पष्ट झलकती है - "ओ, सहरी जनखे हम तेरे भाई हैं ? साले जबान सिंभाल के बोल, गांड में डंडा डाल के उलट दूँगा। जाके जुम्मन चूहड़े से रिश्ता बणा।"

इतनी जोरदार लौंडिया लेके जा रे हैं सहर वाले, जुम्मन के तो सींग लिकड़ आए हैं।

अरे, लौंडिया को किसी गाँव में ब्याह देता तो म्हारे जैसों का भी कुछ भला हो जाता..."[3]

" तभी तो कहूँ-जातकों(बच्चों) कू स्कूल ना भेज्जा करो। स्कूल जाके कोण-सा इन्हें बालिस्टर बणना है।"[4]

संवाद योजना : इस संग्रह की कहानियों में वाल्मीकि जी ने संवादों की सटीक योजना की है। पात्रों के अनुसार आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग है। जिसमें हकलाहट, बेचैनी, आक्रोश, भय आदि के द्वारा नाटकीय अंदाज में पात्रों की मनोदशा का सटीक चित्रण है -

उसे देखते ही हरीश ने पूछा, "क्या बात है ? चेहरा उतरा हुआ है ? "कुछ नहीं...ठीक हूँ।" कमल ने गहरी साँस ली। "कहाँ चले गए थे ? बड़ी देर लगा दी। चाय का इंतजाम कराया है। बस तुम्हारा ही इंतजार था।" हरीश ने कहा।

कमल दीवार के सहारे टिककर बैठ गया। चुपचाप। जैसे विचारों की सुनसान पगडंडियों पर अकेला विचरण कर रहा हो, उसे इस तरह खामोश देखकर हरीश ने पूछा, "क्या बात है ? कुछ परेशान लग रहे हो ?"

"नहीं, कुछ नहीं... बस थोड़ा सिर भारी है।" कमल ने टालना चाहा।"[5]

अलंकारिकता : अलंकार भाषा का शोभा कारक तत्व है। कहानीकार इस भाषा का प्रयोग कर वाक्य को सुंदरतम रूप प्रदान करता है। इससे वाक्यों का सजावट के साथ भावबोधकता, चमत्कार और रोचकता आती है। 'सलाम' संग्रह की कहानियों में अलंकारिक भाषा का प्रयोग कई स्थलों पर हुआ है। इसके कारण भाषा प्रभावशाली बन पड़ा है, जिससे अभिव्यक्ति में काफी सहजता मिली है -

1. इसके चूने-गारे में अपने जिस्म का पसीना न मिलाए[6] 2. पुलिया पर बैठे काले और भूरे की चिंताएँ साँझ की तरह गहरी हो गई थी[7]

संप्रेषणीयता : कहानीकार भाषा के माध्यम से अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करता है। इस अभिव्यक्ति के दौरान कहानीकार की भाषा पाठक तक अगर उसी रूप में पहुंच जाए तो यह भाषा की संप्रेषणीयता है। इसके लिए वह कई साहित्यिक उपादानों का प्रयोग करता है। भाषिकरुपाधिक्यता, लाक्षणिकता, लोकोक्ति, मुहावरे भाषा के संप्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वाक्यों की बनावट और बुनावट घटनाओं की सूक्ष्मता, पात्रों की मनोवैज्ञानिकता, सहज और स्वाभाविक संवाद आदि भाषा की संप्रेषणीयता को मजबूत बनाता है।

भाषा का काम भावों को अभिव्यक्त करना है। 'भाष्' धातु से बने इस शब्द का अर्थ बोलना या कहना होता है। वाक्यगत और शब्दगत के आधार पर 'सलाम' संग्रह की कहानियों का विश्लेषण निम्न बिंदुओं पर विचार करके किया जा सकता है -

वाक्यगत प्रयोग - ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'सलाम' संग्रह की कहानियों में विभिन्न प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया है।

सरल वाक्य - जिन वाक्यों में एक कर्ता के साथ एक ही मुख्य क्रिया हो वह सरल वाक्य है। इस वाक्य के कारण भाषिक संप्रेषण में कसावट आती है, जैसे - 1. हरीश की आँखों में नींद भरी हुई थी।[8] 2. नटराजन ने दु:खी स्वर में कहा।[9]

संयुक्त वाक्य - जिस वाक्य में दो या दो से अधिक उपवाक्य हो, और कोई भी एक दूसरे पर आश्रित न हो। उसे केवल समुच्चय या अवयव द्वारा जोड़ा गया हो। ऐसे वाक्यों का प्रयोग इस संग्रह की कहानी में कम हुआ है।

1. बिना उत्तर दिए काले ने अपने कंधे पर रखी मोटी रस्सी उतारी और मृत बैल के आगे के दोनों पैरों को एक साथ मिलकर बाँधने लगा।[10] 2. मारने से पहले उसके कान पर हल्दी लगाओ और माई मदारन का नाम लेकर पानी के छींटे मारो।[11]

मिश्र वाक्य : जिस वाक्य में एक से अधिक उप वाक्य हो, जिसमें एक प्रधान तथा अन्य वाक्य गौंण या आश्रित हो, उसे मिश्र वाक्य कहते हैं। आश्रित वाक्य का आरंभ जो, कि, जिसे, यदि, क्योंकि आदि वाक्यों से शुरू होता है।

1. "ताऊ, क्या इतना काफी नहीं है कि यह मेरा दोस्त है, और मेरी बारात में शामिल है ?"[12]
2. माँ के तर्कों से जब वह ऊबने लगा तो आखिर उसने माँ से पूछ ही लिया।[13]

निषेधवाचक वाक्य : जिस वाक्यों से निषेध या नकार का भाव उत्पन्न हो उसे, निषेधवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे- 1. पूरी चिट्ठी पढ़ लेने का हौसला उसमें नहीं बचा था।[14] 2. दाम ठीक से लगाओ...इसमें तो पाँच किलो मीट भी नहीं है।[15] 3. वह हवेली नहीं आएगी।[16]

प्रश्नवाचक वाक्य : जिस वाक्य में प्रश्न किया जाए या कुछ पूछा जाए उसे, प्रश्न वाचक वाक्य कहते हैं। 'सलाम' कहानी संग्रह में भी कुछ प्रश्न वाचक वाक्य आए हैं,जो निम्न है-

1. तुम्हारा ये दोस्त पहली बार गांव आया है क्या ?[17] 2.देहरादून से तो कल एक बारात भी आई है?[18] 3. " लेकिन भाई साहब हुआ क्या है ?...क्या मैं पैसे नहीं दूंगा ?"[19] 4. मेरी जात-पात से तुझे क्या लेना देणा[20]

विधानवाचक वाक्य : जिन वाक्यों से किसी क्रिया के करने या होने की सामान्य सूचना मिलती है, उन्हें विधान वाचक वाक्य कहते हैं-

1. दरवाजे पर किसी ने जोर की दस्तक दी।[21] 2. रमेसर का मन उचट गया था।[22]

आज्ञावाचक वाक्य : जिन वाक्यों में आज्ञा या अनुमति देने का भाव हो, उन्हें आज्ञा वाचक वाक्य कहते हैं-

1. कल उसे हवेली भेज देना।[23] 2. सरपंच को बुलाकर लाओ[24]

संकेतवाचक वाक्य : जिन वाक्यों से एक क्रिया पर दूसरी क्रिया निर्भर होने का बोध होता हो, उन्हें संकेत वाचक वाक्य कहते हैं -

1. यदि कोई आ गया तो बहुत मुश्किल होगा।[25] 2. आप गंदगी ढोने जाती है...लोग देखते हैं तो शर्म आती है।[26]

इच्छा सूचक वाक्य : वक्ता की इच्छा, आशा, आकांक्षा या आशीर्वाद को व्यक्त करने वाले वाक्य इच्छा सूचक वाक्य कहलाते हैं-

1." तुम्हारे जबान में कीड़े पड़े।"[27] 2. बरखुरदार हौसला रखो...जिस मुकाम पर तुम पहूँचना चाहते हो जरूर पहुँचोगे।[28]

संदेह वाचक वाक्य : जिन वाक्यों में कार्य होने के संबंध में संदेह हो, उन्हें संदेह वाचक वाक्य कहते हैं-

1. कहीं वह भी चूहड़ा-चमार ही न हो।[29] 2. सूबसिंह किसी भी समय लौटकर आ सकता है।[30]

विस्मयादिबोधक वाक्य : जिन वाक्यों से आश्चर्य, हर्ष, शोक, घृणा के भाव व्यक्त होते हो, उन्हें विस्मयादिबोधक वाक्य कहते हैं-

1. अब क्या बताएँ सर! हर कोई सचिव या कोषाध्यक्ष बनना चाहता है।[31] 2. हाय! इतनी सुंदर और बाँझ...[32]

लोकोक्तियाँ : लोकोक्ति का अर्थ है- लोक में प्रचलित उक्ति। इसका पर्यायवाची शब्द कहावत होता है। यह अनुभव युक्त वाक्य है जो संक्षिप्त और सारगर्भित होता है। यह लोक के अनुभवों से उपजता है। 'सलाम' कहानी संग्रह में ऐसी लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है-

1.घर में तो चूहा भी सुरमा बणा रहे है।[33] 2. गाँठ में नहीं है पैसा, चले हाथी खरीदने।[34] 3. दुनिया को लूट्टो भी और भले भी बणे रहो।[35] 4. सुबह का भूला घर लौट आवेगा[36]

सूक्तियाँ : सूक्ति का अर्थ है सुंदर उक्ति। यह समय और समाज के सापेक्ष होता है। लेखक अपने अनुभवों को सूक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। 'सलाम 'संग्रह की कहानियों में भी लेखक ने सूक्ति का प्रयोग किया है -

1. अपने देश की सूखी रोटी भी परदेस के पकवानों से अच्छी होती है।[37] 2. आदमी जब आदमखोर बन जाता है,तो फिर अपना-पराया नही देखता।[38]

मुहावरे : मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है। जो 'हौर' शब्द से बना है। जिसका अर्थ है 'अभ्यास' अर्थात 'बातचीत'। वाच्यार्थ से भिन्न लाक्षणिक अर्थ देने वाला वाक्यांश ही मुहावरा कहलाता है। इसके प्रयोग से भाषा संजीव, रोचकऔर आकर्षक बनता है। 'सलाम' कहानी संग्रह में भी मुहावरे का प्रयोग हुआ है - टाँग अड़ाना, टस-से-मस न होना(पृ. -24), रंगे हाथों पकड़ना(पृ. -17), चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना(पृ. - 60), पहेलिया बुझाना(पृ. -29) आदि।

शब्दगत प्रयोग : भाषा की छोटी सार्थक इकाई को शब्द कहते हैं। सार्थक शब्दों / पदों के क्रम से वाक्य बनता है। शब्दों के सुंदरतम चयन से भाषा प्रभावपूर्ण और रोचक बनता है। इसके द्वारा लेखक अमूर्त भावों को भी मूर्त रूप प्रदान करते हैं। 'सलाम' कहानी संग्राम में भी कई शब्दों का प्रयोग हुआ है।

तत्सम शब्द : 'तत्सम' उसके समान अर्थात अपने स्त्रोत संस्कृत के समान, जो शब्द अपनी मूल भाषा से जैसे-के-वैसे बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार किए जाते है उन शब्दों को तत्सम शब्द कहा जाता है। हिंदी भाषा की मूल भाषा संस्कृत है। इस दृष्टि से संस्कृत के जो शब्द अपने मूल रूप में बिना परिवर्तन के हिंदी में आए हैं - तत्सम है। वाल्मीकि ने 'सलाम' संग्रह की कहानियों में तत्सम शब्दों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया है -

प्रकट (17), ऋषि (25), ईर्ष्या (64), चंद्र (65), सूर्य (66), शंख (67), कृतज्ञ (69), दृष्टि (75), स्पर्श (76), संस्कार (82), मंथन (86), ध्वनि, प्रतीक्षा (93), मुद्रा (97), प्रतिरोध

तद्भव : जो शब्द किसी भाषा में उसके मूल भाषा से भाषा विकास की प्रक्रिया में अपने मूल रूप में परिवर्तन हो स्वीकार किए जाते हैं, उन शब्दों को तद्भव शब्द कहते हैं। ये शब्द भाषा विकास प्रक्रिया में अपने मूल रूप से भिन्न रूप में सामने आते हैं। इनका रुप बदलता है अर्थ

नहीं हिंदी भाषा की मूल भाषा संस्कृत है। 'सलाम' कहानी संग्रह में प्रयुक्त तद्भव शब्द निम्न प्रकार - कान, काम(12), डंडा(13), सूरज(16), नाक(18), कुँआ(32), उँगली(34), आगे(37), दाँत(46), आँख(51), रात(53), मुँह(57), आग(62), बहु, महीना(124) आदि।

देशज शब्द : वाल्मीकि जी की कहानियाँ दलित समाज की जीवन दशाओं से संबंधित है। उनकी भाषा मानक भाषा से भिन्न है तथा उनका अपना एक लहजा है। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग उनकी रचनाओं में पात्रों के वक्तव्यों, निश्चित स्थिति सूचकता तथा वस्तू निर्धारण में हुआ है -

जेवडी खंडजे(10), जोहड(17), जातक, लौंडिया(18), गोड्डे(33), तीज(66), गुंबज(77), अधंड(84), ओक(96), डोल(98), खसम(99), लोटा(98), झाडू(114), टट्टी(114), पेट(66), खिडकी(109) आदि।

विदेशी शब्द : ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने संग्रह 'सलाम' में इन शब्दों का प्रचूर प्रयोग किया है। पात्रों की शैक्षिक स्थिति, स्थान (नगर-देहात) तथा विषय की आवश्यकता के अनुसार अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मुख्यत: सपना, कुचक तथा अंधड कहानियों में हुआ है; इसके बावजूद अन्य कहानियों में भी अंग्रेजी शब्दों की भरमार है।

अंग्रेजी शब्द : बलिस्टर(18), क्लब, स्कूल, हाइवे(20), गॉड फियरिंग(23), एलीमेंट, केबिन(24), वर्कर, टीम(25), गेट(27), फंक्शन(26), मिस्टर(29), डॉक्टर(36), प्लैट(47) आदि।

अबरी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी संग्रह की कहानियों में यंत्र-तंत्र दिखाई देता है। इसके बावजूद हिंदी की सहजता और स्वाभाविकता बरकरार है। इन शब्दों का संबंध भारतीय भाषाओं से कई शताब्दियों का होने के कारण ये शब्द भारतीय भाषाओं में रच-पच गए है।

अरबी फारसी शब्द : खामोशी(10), इनकार, साजिश(16), इत्मिनान(28), खाल(32), खुन(37), औकात, कौशिश(59), गिरात(68), इबारत(75), हरफ(80), ताज्जुब(86), इजाजत, इंतजाम(87), आदि ।

युग्मक शब्द : 'युग्म' से तात्पर्य दो शब्दों के योग से है। अर्थात जब भाषा में शब्दों का प्रयोग मिले-जुले रुप में होने लगता है, तब उस शब्द प्रयोग को युग्मक शब्द कहा जाता है। यह शब्द प्रयोग पर्यायवाची, विलोमी, सार्थक निरर्थक, संख्यावाचक आदि किसी भी प्रकार का हो सकता है। इन शब्दों के युग्मक शब्द : 'युग्म' से तात्पर्य दो शब्दों के योग से है। अर्थात जब भाषा में शब्दों का प्रयोग मिले-जुले रुप में होने लगता है, तब उस शब्द प्रयोग को युग्मक शब्द कहा जाता है। यह शब्द प्रयोग पर्यायवाची, विलोमी, सार्थक निरर्थक, संख्यावाचक आदि किसी भी

प्रकार का हो सकता है। इन शब्दों केउच्चारण में बहुत हद तक समानता या ध्वन्यात्मकता होती हैं। यह शब्द आदत के कारण सहजता से उच्चारित किए जाते है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भाषा की सहजता, स्वाभाविकता को अक्षुण्ण रखते हुए युग्मक शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्द प्रयोग के कारण भाषा अकृत्रिम, सजीव, सहजग्राह्य एवं प्रभावपूर्ण बनी है। सलाम की भाषा में युग्मक शब्दों के सभी प्रकार पाए जाते हैं ।

पर्यायवाची युग्म : इस शब्द युग्म के दोनों शब्द सार्थक होते हुए एक-दुसरे के पर्याय होते है या एक ही क्रिया से संबंधित होते है -

नई-नवेली(16), डरा-धमका(18), जोर-शोर, रंग-ढंग(23), पढ़ने-लिखने(49), घर-आँगन(44), चलना-फिरना(52), रुप-रंग(58), नेम- व्रत(64), तीज-त्योहार(66), लाड-प्यार(71), सोचने समझने(72), सोच-विचार(74), सुख-चैन(75), दुबला-पतला(78), विचार-मंथन(86), दुनिया-जहान(96), चिखना-चिल्लाना(112), गाँव-देहात(124) आदि।

विलोमी युग्म : इस प्रकार के शब्द युग्म में प्रयुक्त शब्द परस्पर विरोधी अर्थ के होते है। यहाँ शब्द विलोमी होने के बावजूद अर्थ बोधन में यह युग्म अपने विलोमी अर्थ को त्याग विशिष्ट अर्थ सुचक बनते है। ऊँच-नीच(16), जीना मरना(18), रात-दिन(25), उत्तर-दक्षिण(26), इधर-उधर(27), आदि।

सार्थक- निरर्थक युग्म : ये युग्म सार्थक निरर्थक के युग्म से बनते है। इसमें ध्वनि साम्यता के आधार पर सार्थक शब्द का समुच्चारित निरर्थक शब्द बनता है। सार्थक शब्द के साथ जुड़कर निरर्थक शब्द भी सार्थक बनता है - अलग-थलग(16), शोर-शराबा(31), नामी-गिरामी (33), नंग-धडग(36), गोल-मटोल, सुध-बुध(77) आदि।

संख्यावाचक युग्म : ये शब्द संख्यावाचक शब्दों के योग से बनते है। इनका प्रयोग परिणाम, समय, संख्या के संबंध में जानकारी देने के लिए किया जाता है-

इक्का-दुक्का(21), दो-तीन(28), सौ-सौ(30), तीन-तीन(32), एक-दूसरे(40), एक-आध(43), बारह-एक(85), दस-साढ़े दस(121) आदि।

पुनरुक्त शब्द : इस शब्द युग्म में एक ही शब्द का दोबारा उच्चारण होता है । शब्द की पुनरावृत्ति होने के कारण इसे पुनरुक्त शब्द कहा जाता है । किसी भाव या विचार पर बल देने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। वाल्मीकि ने अपनी कहानियों में इन शब्दों का यथोचित प्रयोग किया है- चिंदी - चिंदी(16), लाल-लाल(21), धीरे- धीरे(24), बड़े-बडे(26), पीछे-सीधे-सीधे(103), रेशा रेशा(112), समझा-समझा(116), नस-नस(125) आदि।

ध्वन्यात्मक शब्द : ध्वन्यात्मक शब्दों को अनुकरणात्मक शब्द भी कहते है। इन शब्दों का निर्माण किसी ध्वनि विशेष के अनुकरण के आधार पर किया जाता है। इन शब्दों के उच्चारण और अर्थ में बहुत अंतर नहीं होता। प्रकृति के तेवर, कहानियों के पात्रों की मनोदशा, पशु-पक्षियों का स्वर आदि को यथातथ्य रुप में अंकित करने के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। 'सलाम' संग्रह में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग वातावरण निर्मिति तथा विषय की प्रामाणिकता को बढाने के लिए किया गया है। भिनभिनाना(11), रंभाना(36), भडभड(48), खटखटाना(48), खटर-पटर(52), घर्र-घर्र -चहट(88), सडाक - सडाक(116), चिर - चिर(123), झीन-झीन(126), साँय-सॉय(69), चीं(47) आदि।

गालियों का प्रयोग : ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों की स्थिति को यथातथ्य अपनी कहानियों में चित्रित करते हैं। वहाँ की स्थिति में अभाव है, गंदगी है, गाली है। इन सब को वाल्मीकि ने निहायत असली रुप में अपनी कहानियों में स्थान दिया है। इन गालियों के कारण पात्रों की मनोदशा, उनका स्तर, बोलने का तरीका स्पष्ट हो जाता है। इन शब्दों के प्रयोग से रचना में स्वाभाविकता का संचार हुआ है। ये शब्द निम्न प्रकार - चूतिया(12), कंजडों(14), भोसड़ के(33), हारामियों(58), नासपीट्टे(64), कमीने, हरामजादे(73), साले(82), जाहिल, मूर्ख(105), चोट्टे, कुत्ते, छिनाल(116), करमजली(117) आदि।

इसके साथ ही कुछ शब्द प्रयोगों का गालीनुमा प्रयोग किया है -

(1) अरे, ओ थाली के बैंगन (पृ. 30) (2) गॉड में डंडा डाल के उलट दूँगा । (पृ. 13) (3) अपने माँ के यार कू ट्टटी में घसीट लेती । (पृ. 116)

इस प्रकार पात्रों द्वारा सहजता से उपरोक्त गालियों का प्रयोग किया है। ये पात्र आम बोलचाल में सहजता से इन गालियों का प्रयोग करते है।

अशुद्ध शब्द प्रयोग : वाल्मीकि के दलित पात्र अज्ञानी, अशिक्षित है तथा उनकी विशिष्ट बोली और विशिष्ट लहजा है। उन पात्रों के कथनों में मानक शब्दों के अशुध्द प्रयोग पाए जाते है। अशुध्द प्रयोग एक दोष माना जाता है लेकिन सलाम की कहानियों में इन शब्दों का इतना सटीक प्रयोग हुआ है कि विशेषता बन गए है। पात्रों की उच्चारण शैली तथा उनकी बोली का प्रभाव निम्न शब्दों से साफ दिखाई देता है - इब (अब, 17), बालिस्टर (बॅलिस्टर, 18), बाट (राह, 41), गिया (गया, 41), अच्छर (अक्षर, 49), पंडत (पंडित, 58), निरदोस (निर्दोष, 61), साद्दी (शादी, 64), लिकडरा (निकल रहा, 67), बी (भी, 71), लच्छन (लक्षण, 75), सिंभाल (संभाल, 83), इराम (आराम, 98), किलारक (क्लार्क, 118) आदि।

वस्तुत: ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानी संग्रह 'सलाम' की भाषा-शिल्प दलित समाज के यथार्थ को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करने में सक्षम है। इस संग्रह की भाषा सहज, सरल, संप्रेषणीय और पात्रानुकूल है, जिससे कहानियाँ अधिक प्रभावी बनती हैं। संवादों की सहजता और वास्तविकता पात्रों की मनोदशा को प्रकट करने में सहायक सिद्ध होती है। भाषा में अलंकारिकता और मुहावरों का प्रयोग कथानक को रोचक और प्रभावशाली बनाता है। संप्रेषणीयता के स्तर पर यह भाषा पाठक को सीधे जोड़ने में सफल होती है। कुल मिलाकर, यह संग्रह दलित समाज की पीड़ा, संघर्ष और यथार्थ को सजीव रूप में प्रस्तुत करता है, जिससे पाठकों के मन में संवेदना उत्पन्न होती है।

संदर्भ सूची :

1. साहित्य और दलित दृष्टि, मैनेजर पांडेय, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ सं० - 99
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2014, पृष्ठ सं० - 81
3. सलाम,(कहानी संग्रह), राधा कृष्ण पेपर बैक्स, दिल्ली, संस्करण - 2023, पृष्ठ सं० -13
4. वही, पृष्ठ सं० - 18
5. वही, पृष्ठ सं० - 14
6. वही(सपना), पृष्ठ सं० - 29
7. वही, पृष्ठ सं० - 35
8. वही, पृष्ठ सं० -10
9. वही(सपना), पृष्ठ सं० - 23
10. वही (बैल की खाल), पृष्ठ सं० - 33
11. वही (भय), पृष्ठ सं० - 44
12. वही (सलाम), पृष्ठ सं० -10
13. वही, पृष्ठ संख्या - 15
14. वही (अंधड़), पृष्ठ सं०- 85
15. वही (भय), पृष्ठ सं० - 50
16. वही (गोहत्या), पृष्ठ सं० - 58
17. वही (सलाम), पृष्ठ सं० - 9
18. वही, पृष्ठ संख्या - 11
19. वही, पृष्ठ सं० - 12

20. सलाम, पृष्ठ संख्या - वही
21. वही (कहाँ जाए सतीश ?), पृष्ठ सं० - 48
22. वही (बिरम की बहू), पृष्ठ सं० - 75
23. वही(गोहत्या), पृष्ठ सं० - 58
24. वही (गोहत्या), पृष्ठ सं० - 59
25. वही (भय), पृष्ठ सं० - 44
26. वही (अम्मा), पृष्ठ सं० - 122
27. वही (कुचक्र), पृष्ठ सं० - 11
28. वही (कहाँ जाए सतीश ?), पृष्ठ सं० - 52
29. वही, पृष्ठ सं० - 53
30. वही (खानाबदोश), पृष्ठ सं० - 128
31. वही (सपना), पृष्ठ सं० -22
32. वही (ग्रहण), पृष्ठ सं० - 65
33. वही, पृष्ठ सं० - 124
34. वही, पृष्ठ सं० -126
35. वही, पृष्ठ सं० - 119
36. वही, पृष्ठ सं० - 121
37. वही, पृष्ठ सं० - 124
38. वही, पृष्ठ सं० -119

ई-मेल: yadavnareshkumar9472@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 39-43
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी की दृष्टि में नई शिक्षा नीति, 2020

डॉ. श्याम सिंह, पोस्ट-डॉक्टोरल शोध अध्येता (PDF),
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारत के इतिहास में प्रथम बार भारत केंद्रित, भारतीय मूल्यों से ओतप्रोत, परंपरागत भारतीय ज्ञान परंपरा से युक्त अजर अमर, भारतीय संस्कृति पर आधारित नई शिक्षा नीति के विकास में श्री निशंक जी का महत्वपूर्ण योगदान है। 1947 में देश की स्वतंत्रता के पश्चात् पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारत सरकार द्वारा 1968 में लागू की गई थी तथा दूसरी 1986 में लायी गई थी। 34 वर्षों के बाद यह नई शिक्षा नीति आयी है। भारत विश्व का सबसे बड़ा युवा देश होने की अवधारणा के साथ शिक्षा की गुणवत्ता, नवाचार के संबंध में जनसंख्या की बदलती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक नई शिक्षा नीति चिर-प्रतीक्षित थी। दुनिया के सबसे व्यापक चिंतन-मंथन और विमर्श के पश्चात् इस शिक्षा नीति का स्वरूप तैयार किया गया है, जो हिंदुस्तान को विश्व पटल पर ज्ञान की महाशक्ति के रूप में स्थापित करेगा। नई शिक्षा नीति भारत के इतिहास में अभी तक की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण शिक्षा नीति है। इस नीति में भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था, ज्ञान, परंपरा, दर्शन और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के संबंध को मजबूत आधार प्रदान किया गया है।

शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के संदर्भ में भारत की सतत प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है। सार्वभौमिक उच्च स्तरीय शिक्षा वह उचित माध्यम है, जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सकता है। अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा

जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवाओं को उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। **(भारत सरकार, 2022)**

रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी का मानना है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास उसके अच्छे आचरण से होता है। अच्छे आचरण से व्यक्ति चरित्रवान बनता है और चरित्रवान व्यक्ति समाज के लिए पूंजी के समान होता है। शिक्षा का असली मकसद व्यक्तित्व का निर्माण करना है। अच्छी शिक्षा एक सामान्य मनुष्य को ऊंचाइयों तक ले जाती है। शिक्षा केवल मनुष्य के ज्ञान तक सीमित नहीं है वरन् शिक्षा व्यक्ति के संयम व विकास पर केंद्रित होनी चाहिए।[10] शिक्षा व्यक्ति के अन्तःकरण को न केवल परिष्कृत करती है वरन् वह एक अचछे नागरिक का भी निर्माण करती है। **(निशंक, 2021)**

निशंक जी ने इस विषय पर गहन अध्ययन किया है और निरंतर विभिन्न सेमिनारों, वेबिनारों और वक्तव्यों के माध्यम से इस नई शिक्षा नीति पर परिचर्चा कर इसकी सार्थकता और महत्ता को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य कर रहे हैं। इस विषय पर निशंक जी की ***'विश्व का सबसे बड़ा शिक्षा संवाद'*** शीर्षक से एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक संवादों का एक संकलन है जो व्यापक स्तर पर हमारा ज्ञानवर्धन करती है।

श्री निशंक जी के मत में यह नवीन शिक्षा नीति संवाद की एक लंबी प्रक्रिया से विकसित हुई है। इसमें हितधारकों से सुझाव आये, जितना हो सका, सबकी आशाओं और अपेक्षाओं पर खरा उतरने का प्रयास किया गया है। यह नीति 130 करोड़ भारतीयों के सपनों को नए पंख देने की नीति है। यह नीति उड़ान के लिए प्रेरित करने का संकल्प है। इस नीति से हम भारत को ज्ञान आधारित महाशक्ति बनाने में सक्षम होंगे। इस नीति को जहां आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबद्ध किया गया है, वहीं इसे भारत के शाश्वत मूल्यों और संस्कारों से युक्त बनाया गया है ताकि हमारी युवा पीढ़ी न केवल सुशिक्षित हो बल्कि सुसंस्कारित भी हो।

इस नवीन शिक्षा नीति के निर्माण में बहुसंख्यक हितधारकों से संवाद किये गए, सुझाव लिए गए और गहन विचार विमर्श किया गया। यह शिक्षा नीति गहन विचार- मंथन का परिणाम है। श्री निशंक जी खुद अपनी पुस्तक *'विश्व का सबसे बड़ा शिक्षा संवाद'* में लिखते हैं कि ***"एक शिक्षक होने के नाते मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा नीति पर व्यापक मंथन होना चाहिए। कोई भी ऐसा सुझाव न रह जाये जिसे हम समाहित न कर पाएं और शायद इसी भावना का परिणाम था कि स्कूल के अध्यापक से लेकर विभिन्न राज्यों के राज्यपालों, प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ, कृषि विशेषज्ञ, चिकित्सक, प्रबंधक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, पर्यावरणविद इत्यादि से सार्थक परामर्श लिए गया और संवाद किया गया।"*** **(निशंक, 2022)**

नई शिक्षा नीति का जब विश्लेष्ण करते हैं तो इसकी रूपरेखा, प्रस्तावना तथा निर्माण में गांव से लेकर शहर तक, ग्राम प्रधान से लेकर प्रधानमंत्री तक, शिक्षक से लेकर शिक्षाविदों तक

और ग्राम सभा से लेकर संसद तक कोई भी ऐसा क्षेत्र अछूता नहीं रहा जिसके विचारों और सुझावों को इसमें शामिल न किया गया हो। शिक्षा नीति में भारत की विश्वगुरु की संकल्पना को समाहित किया गया है। शैक्षिक नवाचारों के माध्यम से भारत आने वाले समय में एक महाशक्ति के रूप में स्थापित होगा। अपनी पुस्तक में निशंक जी स्वयं लिखते हैं कि ***"नया भारत, स्वच्छ भारत, सशक्त एवं श्रेष्ठ होगा, देश आत्मनिर्भर हो, यह दुनिया का मार्गदर्शक बने।"*** **(निशंक, 2022)**

यह शिक्षा नीति एक गांव के अंतिम छोर पर बैठे रहने वाले छात्र, जिसके पास कोई सुविधा नहीं है, वहां से लेकर और अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा तक किसी भी क्षेत्र में ज्ञान-विज्ञान, अनुसंधान, नवाचार, प्रौद्योगिकी जिस भी क्षेत्र में अब चाहे कला-विज्ञान हो, चाहे वो संस्कारों का क्षेत्र हो, सभी को समाहित करती है। यह दुनिया की पहली नीति होगी, जो अपने संस्कारों पर अपने मूल्यों की आधारशिला पर खड़े हो करके और विश्व की प्रतिस्पर्धा में जाएगी। इस शिक्षा नीति को शिक्षा के विभिन्न चरणों के अंतर्संबंधों को ध्यान में रखते हुये शिक्षा के लिए एक एकीकृत और लचीला दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए तैयार किया गया है।

निशंक जी नई शिक्षा नीति के संबंध में उद्यमिता और इंजीनियरिंग को आपस में जोड़कर उसके दोनों पहलुओं को एक नए निर्माण की दिशा में खड़े करने की बात करते हैं। अर्थात अभी तक जो छात्र आईआईटी कर रहे हैं, वो केवल कक्षा में और प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं रहेंगें बल्कि उनकी प्रयोगशालालायें खेतों पर होंगीं। इसके साथ ही आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के दौर में हमारी शिक्षा नीति आधुनिकता के सारे आयामों को बहु विषयक और बहुभाषी पक्षों को लेकर भी आगे बढ़ रही है। इस शिक्षा नीति में योग्यता की पहचान होगी और उसका विकास किया जायेगा। इस नई शिक्षा नीति का केंद्र बिंदु छात्र होगा और यह नीति खुद को स्किल और वोकेशनल ट्रेनिंग के जरिये अपडेट रखने में ज्यादा कारगर साबित होगी। इस शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में केंद्र सरकार के साथ ही राज्यों की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना गया है। यह नीति राज्यों को संविधान के समवर्ती प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न मामलों पर निर्णय लेने की स्वायत्तता का अधिकार प्रदान करती है।

श्री निशंक जी के अनुसार यह एक ऐसी ऐतिहासिक और दूरगामी नीति है जो देश के पूरे परिदृश्य को बदल देगी। इसके तहत विभिन्न पहलों से हम इस नीति को वैश्विक प्रणालियों के साथ जोड़ने में सक्षम ही नहीं होंगे बल्कि वैश्विक स्तर पर अपना योगदान दे पायेगें। यह नीति छात्र की पसंद को केंद्र में रखती है और विषयों के चुनाव में लचीलेपन और विभिन्न विषयों की विभिन्न धाराओं के बीच शोध के माध्यम से संबंध स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। राष्ट्र निर्माण को समर्पित हमारी नीति पहुंच, समानता, गुणवत्ता, सामर्थ्य और जवाबदेही के मूलभूत स्तंभों पर स्थापित है। एक ओर यह नीति नवाचार की बात करती है तो दूसरी ओर यह समावेशी और समान गुणवत्ता पर केंद्रित होकर सभी को आजीवन सीखने हेतु प्रेरित करती है।

नई शिक्षा नीति सर्वांगीण विकास पर विशेष ध्यान देती है। यह नीति सतत विकास के लिए 2030 एजेंडा के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संकल्पबद्ध है। इस नीति के माध्यम से शिक्षा के अंतरराष्ट्रीयकरण पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। इसे प्रोत्साहन देने के लिए विदेशी छात्रों की मेजबानी करने वाले प्रत्येक एचआई में विदेशी छात्रों का कार्यालय, गुणवत्तापूर्ण आवासीय सुविधाएं, शिक्षा की समग्र गुणवत्ता में सुधार, अंतरराष्ट्रीय पाठयक्रम के अनुरूप आधुनिक अवस्थापना, संयुक्त डिग्री, जुड़वां व्यवस्था और दोहरी डिग्री की अनुमति देने के लिए विनियमों की योजना बनाई गई है। भारतीय और विदेशी संस्थानों के बीच अधिक से अधिक सहयोग सुनिश्चित कर देश को विश्वगुरु बनाने का मार्ग प्रशस्त किया किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति अध्ययन के बजाय सीखने पर बल देती है। इस नीति में 2025 तक 3-6 वर्ष तक की आयु के बच्चों के गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बाल्यकाल देखभाल और शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रारंभिक वर्षों के महत्त्व पर अधिक बल दिया गया है। इसलिए इसमें टेन प्लस टू को हटाकर फाइव प्लस थ्री, प्लस फोर को प्रस्तुत किया गया है।

भाषा की दृष्टि से बात करें तो भारतीय भाषाओं का प्रचार-प्रसार एवं संरक्षण-संवर्धन जीवंतता को सुनिश्चित करने के लिए बहुत सारी पहलें इस नीति में की गई हैं। शास्त्रीय, जनजातीय और लुप्तप्राय: भाषाओं सहित सभी भारतीय भाषाओं को संरक्षित करने और उन्हें बढ़ावा देने का प्रयास किया गया है। निशंक जी भारतीय भाषाओं के संबंध में हिंदी और भारतीय भाषाओं के सशक्तिकरण की बात करते हैं। नई शिक्षा नीति में भाषाओं के विकास पर विशेष बल दिया गया है। उनका विचार है कि भाषा वही होनी चाहिए जिसमें हम सहजता से अपनी बात रख सकें। इस विषय पर वे अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि ***"ये भाषा एक शब्द नहीं है, उसमें ज्ञान है, विज्ञान है, परंपरायें हैं, जीवन है। उन भाषाओं को हम कैसे छोड़ सकते हैं और इसलिए बचपन से ही अपनी भाषा में जितनी सशक्त तरीके से अभिव्यक्ति होती है वो सिखाई गई भाषा में नहीं होती।"*** **(निशंक, 2022)**

विश्व पटल पर कार्य करने वाला व्यक्ति या भाषाओं में रूचि रखने वाला व्यक्ति आज हिंदी की अनदेखी नहीं कर सकता। इस बात के अनेक संकेत हैं कि भारत एक आर्थिक महाशक्ति के साथ विश्वगुरु के रूप में उभर रहा है। विश्व के अन्य देशों की भांति भारत में भी नई शिक्षा नीति के तहत मातृभाषा में शिक्षा उपलब्ध करायी जाएगी। भारत दुनिया का पहला देश होगा जहां स्कूली शिक्षा से ही कृत्रिम बुद्धिमता जैसे विषयों को पढ़ाया जायेगा।

निशंक जी नई शिक्षा नीति और कोरोना काल की चुनौतियों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भारत ने विषम परिस्थितियों की चुनौतिओं को अवसरों में बदला है। कोरोना काल में भी बच्चों की शिक्षा बाधित नहीं हुई और कई बड़ी परीक्षाओं को संपन्न कराया गया है। इस दौरान 33 करोड़ विद्यार्थियों को ऑनलाइन शिक्षा उपलब्ध करायी गई।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नई शिक्षा नीति के निर्माण में पूर्व केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल जी का महत्वपूर्ण और अतुलनीय योगदान है। श्री निशंक जी के सहयोग से इस नई शिक्षा नीति के सपने को साकार किया जा सका है। श्री निशंक जी के विचार में यह नवीन नीति लोकल से लेकर ग्लोबल तक जाने की क्षमता रखने वाली नीति है। नए भारत के निर्माण की दिशा में यह नीति शोध अनुसन्धान, प्रौद्योगिकी से युक्त, रोजगार से युक्त लेकिन भारत केन्द्रित होगी और पीछे के ज्ञान-विज्ञान को ले करके अनुसंधान के साथ, नवाचार के साथ शिखर तक पहुंचने की ताकत रखेगी। यह शिक्षा नीति भारत में सस्ती कीमत पर गुणवत्तापरक, नवाचारयुक्त शिक्षा प्रदान करेगी जिससे वैश्विक स्तर पर भारत का परचम लहराएगा। श्री निशंक जी नई शिक्षा नीति और प्राचीन भारतीय संस्कृति, दर्शन, मूल्य, ज्ञान एवं परंपरा पर बल देते हुए कहते हैं कि *"आज दुनिया को हिंदुस्तान की जरुरत है, पूरी दुनिया में सुख-शांति और समृद्धि का रास्ता हिंदुस्तान से होकर गुजरता है।"*

संदर्भ सूची:

- 'निशंक' पोखरियाल, रमेश. (2022*). विश्व का सबसे बड़ा शिक्षा संवाद (आभासी शिक्षा-संवाद).*नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.
- भारत सरकार (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020.* नई दिल्ली: मानव संसाधन विकास मंत्रालय.
- निशंक पोखरियाल, रमेश. (2021). *मूल्य आधारित शिक्षा.* नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.
- https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1581576

मोबाइल नं: 8423280107 **ईमेल- shyamsinghbhu@gmail.com**

पता:

डॉ. श्याम सिंह

ग्राम व पोस्ट- अदलाबाद

तहसील- निघासन

जिला- लखीमपुर खीरी, उत्तर प्रदेश

पिन- 262903

मोबाइल- 8010581128

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 44-48
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कबीर : एक वाणी तानाशाह ?

तमन्ना, विद्यार्थी (एम.ए. हिन्दी),
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय (अंबाला छावनी)

सारांश : कबीरदास भारतीय संत काव्य परंपरा के प्रमुख कवि थे। उनकी वाणी समाज, धर्म, आस्था के प्रति तीव्र आलोचना प्रस्तुत करती हैं। कुछ विद्वानों द्वारा उन्हें 'तानाशाही वाणी' का प्रतीक माना जाता है, परंतु अन्यविद्वान उन्हें एक जागरूक समाज सुधारक के रूप में देखते हैं।

परिचय : कबीर भारतीय संत परंपरा के महत्त्वपूर्ण कवि और विचारक थे। उनकी रचनाओं ने समाज की रूढ़ियों और धार्मिक पाखंड के विरुद्ध आवाज उठाई। "कबीर परिचई" में अनन्तदास ने सिकंदर लोदी द्वारा कबीरदास पर अत्याचार किए जाने की दो घटनाएं प्रस्तुत की हैं। हाथी से कुचलवाने का प्रयास तथा लोहे की जंजीरों से बांधकर नदी में डूबवाने का प्रयास किया गया।

कबीरदास					
जन्म : 1398 ईस्वी (काशी)	*गुरुः रामानंद*	*शिष्यः धर्मदास*	*रहस्यवाद : उलटबांसिया*	*रचनाएँ: बीजक (साखी, सबदी, रमैनी)*	*मृत्युः1518 ईस्वी (मगहर)*

(परिभाषा) :

"डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा कथित है कि "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया - बन गया तो सीधे - साधे, नहीं तो दरेरा देकर "

शोध का उद्देश्य:

1. कबीर की वाणियों में तानाशाही के खिलाफ उनकी आलोचना का विश्लेषण करना।
2. कबीर के विचारों से यह समझना कि तानाशाही के खिलाफ उनकी सोच समाज के लिए किस प्रकार का संदेश देती है।
3. कबीर के समय की राजनीति और समाज पर तानाशाही के प्रभाव का अध्ययन करना।

कबीर का व्यक्तित्व :

प्रायः व्यक्ति के शारीरिक गठन ,चेहरे, वेशभूषा, को ही व्यक्तिव मान लिया जाता है। परंतु आधुनिक युग में किसी भी व्यक्ति के उसके व्यक्तित्व में उसके मधुर वाणी, व्यवहार , कुशल, साहसी आदि गुणों को ही प्रधान व्यक्तित्व माना जाता है।

बाह्य व्यक्तित्व :

कबीरदास जी के जन्म व मृत्यु के समय का निर्धारण करने में आलोचको के मतभेद हैं। कबीरदास जी को मंझले कद का स्वामी दिखाया गया है। दुबले, पतले , मजबूत शरीर वाले, चेहरे पर बढ़ी हुई दाढ़ी व मूंछों को धारण किए हुए, आँखों में सत्य व निर्भीकता की ज्योति लिए शरीर पर साधारण वस्त्र धारण किये हुए व्यक्ति के रूप में हमारी आँखों के सामने उपस्थित होते हैं ।

आंतरिक व्यक्तित्व :

कबीरदास जी का बाह्य व्यक्तित्व जितना साधारण था उनका, आंतरिक व्यक्तित्व भी असाधारण था। इसकी झलक दोहों, साखियों आदि के रूप में दिखाई देती थी।

कबीर की वाणी का स्वरूप :

भाषाई प्रहार : कबीर की भाषा अत्यंत सरल, परंतु व्यंग्य थी। उनके दोहे और साखी में आलोचनात्मक रूप देखा जा सकता हैं। वे स्पष्ट और कठोर भाषा का प्रयोग करते हैं।

उदाहरण :

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ें सो पण्डित होय।”

इस दोहे में धर्म के बाह्यडम्बरों की आलोचना कर रहे हैं। सिर्फ किताबें पढ़ने से कोई ज्ञानी नहीं बनता, बल्कि प्रेम के दो अक्षर ही सच्चा ज्ञान है । जो व्यक्ति समझ लेता है वही सच्चा पण्डित होता हैं।

धार्मिक एवं सामाजिक आलोचना : कबीर ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों की कुरीतियों पर समान रूप से प्रहार किया। उन्होंने मूर्तिपूजा, पाखंड और बाह्य आडम्बर की कठोर आलोचना की।

उदाहरण : "पाथर पूजे हरि मिले, तौ मैं पूजूं पहाड़
ताते तो चाकी भली, पीस खाए संसार।”

लोकतांत्रिक या तानाशाही वाणी : कबीर की वाणी क्या किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता को दबाने वाली थी या फिर स्वतंत्र विचारधारा को बढ़ावा देने वाली थी ?

कबीर का पूरा दर्शन तर्क और स्वतंत्र चिंतन पर आधारित था। वे अंधविश्वास और कर्मकाण्ड का विरोध करते थे, लेकिन साथ ही वे किसी धर्म या परंपरा को जबरन स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं करते थे।

समाज सुधारक या अधिनायकवादी :- कबीर का उद्देश्य समाज में समरसता स्थापित करना था, न कि किसी नए मत या परंपरा को स्थापित करना। उसके विचारों को एक समाज सुधारक की दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

उदहारण : चिड़िया चोंच भर ले गई, नदी न घट्यो नीर

दान दिए धन न घटे, कह गए संत कबीर

अर्थात् जिस प्रकार चिड़िया के पानी पीने से समुद्र का जल कम नहीं होता, उसी प्रकार दान देने से धन नहीं कम होता। इससे पता चलता है कि कबीरदास जी कितने उदार दिल, व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे।

विनम्रता : कबीरदास जी का मुख्य व्यक्तित्व विनम्रता ही था। भौतिकवाद ने लोगों के संस्कारो को एकदम नष्ट कर दिया था । वह सभी जाति के लोगों को समन्वय की दृष्टि से देखते थे। ऊंच-नीच भेदभाव को समाप्त कर समानता का गुण अपनाया था । परंतु जब भी कोई उनका विरोध करता या गलत करता तो खुलकर सामना करते। बड़े-बड़े पण्डित उनसे डरते थे ।

उदाहरण : “ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए,

औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होए”

गुरु महिमा पर बल : कबीरदास ने गुरु की महिमा पर विशेष बल दिया है। लगभग संत कवियों ने उन्मुक्त कंठ से गुरु कृपा द्वारा परम त्तत्व व सच्चे ज्ञान की प्राप्ति की प्रशंसा की हैं। उन्होंने गुरु गोविंद के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की हैं।

उदाहरण :

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े काकै लागू पांय

बलिहारी गुरु आपनौ जिन गोंविद दियो मिलाये।”

धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध कबीर की भूमिका : आज भी धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता जैसी बड़ी समस्याएं हैं। कबीर का इस सन्दर्भ में संदेश बहुत महत्त्वपूर्ण है उनकी वाणी धार्मिक सहिष्णुता और भाईचारे को बढ़ावा देती है

उदाहरण :

“अव्वल अल्लाह नूर उपाया, कुदरत के सब बंदे |

एक नूर से सब जग उपज्या, कौन भले को मंदे ।।“

धर्म और कर्म का फल:

कबीरदास कर्म को महत्व देते हैं और कहते हैं कि कर्म का फल अवश्य मिलता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा |

कबीर और वर्तमान संदर्भ

1. सामाजिक न्याय और समानता: कबीर ने जिस सामाजिक समरसता की बात की थी, वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। उनके विचारों को आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप देखा जा सकता है।

2. धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध कबीर की भूमिका: आज भी धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता बड़ी समस्याएँ हैं। कबीर का संदेश इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है। उनकी वाणी धार्मिक सहिष्णुता और भाईचारे को बढ़ावा देती है।

3. स्त्री स्वतंत्रता और कबीर : कबीर की वाणी में स्त्री को भी समान स्थान दिया गया है। वे रूढ़िवादी मान्यताओं के विरोधी थे और स्त्रियों को भी स्वतंत्रता देने के पक्षधर थे ।

कविता और भाषा : कबीर ने अपनी कविता में सरल और सीधी भाषा का प्रयोग किया, जिससे उनका संदेश आम जनता तक पहुँच सके। उन्होंने रोजमर्रा की जिंदगी के प्रतीकों का उपयोग किया जिससे उनकी कविताएँ और भी प्रभावी बनीं। कबीर के काव्य का प्रभाव न केवल उनके समय की धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर पड़ा, बल्कि उनके विचार आज भी हमारे समाज में प्रासंगिक हैं। कबीर के पदों को गागर, अभंग और साखियाँ के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो आज भी लोकगीतों के रूप में गाए जाते हैं। कबीर की वाणियाँ समाज के विभिन्न वर्गों के बीच एकता और समानता का संदेश देती हैं, और यह आज के समय में भी लोगों के दिलों में एक गहरी छाप छोड़ती हैं।

कबीर के काव्य का शास्त्रीय दृष्टिकोण : कबीर के काव्य में शास्त्रीय दृष्टिकोण से भी कई महत्वपूर्ण पहलुओं का समावेश है। उनके पदों में सीधे-सादे शब्दों का प्रयोग किया गया है । कबीर की वाणी में भक्ति, ज्ञान, और साधना की विशेषताएँ मौजूद हैं। वे जीवन के वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए साधना और आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता पर जोर देते हैं । कबीर के काव्य में प्रतीकवाद का भी उपयोग हुआ है। उन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझाने के लिए प्रकृति, समाज और मनुष्य की दैनिक जीवनशैली से संबंधित प्रतीकों का प्रयोग किया। उदाहरण स्वरूप, कबीर कहते हैं:

"कबीरा खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर,
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।"

यह दोहा इस तथ्य को उजागर करता है कि कबीर न तो किसी से प्रेम रखते थे और न ही किसी से द्वेष। उनके लिए सब लोग समान थे, और उनका मुख्य उद्देश्य था सत्य और धर्म की साधना।

निर्गुण ब्रह्म का सिद्धांत : कबीर की अधिकांश वाणियाँ ईश्वर के निराकार रूप की ओर इशारा करती हैं। उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया कि ईश्वर न तो मूर्तियों में है, न किसी विशेष पद्धति में, बल्कि वह हर जगह, हर समय और हर व्यक्ति में विद्यमान है। कबीर ने कहा, "हजारा शिव, हजारा राम, सब में एक दिखे राम।" अर्थात, शिव और राम के रूप में दिखने वाला ईश्वर वास्तव में एक ही है, जो निराकार रूप में सभी जगह है ।

" दुःख में सुमिरन सब करे सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे दुःख काहे को होय ॥ "

निष्कर्ष :- कबीर की वाणी व्यंगपूर्ण तो थी, परंतु वह समाज को जागरूक करने और धार्मिक कट्टरता को समाप्त करने का प्रभावी माध्यम थी। उनका स्वर कठोर था, लेकिन उनका उद्देश्य मनुष्य को सच्चे मार्ग पर लाना था। वे समाज सुधारक थे । जिन्होंने अपने दोहों और साखियों के माध्यम से धार्मिक पाखंड और सामाजिक बुराइयों पर कठोर प्रहार किया। कबीर की वाणी और उनका काव्य भारतीय समाज के लिए एक अमूल्य धरोहर हैं। उनकी कविताएँ न केवल धार्मिक और सामाजिक सुधार का माध्यम बनीं, बल्कि उन्होंने व्यक्ति को आत्ममूल्य और आत्मसमानता का एहसास भी कराया। कबीर के विचार और उनकी वाणी आज भी समाज के हर वर्ग के लिए प्रासंगिक हैं, और उनका संदेश आज भी लोगों को प्रेरित करता है। उनका जीवन और उनकी वाणी यह सिद्ध करती है कि भक्ति, प्रेम, और सत्य की साधना ही जीवन का वास्तविक उद्देश्य है। कबीर की वाणी न केवल एक धार्मिक विचारधारा है, बल्कि यह जीवन के हर पहलु में सचेतनता और सुधार का प्रतीक है।

संदर्भ सूची

1. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास : हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. कबीर पर आधारित साहित्यिक आलोचनाएँ
3. भारतीय सामाजिक सुधारक और उनका योगदान

डाक का पता : 765, न्यू टैगोर गार्डन,खोजकीपुर (अंबाला छावनी)
पिन कोड : 133001
मोबाइल नंबर : 8059805504
ईमेल : tamana2411s@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 49-53
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ-ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦੇ ਸੰਦਰਭ 'ਚ

ਡਾ. ਲਖਵਿੰਦਰ ਕੌਰ,
ਅਸਿਸਮੈਂਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ ਮਾਲਵਾ ਕਾਲਜ, ਬਠਿੰਡਾ।

ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਤੋਂ ਭਾਵ ਨਾਰੀ ਅੰਦਰ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਜਾਗ੍ਰਿਤੀ ਤੋਂ ਹੈ। ਇਸ ਜਾਗ੍ਰਿਤੀ ਕਰਕੇ ਜਿੱਥੇ ਉਹ ਆਪਣੇ ਹੱਕਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਲਈ ਚੇਤੰਨ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਉੱਥੇ ਹੀ ਉਹ ਨਾਰੀ ਉੱਪਰ ਹੋ ਰਹੇ ਅਤਿੱਆਚਾਰਾਂ ਵਿਰੁੱਧ ਆਵਾਜ਼ ਵੀ ਉਠਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਦੇ ਬਹੁ-ਪਸਾਰੀ ਅਨੁਭਵ ਦੀ ਗ੍ਰਹਿਣਸ਼ੀਲਤਾ ਦੀ ਅਭਿਵਿਅਕਤੀ ਹੀ ਨਾਰੀ-ਚੇਤਨਾ ਅਖਵਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਦੋ ਸਮਾਸੀ ਸ਼ਬਦਾਂ 'ਨਾਰੀ' ਅਤੇ 'ਚੇਤਨਾ' ਤੋਂ ਮਿਲ ਕੇ ਬਣਿਆ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਨਾਰੀ ਦੇ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਅਧਾਰ ਤੇ ਹੀ ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਲਹਿਰ ਮਰਦ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਦੀ ਵਿਰੋਧਤਾ ਕਰਦੀ ਨਾਰੀ ਦੇ ਹੱਕਾਂ ਲਈ ਲੜਦੀ ਹੈ। ਡਾ. ਚਰਨਜੀਤ ਕੌਰ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਪਰਿਭਾਸ਼ਿਤ ਕਰਦੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ ਕਿ "ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਤੋਂ ਭਾਵ ਸੰਸਾਰ ਭਰ ਦੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਉਸ ਚੇਤਨਾ ਤੋਂ ਹੈ ਜੋ ਉਹ ਔਰਤਾਂ ਹੋਣ ਕਾਰਣ ਰੱਖਦੀਆਂ ਹਨ ਅਤੇ ਇਹ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਔਰਤ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਹੀ ਮਰਦ ਤੋਂ ਵੱਖਰਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਐਨ ਉਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਜਿਵੇਂ ਮਰਦ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਦਾ ਕੁੱਝ ਭਾਗ ਮਰਦ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਔਰਤ ਤੋਂ ਵੱਖਰਾ ਹੈ, ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ 'ਮਨੁੱਖੀ ਚੇਤਨਾ' ਦੇ ਘੇਰੇ ਵਿੱਚ 'ਮਰਦ ਚੇਤਨਾ' ਦੇ ਵਿਰੋਧ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਵੱਖਰਤਾ ਵਿੱਚ ਸਮਝਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।"[1] ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਔਰਤਾਂ ਦੇ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਰਾਖੀ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਜੋ ਉਸਨੂੰ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਬਰਾਬਰੀ ਦਾ ਦਰਜ਼ਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਵਿਦਰੋਹ ਜਾਂ ਮੁਕਤੀ ਦੀ ਸੁਰ ਸੁਭਾਵਿਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਨਿਹਿਤ ਹੈ, ਪਰੰਤੂ ਇਹ ਵਿਦਰੋਹ ਸਿਰਫ਼ ਮਰਦਾਂ ਦੀ ਸੱਤਾ ਦੇ ਵਿਰੋਧ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਬਲਕਿ ਸੰਮਤੀ ਜੀਵਨ ਪੱਧਤੀ ਅਤੇ ਅੱਜ ਦੇ ਸਮੇਂ ਦੀ ਨੀਤੀ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਵੀ ਹੈ।

ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਗਲਪ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਸਥਾਨ ਹੈ। ਉਸਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਨਾਵਲ, ਕਹਾਣੀਆਂ, ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਅਤੇ ਬਾਲ ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਰਚਨਾਵਾਂ ਦਿੱਤੀਆਂ ਹਨ। ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਦਾ ਸਮਕਾਲੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਸਥਾਨ ਹੈ । ਉਹ 1983 ਵਿੱਚ ਭੱਖੜੇ ਦੇ ਫੁੱਲ ਕਹਾਣੀ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਦੁਆਰਾ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਜਗਤ ਵਿਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । 1985 ਵਿੱਚ ਉਸਦਾ ਇਸਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਕਹਾਣੀ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਹੋਇਆ । ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਉਸ ਨੇ ਲਗਾਤਾਰ ਤ੍ਰੇੜ, ਮੋਹ-ਮਿੱਟੀ, ਚਾਦਰ ਹੇਠਲਾ ਬੰਦਾ, ਮਨਮਤੀਆਂ,

ਮਕੜੀਆਂ, ਮਹਿਰੂਮੀਆਂ ਅਤੇ ਰੁਤ - ਰਾਗ ਆਦਿ ਕਹਾਣੀ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਝੋਲੀ ਪਾਏ । ਉਸ ਨੇ ਤਿੰਨ ਨਾਵਲਾਂ ਜੰਜ਼ੀਰ, ਉਹ ਨਹੀਂ ਆਉਣਗੇ ਅਤੇ ਪੈਰਾਂ ਹੇਠਲੇ ਅੰਗਿਆਰ ਦੀ ਰਚਨਾ ਵੀ ਕੀਤੀ । ਬਾਲ ਸਾਹਿਤ ਵਿੱਚ ਉਸਨੇ ਭਰਮਾਂ ਦੇ ਘੋੜੇ, ਸੁਣੋ ਕਹਾਣੀ ਅਤੇ ਸੋਨੇ ਦਾ ਰੁੱਖ ਆਦਿ ਸਾਹਿਤਕ ਪੁਸਤਕਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾ ਕੀਤੀ । ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਨੂੰ ਹੀਰਾ ਸਿੰਘ ਦਰਦ ਪੁਰਸਕਾਰ ਨਾਲ ਵੀ ਸਨਮਾਨਿਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਅੰਤਰਗਤ ਉਹ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਹੀ ਆਪਣੀ ਪਹਿਚਾਣ ਬਣਾਉਂਦੀ ਹੈ । ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਹਰੇਕ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਦੀ ਹੈ । ਪਰੰਤੂ ਔਰਤ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇ ਜੀਵਨ ਨਾਲ ਜੁੜੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਬੜੀ ਸ਼ਿੱਦਤ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ । ਆਧੁਨਿਕ ਯੁੱਗ ਵਿੱਚ ਵੀ ਪੁਰਸ਼ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਬਹੁਤੀ ਵਧੀਆ ਨਹੀਂ ਕਹੀ ਜਾ ਸਕਦੀ । ਇਹ ਕੋਈ ਨਵੀਂ ਗੱਲ ਨਹੀਂ ਕਿ ਔਰਤ ਨੂੰ ਹਰੇਕ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਹੀ ਕਠਿਨ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਕਰਨਾ ਪਿਆ ਹੈ । ਮੁੱਢ-ਕਦੀਮ ਤੋਂ ਹੀ ਔਰਤ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਬਰਕਰਾਰ ਰੱਖਣ ਲਈ ਸੰਘਰਸ਼ ਕਰਦੀ ਆ ਰਹੀ ਹੈ। ਧਰਮ ਅਤੇ ਮਰਿਆਦਾ ਦੇ ਨਾਮ ਹੇਠ ਸਮਾਜ ਨੇ ਹਮੇਸ਼ਾ ਹੀ ਔਰਤ ਦੇ ਪੈਰ-ਪੈਰ ਤੇ ਪਾਬੰਦੀਆਂ ਲਗਾਈਆਂ ਹਨ । ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦਾ ਹਰੇਕ ਰੂਪ ਚਿਤਰਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਇਕ ਮਾਂ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਆਪਣੀਆਂ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀਆਂ ਨਿਭਾਉਂਦੀ ਮਮਤਾ ਦੀ ਮੂਰਤ ਸਿੱਧ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਭੈਣ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਆਪਣੀ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀ ਨਿਭਾਉਂਦੀ ਖ਼ਾਨਦਾਨ ਦੀ ਇੱਜ਼ਤ ਦਾ ਖ਼ਿਆਲ ਰੱਖਦੀ ਹੈ । ਪਤਨੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਆਪਣੀਆਂ ਖੁਸ਼ੀਆਂ ਆਪਣੇ ਬੱਚਿਆਂ ਅਤੇ ਪਰਿਵਾਰ ਉੱਤੋਂ ਵਾਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ । ਧੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਆਪਣੇ ਮਾਤਾ-ਪਿਤਾ ਦੀ ਆਗਿਆਕਾਰੀ ਅਤੇ ਸਮਝਦਾਰ ਧੀ ਦਾ ਪ੍ਰਤੱਖ ਪ੍ਰਮਾਣ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਹਰੇਕ ਥਾਂ ਉੱਪਰ ਔਰਤ ਰੂਪੀ ਪਾਤਰਾਂ ਆਪਣੀਆਂ ਰੀਝਾਂ ਦੀ ਬਲੀ ਦੇ ਕੇ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਇੱਜ਼ਤ ਨੂੰ ਦਾਗ ਨਹੀਂ ਲੱਗਣ ਦਿੰਦੀਆਂ । ਇਹ ਬਹੁਤ ਵੱਡੀ ਵਿੰਡਬਨਾ ਹੈ ਕਿ ਤਿਆਗ ਦੀ ਮੂਰਤ ਇਸਤਰੀ ਦੀਆਂ ਆਪਣੀਆਂ ਇਛਾਵਾਂ, ਚਾਅ, ਉਮੰਗ, ਸੱਧਰਾਂ, ਵੇਦਨਾ ਅਤੇ ਮਨ ਦੇ ਵੇਗ ਹਨ। ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਖਿਆਲ ਮਰਦ ਬਿਲਕੁੱਲ ਵੀ ਨਹੀਂ ਰੱਖਦਾ। ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦੀਆਂ ਇਸਤਰੀ ਪਾਤਰ ਆਪਣੀ ਹੋਣੀ ਨੂੰ ਸਵੀਕਾਰਦੀਆਂ ਅਗਾਂਹਵਧੂ ਸੋਚ ਦੀਆਂ ਧਾਰਨੀ ਹਨ। ਵਾਰ-ਵਾਰ ਉੱਜੜ ਕੇ ਫਿਰ ਕਰੂੰਬਲਾਂ ਵਾਂਗੂ ਫੁੱਟਣਾ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਵਿਲੱਖਣਤਾ ਹੈ। ਉਸ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਪੇਂਡੂ ਅਤੇ ਸ਼ਹਿਰੀ ਨੌਕਰੀਪੇਸ਼ਾ ਦੋਵੇਂ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਵਰਣਨ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਬਲਦੇਵ ਸਿੰਘ ਧਾਲੀਵਾਲ ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਬਾਰੇ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਕਿ "ਮਾਨ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦਾ ਰਚਨਾ ਵਸਤੂ ਮੁੱਖ ਤੌਰ 'ਤੇ ਕਿਸਾਨੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਅਤੇ ਪੇਂਡੂ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਤਰਕਮਈ ਮਾਨਵਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਵਾਲੀ ਲੇਖਿਕਾ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਵਸਤੂ-ਯਥਾਰਥ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਔਰਤ ਦੀ ਤ੍ਰਾਸਦੀ ਨੂੰ ਨਿਰਪੱਖ ਢੰਗ ਨਾਲ ਵਾਚਦੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਕਰਕੇ ਉਸ ਦੀਆਂ ਔਰਤ ਪਾਤਰ ਸਵੈ-ਤਰਸ ਅਤੇ ਸਵੈ-ਪ੍ਰਸੰਸ਼ਾ ਦੀਆਂ ਸ਼ਿਕਾਰ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਮਨੁੱਖੀ ਗੌਰਵ ਦੀਆਂ ਇਛਾਵਾਨ ਹਨ।"[2]

ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ 'ਮਕੜੀਆਂ' ਅਤੇ 'ਮਕੜੀਆਂ-2' ਇੱਕ ਇਹੋ ਜਿਹੀ ਮਾਂ ਅਤੇ ਧੀ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਮਾਂ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਆਪਣੀ ਧੀ ਦਾ ਪਾਲਣ ਪੋਸ਼ਣ ਕਰਦੀ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇ ਹਰੇਕ ਚਾਅ ਮਲਾਰ ਪੂਰੇ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਇਸ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਉਹ ਆਪਣੀ ਧੀ ਦੀ ਖੁੱਲ੍ਹ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦੀ ਹੈ

ਪਰੰਤੂ ਉਸਦੀ ਧੀ ਆਪਣੀ ਖੁੱਲ੍ਹ ਨੂੰ ਮਾਨਣ ਲਈ ਆਪਣੀ ਮਾਂ ਨੂੰ ਧਮਕੀਆਂ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਦੋਵੇਂ ਪਾਤਰਾਂ ਵਿੱਚ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਨਾਰੀ ਬਿੰਬ ਉਭਰਦਾ ਹੈ। ਮਾਂ ਜਿੱਥੇ ਪਰਿਵਾਰਿਕ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀ ਨਿਭਾਉਂਦੀ ਆਪਣੀ ਧੀ ਬੇਬੀ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਨਾਲ ਹੀ ਉਹ ਪੁਰਾਤਨ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਨਾਲ ਬੱਝੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਆਪਣੀ ਧੀ ਉੱਪਰ ਬੰਦਿਸ਼ਾਂ ਵੀ ਲਗਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਪਰੰਦੂ ਧੀ ਆਪਣੇ ਨਿੱਜ ਨੂੰ ਮਹੱਤਵ ਦਿੰਦੀ ਹੋਈ ਆਪਣੀ ਮਾਂ ਨੂੰ ਧਮਕੀ ਦਿੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਜੇਕਰ ਉਸ ਨੇ ਉਸ ਉੱਪਰ ਪਾਬੰਦੀਆਂ ਲਗਾਈਆਂ ਤਾਂ ਉਹ ਅਲੱਗ ਹੋ ਜਾਵੇਗੀ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਮਾਂ ਪਾਤਰ ਵਿੱਚੋਂ ਪਰੰਪਰਾਵਾਦੀ ਅਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਦੋਵੇਂ ਰੂਪ ਹੀ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਜਿੱਥੇ ਉਹ ਆਪਣੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਭਰ ਜਵਾਨੀ ਦੀ ਵਿਧਵਾਪੁਣੇ ਦੀ ਪੀੜ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਧੀ ਦੀਆਂ ਖੁਸ਼ੀਆਂ ਖ਼ਾਤਰ ਜਰ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੀਆਂ ਇੱਛਾਵਾਂ ਦਬਾ ਲੈਂਦੀ ਹੈ ਜਿਵੇਂ :

"ਕੀ ਕਸੂਰ ਹੋ ਗਿਆ ਨੀ ਮੈਥੋਂ ਢਿਡੋਂ ਜੰਮੀਏ ਮੇਰੀਏ ਧੀਏ ? ਕਿਹੜਾ ਗੁਨਾਹ ਮੈਂ ਕਰ ਬੈਠੀ ਆ ? .... ਤੇਰੀਆਂ ਨਿੱਕੀਆਂ-ਨਿੱਕੀਆਂ ਝੱਲ – ਵਲੱਲੀਆਂ ਰੀਝਾਂ ਪੂਰੀਆਂ ਕਰਨ ਲਈ ਮੈਂ ਨਾ ਰੱਜ ਖਾਧਾ ਏ ਨਾ ਰੱਜ ਪਹਿਨਿਆ ਏ ..... ਤਿਲ-ਤਿਲ ਤੜਫੀ ਮੇਰੀ ਕਾਇਆ, ਤੂੰਬਾ-ਤੂੰਬਾ ਟੁੱਟੀ ਨੀ ਮੇਰੀ ਰੂਹ-ਫੋਹਿਆ-ਫੋਹਿਆ ਕਰਕੇ ਪਿੰਜਦੀਆਂ ਰਹੀਆਂ ਮੇਰੀਆਂ ਰੀਝਾਂ ਮੇਰੇ ਵਲਵਲੇ..... ਦੱਬ ਕੇ ਬਹਿ ਗਈ ਮੈਂ ਆਪਣਾ ਦਿਲ .....।"[3]

'ਮਕੜੀਆਂ' ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਮਾਂ ਅਤੇ ਧੀ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਅਜਿਹਾ ਤਣਾਓ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ ਜੋ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਵਿਅਕਤੀਗਤ ਰੁਚੀਆਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਦਾ ਕਾਰਣ ਹੈ। ਧੀ 'ਬੇਬੀ' ਆਪਣੇ ਬੁਆਏ ਫਰੈਂਡ ਬਿਨੇ ਨਾਲ ਬੰਦ ਕਮਰੇ ਵਿੱਚ ਆਪਣੀ ਮਨਮਰਜ਼ੀ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਜਿਉਂਦੀ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਆਪਣੀ ਮਾਂ ਨਾਲ ਰਮਿੰਦਰ ਦੀ ਮੌਜੂਦਗੀ ਬਰਦਾਸ਼ਤ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਨੇ ਬੇਬੀ ਪਾਤਰ ਦੁਆਰਾ ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਵਿਚਰਦੀ ਔਰਤ ਦਾ ਨਜ਼ਰੀਆ ਸਾਹਮਣੇ ਲਿਆਂਦਾ ਹੋ ਜੋ ਆਪਣੀਆਂ ਜ਼ਰੂਰਤਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਮਰਦ ਦਾ ਇਸਤੇਮਾਲ ਤਾਂ ਕਰਦੀ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਬੰਦਿਸ਼ ਵਿੱਚ ਜਿਉਣਾ ਪਸੰਦ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ। ਪਰਿਵਾਰ ਵਿੱਚ ਬੱਝ ਕੇ ਜੀਵਨ ਬਤੀਤ ਕਰਨਾ ਅਤੇ ਵਿਆਹ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਵਿੱਚ ਬੰਨ੍ਹ ਕੇ ਜਿਉਣਾ ਉਸ ਨੂੰ ਪਸੰਦ ਨਹੀਂ।

ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਦੀ 'ਜਲਜਲੇ' ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਪਰਮ ਇੱਕ ਪੜ੍ਹੀ ਲਿਖੀ ਸਲੀਕੇਦਾਰ ਅਤੇ ਖੂਬਸੂਰਤ ਲੜਕੀ ਹੈ। ਜਿਹੜੀ ਰਿਸ਼ਤੇ ਵਿੱਚ ਮਿ. ਪਾਲ ਦੀ ਭਤੀਜੀ ਹੈ। ਮਿ. ਪਾਲ ਨੂੰ ਉਹ ਆਪਣੇ ਪਿਤਾ ਸਮਾਨ ਸਮਝਦੀ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਮਿ. ਪਾਲ ਉਸ ਉੱਪਰ ਮਾੜੀ ਨਿਗ੍ਹਾ ਰੱਖਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਦੀ ਗੈਰ-ਹਾਜ਼ਰੀ ਵਿੱਚ ਉਸ ਨਾਲ ਜ਼ਬਰਦਸਤੀ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਥੇ ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਇਹ ਗੱਲ ਸੱਪਸ਼ਟ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਪੁਰਸ਼ ਨੂੰ ਦੇਹਵਾਦੀ ਰੁਚੀਆਂ ਪੂਰੀਆਂ ਕਰਨ ਹਿਤ ਉਸ ਸਾਹਮਣੇ ਸਾਰੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਛੋਟੇ ਪੈ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਜਦੋਂ ਉਸਨੂੰ ਆਪਣੀ ਹਵਸ ਪੂਰਤੀ ਦਾ ਮੌਕਾ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਉਸ ਨੂੰ ਗਵਾਉਣਾ ਨਹੀਂ ਚਾਹੁੰਦਾ। ਜਿਵੇਂ ਇੱਕ ਥਾਂ ਮਿ. ਪਾਲ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਕਿ

"ਹਰ ਮਰਦ ਇੱਕ ਮਰਦ ਪਹਿਲਾਂ ਏ ਬਾਪੂ, ਚਾਚਾ ਤੇ ਭਰਾ ਬਾਅਦ 'ਚ .....। ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਮੇਰੇ ਵਰਗੇ ਬੁਢੇਪੇ ਵੱਲ ਵੱਧ ਰਹੇ ਬੰਦੇ ਕਿਉਂ ਜਵਾਨੀ ਦਾ ਸਾਥ ਭਾਲਦੇ ਹਨ।"[4]

ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਨੇ ਔਰਤ ਦੇ ਵਿਸ਼ਾਲ ਹਿਰਦੇ ਨੂੰ ਵੀ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਉਹ ਸਭ ਕੁੱਝ ਬਰਦਾਸ਼ਤ ਕਰਦੀ ਮਰਦ ਦੀ ਹਰੇਕ ਗਲਤੀ ਨੂੰ ਮਾਫ਼ ਕਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ ਜਿਵੇਂ ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਪਰਮ ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਮਿ. ਪਾਲ ਨੂੰ ਮਾਫ਼ ਕਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ।

‘ਬੰਤੋ-ਬੰਦੀ’ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਅਜਿਹੀ ਔਰਤ ਦਾ ਚਿੱਤਰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ ਜੋ ਪਰਿਵਾਰ ਵਿੱਚ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਦੇ ਤ੍ਰਿਸਕਾਰ ਦੀ ਸ਼ਿਕਾਰ ਔਰਤ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਫਿਰ ਵੀ ਉਹ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰ ਨੂੰ ਜੋੜ ਕੇ ਰੱਖਦੀ ਹੈ। ਬੰਤੋ ਦਾ ਪਤੀ ਨਿੰਦਰ ਸਿਹੁੰ ਉਸ ਨੂੰ ਪਸੰਦ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ ਪਰੰਤੂ ਉਹ ਆਪਣੇ ਪਤਨੀ ਨੂੰ ਖੁਸ਼ ਰੱਖਣ ਲਈ ਹਰ ਸੰਭਵ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ ਨਾ ਪਸੰਦਗੀ ਦੇ ਆਲਮ ਵਿੱਚ ਕਿਸੇ ਗਿਲਾਨੀ ਵਾਲੇ ਭਾਵ ਬੋਧ ਦੀ ਸ਼ਿਕਾਰ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਸਗੋਂ ਨਾਰੀ ਗੌਰਵ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਰੱਖਦੀ ਆਪਣੀ ਪਾਰਿਵਾਰਿਕ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀ ਨਿਭਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਦੀ ‘ਹਵਾ ਬੰਦ ਹੈ’ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਮਰਦ ਅਤੇ ਪਰਿਵਾਰ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਮਹੱਤਤਾ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਉਸਦੀ ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਨਿਮਨ ਕਿਸਾਨੀ ਦੀ ਥੁੜ੍ਹ ਕਾਰਨ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਬਿਆਨ ਹੈ। ਜ਼ਮੀਨ ਘੱਟ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਮਹਿੰਗਾ ਸਿੰਘ ਦਾ ਵਿਆਹ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਅਤੇ ਸਾਰਾ ਪਿੰਡ ਉਸ ਨੂੰ ਟਿਚਰਾਂ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਵਿੱਚ ਕਹਾਣੀਕਾਰ ਦੱਸਣਾ ਚਾਹੁੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਪਰਿਵਾਰਿਕ ਇਕਾਈ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਗੈਰ-ਮੌਜੂਦਗੀ ਘਰ ਨੂੰ ਘਰ ਦਾ ਦਰਜਾ ਨਹੀਂ ਦਿੰਦੀ। ਔਰਤ ਦੀ ਅਣਹੋਂਦ ਬਿਨਾਂ ਨਾ ਹੀ ਘਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਮਰਦ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦਾ ਕੋਈ ਉਦੇਸ਼ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਨਸ਼ੇ ਦੀ ਆਦਤ ਅਤੇ ਮਾੜੀ ਆਰਥਿਕ ਸਥਿਤੀ ਵਾਲੇ ਘਰ ਵਿੱਚ ਜਾਣ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰ ਕਰਨਾ ਔਰਤ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਅਤੇ ਦੂਰ ਅੰਦੇਸ਼ੀ ਦਾ ਪ੍ਰਮਾਣ ਹੈ। ਇਸ ਦੁਆਰਾ ਔਰਤ ਦੀ ਸਮਾਜ ਅਤੇ ਪਰਿਵਾਰ ਪ੍ਰਤੀ ਚੇਤਨਾ ਉੱਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦੀ ਹੈ।

‘ਗੁਲਾਬੀ ਧੁੱਪ’ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਅਜਿਹੀ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਪ੍ਰਗਟਾਉਂਦੀ ਹੈ ਜੋ ਆਪਣੇ ਸਾਰੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀਆਂ ਸੁੱਖ ਸਹੂਲਤਾਂ ਦਾ ਖਿਆਲ ਰੱਖਦੀ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਹਰੇਕ ਜ਼ਰੂਰਤ ਪੂਰੀ ਕਰਨ ਦੀ ਇੱਛਾ ਰੱਖਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਗਿੱਲ ਤੋਂ ਵਧੇਰੇ ਹੌਸਲੇ ਵਾਲੀ ਹੈ। ਉਹ ਬਿਮਾਰ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਘਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਕੰਮ ਕਰਦੀ ਬੱਚੇ ਸੰਭਾਲਦੀ ਅਤੇ ਜ਼ਰੂਰਤ ਪੈਣ ਤੇ ਆਪਣੇ ਗਹਿਣੇ ਤੱਕ ਵੇਚ ਕੇ ਘਰ ਦਾ ਖ਼ਰਚਾ ਚਲਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਨੇ ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਉਸ ਔਰਤ ਦਾ ਚਰਿੱਤਰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਮਾਨਸਿਕ ਤਣਾਓ ਅਤੇ ਆਰਥਿਕ ਦੁਸ਼ਵਾਰੀਆਂ ਸਹਿੰਦੀ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰ ਨੂੰ ਇੱਕ-ਮੁੱਠ ਰੱਖਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ।

ਕਹਾਣੀਕਾਰਾ ਨੇ ਆਪਣੀ ਕਹਾਣੀ ‘ਚਿੜੀਆ ਦੇ ਆਲ੍ਹਣੇ’ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਪਾਤਰ ਤਾਰੋ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਪਿਆਰਾ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਗਮਾਂ ਦੇ ਸਮੁੰਦਰ ਵਿੱਚੋ ਗੋਤੇ ਨਹੀਂ ਖਾਣ ਦਿੰਦੀ। ਬਲਕਿ ਉਹ ਸਭ ਕੁੱਝ ਜਾਣਦੀ ਹੋਈ ਆਪਣੀ ਪਤੀ ਨੂੰ ਹੌਸਲਾ ਦਿੰਦੀ ਹੈ ਤੇ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ -

“ਮੱਖਿਆ ਬੰਸੋ ਦੇ ਬਾਪੂ, ਕੀ ਹੋ ਗਿਆ ਤੈਨੂੰ, ਤੂੰ ਤਾਂ ਮੈਨੂੰ ਮੱਤਾ ਦੇਂਦਾ ਸਾਏ।.....ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਈ ਏ ਨਾ, ਤੂੰ ਕਾਹਨੂੰ ਐਨਾ ਭਰਮ ਲਾਈ ਬੈਠਾ ਏ।”[5]

ਸਤਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਆਪਣੀ ‘ਅੱਧੋ-ਰਿੱਤੇ’ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਮੱਧ ਸ਼੍ਰੇਣੀ ਦੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਅਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਅਪਣਾਉਣ ਦੀ ਗੱਲ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਘਰਾਂ ਦੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਆਧੁਨਿਕ ਤਕਨੀਕ ਵਾਲੀਆਂ ਵਸਤਾਂ ਵਰਤੋਂ ਕਰਨਾ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਆਧੁਨਿਕ ਚੇਤਨਾ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਰੀ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪੇਂਡੂ ਅਤੇ ਸ਼ਹਿਰੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਆਏ ਪਰਿਵਰਤਨ ਨੂੰ ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਬਾਖੂਬੀ ਢੰਗ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ।

“ਫਰਿਜ ਜੁ ਹੈ, ਕੀ ਕਰਨੀ ਏ ਝੱਜਰੀ ਮੈਂ ਹੱਸ ਪਈ ਹਾਂ।”[6]

‘ਰੁੱਤ ਰਾਗ’ ਕਹਾਣੀ ਔਰਤ ਦੇ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਡੱਟ ਕੇ ਗੱਲ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਪਿੰਡ ਦੀਆਂ ਦਲਿਤ ਜਾਤੀ ਦੀਆਂ ਅਨਪੜ੍ਹ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਚੇਤਨ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਦਿਖਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਦੀ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਭਾਨੋ ਸਾਰੀ ਉਮਰ ਜਮੀਂਦਾਰਾਂ ਦੇ ਘਰ ਕੰਮ ਕਰਦੀ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਫਿਰ ਵੀ ਕਦੇ ਸੁੱਖ ਦਾ ਸਾਹ ਨਹੀਂ ਲਿਆ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਨਸ਼ੇਬਾਜ ਪਤੀ ਦੀ ਵਿਰੋਧਤਾ ਕਰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੀਆਂ ਧੀਆਂ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹਨ ਲਈ ਸਕੂਲ ਭੇਜਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਕਿ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਸੰਵਰ ਸਕੇ। ਜੋ ਉਸ ਦੀ ਨਵੀਂ ਅਤੇ ਜਾਗ੍ਰਿਤ ਸੋਚ ਦੀ ਪਹਿਰੇਦਾਰੀ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਉਸ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ‘ਖੋਜ’ ਦੀ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਭਾਵਾਂ ਦੀ ਧਾਰਨੀ ਹੈ। ਜਬਰ ਜ਼ੁਲਮ ਨੂੰ ਉਹ ਬਰਦਾਸ਼ਤ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ ਅਤੇ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਲੋਕਾਂ ਦਾ ਸਾਥ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਆਪਣੇ ਹੀ ਸਾਥੀਆਂ ਦੀ ਗੱਦਾਰੀ ਉਸਨੂੰ ਆਪਣਾ ਆਪਾ ਖੋਣ ਲਈ ਮਜ਼ਬੂਰ ਕਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ‘ਮਰਜੀਵਿਆ’ ਮਰਦ ਦੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਵਿੱਚ ਜੇਕਰ ਔਰਤ ਘਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਕੰਮ ਕਰਦੀ ਦਿਖਾਈ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਘਰ ਉੱਪਰ ਵੀ ਆਪਣਾ ਮਾਲਕੀ ਦਾ ਹੱਕ ਜਤਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਆਪਣੇ ਭਰਾਵਾਂ ਅਤੇ ਭਰਜਾਈਆਂ ਤੋਂ ਦੁਖੀ ਹੈ। ਸਾਰੀਆਂ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ਾਂ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਜਦੋਂ ਉਸ ਨੂੰ ਇੱਜ਼ਤ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦੀ ਤਾਂ ਉਹ ਅਲੱਗ ਰਹਿਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣਾ ਪੂਰਾ ਹਿੱਸਾ ਮੰਗਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਭਾਰਤੀ ਔਰਤ ਦਾ ਆਪਣੇ ਹੱਕਾਂ ਪ੍ਰਤੀ ਜਾਗਰੂਕ ਹੋਣ ਦਾ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਵੇਦਨਾ, ਸੰਵੇਦਨਾ ਅਤੇ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਹੀ ਸਹਿਜਤਾ ਨਾਲ ਚਿਤਰਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਬਾਰੇ ਚੇਤੰਨ ਹੋ ਕੇ ਲਿਖਦੀ ਹੈ। ਔਰਤ ਬਿਨਾਂ ਸਮਾਜਿਕ ਤਾਣਾ-ਬਾਣਾ ਸੰਭਵ ਨਹੀਂ। ਔਰਤ ਹੀ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦਾ ਧੁਰਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਆਧੁਨਿਕ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਵਸਤੂ ਬਣ ਕੇ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦੀ ਬਲਕਿ ਆਪਣੀ ਵੱਖਰੀ ਪਹਿਚਾਣ ਬਣਾਉਣ ਲਈ ਸੰਘਰਸ਼ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ ਦੁਆਰਾ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀ ਕੋਈ ਵੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਅਕਤੀ ਜਾਂ ਔਰਤ ਨਾਲ ਵਾਪਰੀ ਵੱਖਰੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਵਾਪਰ ਰਹੇ ਵਿਆਪਕ ਵਰਤਾਰੇ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਹੀ ਕਰਦੀ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ :-

1) ਡਾ. ਚਰਨਜੀਤ ਕੌਰ, ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ, ਪੰਨੇ 13-14
2) ਬਲਦੇਵ ਸਿੰਘ ਧਾਲੀਵਾਲ, ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਦੀ ਇਕ ਸਦੀ-ਇਤਿਹਾਸਮੂਲਕ ਪ੍ਰਵਚਨ, ਰਵੀ ਸਾਹਿਤ ਪ੍ਰਕਾਸਨ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, ਪੰਨਾ -94
3) ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ, ਮਕੜੀਆਂ, ਲੋਕਗੀਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ, ਪੰਨਾ-11
4) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ-53
5) ਸੁਖਵੰਤ ਕੌਰ ਮਾਨ, ਮਨਮਤੀਆਂ, ਚੇਤਨਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਲੁਧਿਆਣਾ, ਪੰਨਾ-173
6) ਉਹੀ ਪੰਨਾ-203

ਮੋਬਾਈਲ ਨੰ. 94642-12113

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 54-59
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी दलित स्त्री कहानियों में महिलाओं का सामाजिक एवं आर्थिक संघर्ष

श्रीमती पार्वती, शोधार्थी,
शोभन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा, उत्तराखंड
(असि. प्रो. हिंदी, श. दु. म. रा. स्ना. महा. डोईवाला, देहरादून उत्तराखंड 248140)
प्रो. प्रीति आर्या, हिंदी विभाग,
शोभन सिंह जीना विश्वविद्यालय, परिसर अल्मोड़ा, उत्तराखंड

शोध शारांस- हिंदू धर्म की जाति व्यवस्था में निम्न पायदान पर स्थित दलितों का जीवन सदियों से संघर्षमय रहा है. वर्ण व्यवस्था की जंजीरों में जकड़ कर दलितों की स्वाधीनता के सभी रास्ते बंद कर दिए गए, फलस्वरुप दलित पशुतुल्य जीवन जीने को विवश हो गया. अज्ञानता, अशिक्षा के कारण वह इसे अपना भाग्य, पूर्व जन्म के कर्मों का फल समझ कर निरंतर शोषण सहन करता गया, किंतु समय परिवर्तनशील है. समय के साथ-साथ दलितों को अपनी गुलामी का एहसास होने लगा. इसी एहसास ने उनके अंदर अपनी स्थिति को बदलने की चेतना जागृत की, जो दलित आंदोलन एवं दलित साहित्य आदि के माध्यम से प्रस्फुटित हुई.

बीज शब्द- दलित, चेतना, जातिव्वस्था, स्त्री कथाकार, सामाजिक संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, मजदूर, शारीरिक शोषण,

मूल आलेख- दलित साहित्य दलित समाज के संघर्षों का दस्तावेज है. यह साहित्य अनुभूति का साहित्य है. दलितों ने वर्षों तक जिस अन्याय, अत्याचार को सहन किया उसी का प्रतिबिंब दलित साहित्य में उजागर होता है.

दलित साहित्य के विषय ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं, "दलित शब्द साहित्य के साथ जुड़कर एक ऐसी साहित्यिक धारा की ओर संकेत करता है, जो मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति है"[1]

दलित साहित्यकारों में स्त्री साहित्यकारों का महत्वपूर्ण स्थान है. इनकी उपस्थिति साहित्य में देर से हुई है, किंतु यह उपस्थिति साहित्य को एक नया मोड़ देती है. यह साहित्य में दलित स्त्री के प्रश्नों को लेकर उपस्थित हुई है.

हिंदी दलित स्त्री कथा साहित्य की यदि हम बात करें तो, यह वर्तमान में पाठकों के मध्य खास आकर्षण के केंद्र में है. दलित स्त्री कहानीकारों ने स्त्री समाज के संघर्ष, उसकी पीड़ा को अपनी कहानियों में उजागर किया है. कहानीकारों ने जिस सजगता और संवेदनशीलता के साथ स्त्री के दर्द को फलक पर उकेरा है उसे पढ़ते ही पाठक के भीतर गहरी पीड़ा की अनुभूति होगी.

प्रस्तुत शोध पत्र में दलित महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक संघर्ष को हिंदी दलित स्त्री कथाकारों की कहानियों के माध्यम से उजागर किया गया है.

दलित महिलाएं जातिव्यवस्था परक इस समाज में दोहरे, तिहरे शोषण की शिकार होती है. वे जाति व्यवस्था एवं गरीबी के कारण दोहरी हिंसा से जूझती है. दलित स्त्री के संघर्ष के विषय में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट में कहा गया है, "दलित महिलाएं दोहरी हिंसा का शिकार होती हैं. उनके साथ होने वाली हिंसा में शारीरिक प्रताड़ना, यौन उत्पीड़न, बलात्कार, जबरन वेश्यावृत्ति, अपहरण, कन्या भ्रूण हत्या और घरेलू हिंसा शामिल है"[2] दलित महिलाओं का श्रम से घनिष्ठ संबंध होने के बाद भी उनकी कोई पहचान नहीं होती. वह समाज में अवहेलना का सामना करती है. हिंदी दलित कहानियों में दलित महिला के सामाजिक एवं आर्थिक संघर्ष को इस प्रकार देखा जा सकता है,

'**ज्वालामुखी'** कहानी मे कुसुम मेघवाल ने दलित महिलाओं के पानी के संघर्ष को उजागर किया है. कहानी राजस्थान के एक गांव की है. दलित बस्सी के पानी के कुएं सूखने पर दलित महिलाएं सवेरे उठकर स्वर्णों के कुएं पर पानी भरने जाती हैं किंतु, " भयंकर छुआछूत के चलते उन्हें टांकों (जल संग्रहण का स्थान) की सीढ़ियां कोई चढने नहीं देता. वह दो-तीन घंटे तक वहां पानी के खाली घड़े लिए बैठी रहती हैं"[3]

सभी स्वर्ण महिलाओं द्वारा पानी भरने के पश्चात दलित महिलाएं स्वर्ण पुरुषों से पानी के लिए अनुनय विनय करती हैं. कई बार उन्हें खाली घड़े लेकर घर वापस लौटना पडता है. कहानी में गंगाराम अपने समाज की औरतों की स्थिति अपनी बेटी ज्वालामुखी बतातें हैं, "इस तपती दोपहरी में तीन-चार मिल दूर के टांके पर जाकर पानी लाने को विवश होती है. उनके पांव बुरी तरह झुलस जाते हैं. कभी-कभी वे घास बांधकर भी तप्ती बालू से अपने पांव को बचाती है, फिर भी फफोले पड़ जाते हैं. बड़ी दयनीय स्थिति है बेटा अपनी बस्ती के लोगों की"[4]

यह स्थिति राजस्थान की दलित महिलाओं के संघर्ष को उजागर करती है. दलितों का यह संघर्ष वर्षों पहले से चला आ रहा है. आज भी गांवों में यह स्थिति देखने को मिलती है. शिक्षण संस्थानों में दलित बच्चों द्वारा पानी के बर्तन छू लेने पर उन्हें मौत तक की सजा दी जाती है.

'**एक लड़ाई की मौत'** कहानी में न्याय की उम्मीद लेकर पुलिस प्रशासन के पास गई लक्खी का बलात्कार कर उसे मौत की सजा दी जाती है. लक्खी अपने पति के अपहरण की शिकायत लेकर पुलिस के पास जाती है. उसे न्याय देने के बजाय पुलिस के तीन सिपाही लक्खी का बलात्कार करते हैं, जब वह उनके खिलाफ रिपोर्ट लिखवाती है तो तीनों सिपाही मिलकर लक्खी

को मार डालते हैं, "सिपाही दीपक के हाथ में मिट्टी के तेल का डिब्बा था. चारों ने घर के अंदर दरवाजा बंद कर लिया और उसे थानेदार से शिकायत करने के लिए खूब मारा-पीटा, फिर उस पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी. लक्खी जलती रही, तड़पती रही साले नामर्द से खड़े रहे"[5] इस प्रकार लक्खी को न्याय के नाम पर शोषण का शिकार होना पड़ता है.

दलित स्त्रियों के शोषण के विषय में रमा पांचाल कहती हैं, "भारतवर्ष में व्याप्त लिंग भेद की शिकार 80% दलित महिलाएं ही हैं."[6]

'रोशनी धुंधली हो गई' कहानी हरियाणा के एक गांव की है, जहां गांव के ही गैर दलित युवकों द्वारा तीन दलित लड़कियों का अपहरण कर बलात्कार किया जाता है, "जगाना गांव में दबंग जाति के पांच युवक, दलित समाज की तीन युवतियों को जबरन उठाकर ले गए और बलात्कार करके उन्हें पंजाब राज्य की सीमा पर विक्षिप्त हालात में फेंक दिया था."[7]

यह खबर आसपास के गांवों में भी पहुंचती है. रिपोर्ट भी लिखी जाती है, किंतु न्याय नहीं मिलता. क्योंकि न्याय व्यवस्था को भी दबंग जाति के लोग खरीद लेते हैं, "जगाना गांव के लोगों को आज भी न्याय नहीं मिला. तीनों लड़कियों के बलात्कारी सबूत के अभाव में छूट गए हैं. लड़कियों की अल्पायु में ही शादी कर दी जाती है. रोशनी की उम्मीद में आए ग्रामीण भाई बहिने मटमैली जिंदगी जीने के लिए मजबूर हैं"[8] इस प्रकार सजा निर्दोष लड़कियों को मिलती है.

दलित महिलाओं के साथ होने वाली सामाजिक हिंसा के पीछे उनकी आर्थिक मजबूरी भी होती है. वह परिवार के भरण-पोषण के लिए समाज के बीच में जाती है, जहां पर उसकी इसी आर्थिक मजबूरी का फायदा उठाया जाता है.

'राधाकली की मौत' कहानी दलित स्त्री के आर्थिक संघर्ष पर आधारित है. राधाकली सफाई का काम करती है. काम के दौरान कूड़े का तसला ठकुराइन (मालकिन) को छू जाता है. इतनी गलती के कारण ठकुराइन और उसका बेटा दोनों मिलकर राधाकाली को इतना पीटते हैं कि उसकी मौत हो जाती है, "ठकुराइन के बेटे ने ट्रैक्टर से लठ निकाला और राधा के सर पर पीछे से दो तीन वार कर दिए राधा वहीं गिर पड़ी"[9] इस प्रकार दलितों के जीवन का कोई मूल्य नहीं आंका जाता है. एक छोटी सी गलती के लिए भी उन्हें निर्मम तरीके से पीटा जाता है.

बेहोशी की हालत में राधाकली को अस्पताल ले जाते हैं, "वहां उसका खून टेस्ट हुआ रिपोर्ट आने से पहले ही राधा की मृत्यु हो गई. मृत्यु हो जाने के बाद फिर पुलिस ने आईपीसी में ठाकुर परिवार के खिलाफ रिपोर्ट लिखी. राधा के सर में अंदरूनी चोट से खून रिसकर ब्रेन हेमरेज हो गया. दूसरी तरफ पेट में लात-घूसों के कारण बच्चा पेट में ही मर चुका था. उसको भी इंफेक्शन हुआ और राधा की पोस्टमार्टम रिपोर्ट में शरीर पर, दिमाग पर और पेट पर कई जगह फैक्चर दिखे"[10] कहानी की बर्बरता, संवेदनहीनता का मूल कारण अस्पृश्यता है, जिसके चलते एक स्त्री दूसरी स्त्री के प्रति गर्भावस्था में भी भावना शून्य दिखाई देती है.

ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं, "दलितों का जीवन जहां सामाजिक उत्पीड़न, शोषण, दमन से भरा हुआ है, वहीं व्यवस्था के नाम पर लादी गई मर्यादाएं, बंधन दलित जीवन की विपन्नताएं बनकर रहे हैं. आर्थिक व्यवस्थाओं और विसंगति पूर्ण स्थितियों ने दलित जीवन को नर्क बनाया है"[11]

'**सुमंगली**' कहानी गरीब मजदूर दलित स्त्री के संघर्ष की है. कहानी की पात्र सुगिया बारह वर्ष की उम्र में ठेकेदार के शोषण का शिकार होती है, "सुगिया जब मात्र बारह वर्ष की थी तभी उसे औरत बना दिया गया था. उसे याद है वह काली मनहूस रात. अपनी टोली के बीच वह बेखबर सोई थी. अचानक उसके शरीर पर लोह स्पर्श देन्यानुकूल छाया सवार थी. वह चीखती रही सुबकती रही. भगवान का वास्ता देती रही पर उसकी चीख-पुकार रात के अंधियारे में विलीन हो गई और वह वैहसी, दरिंदा, भूखा भेड़िया ठेकेदार अपनी मनमानी करके ही छोड़ा"[12] मजदूरों को सुगिया के साथ हुए अन्याय का अहसास है,किंतु वे आवाज नहीं उठा पाते हैं, बल्कि उसे ही चुप रहने को कहा जाता है.

एक मजदूर स्त्री सुगिया से कहती है, "चुप रह बेटी चुप रह यह तो एक न एक दिन होना ही था, परंतु बड़ी अभागिन है री जो इस छोटी उम्र में ही सब कुछ झेलना था. अब एकदम चुप हो जा वरना पिशाच को मालूम हो गया तो तेरी चमड़ी उधेड़ कर रख देगा. हां हम गरीबों का जन्म ही इसीलिए हुआ है. हमारी मेहनत से अटालिकाएं तैयार होती है और उसके पुरस्कार के बदले हमारे शरीर को रौंदा जाता है"[13] उसके बाद वह लगातार सुगिया का शोषण करता है. दलित स्त्री की इस मजबूरी के विषय में कौशल पंवार लिखती हैं, "केवल काम ही करना नहीं होता, बल्कि उनकी बातें भी सुननी ही पड़ती है. कोई विरोध करना अपने ही रोजी रोटी पर लात मारने के समान होता है"[14] दलित लड़कियों को काम के दौरान अपनी अस्मिता की सुरक्षा के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है.

'दिहाड़ी' कहानी एक गरीब मजदूर लड़की के संघर्ष की है. अपनी आर्थिक मजबूरी के चलते तारा अपने पिता के साथ दिहाडी मजदूरी करने जाती है. लेबर को देखने के लिए ठेकेदार का बेटा आयेगा. उसके विषय में एक मजदूर स्त्री सोच रही है, "अगर ठेकेदार का बेटा आ गया तो वो तो लेवर की मजदूर औरतों के सामने पूरा दिन यह खड़ा रहेगा और घूरता रहेगा शरीरों को जैसे भूखा भेड़िया लोमड़ी को घूरता है"[15] मजदूर स्त्री का ऐसा सोचना उसके भीतर भय की आशंका को दर्शाता है.

ठेकेदार का बेटा तारा के साथ छेड़खानी करता है. वह गर्म रेत को तारा के चेहरे पर फेंकता है, जिसका तारा उसी की भाषा में प्रतिरोध करती है. उसके बाद वह लोहे की गर्म रौड को तारा के हाथ पर देता है, "तारा ने झट से किनारे से ही राड को पकड़ लिया. दर्द के मारे चीखी तारा. उसकी चीख हवा में गूंज उठी. तड़प उठी थी तारा जलन से. उसका दाया हाथ बुरी तरह से जल उठा था"[16]

तारा के समान ही अनेक मजदूर लडकियों को संघर्ष करना पड़ता है, परंतु गरीब मजदूरों की पीड़ादायी चीखें कभी मालिकों के कानो तक नहीं पहुंचती. इनका सफर मलिक मजदूर से शुरू होकर शोषक-शोषित का बन जाता है.

इस विषय में अजय कुमार लिखते हैं, " भारत में आज बहुत बड़ा हिस्सा मेहनतकश जनता का है, जो उच्च वर्ग के तबके द्वारा बेहद सताया जाता है. जिनमें 50 प्रतिशत से ज्यादा महिलाएं हैं. जिनका कोई संगठन नहीं है"[17]

जाति व्यवस्था ने दलितों से हमेशा से घृणित काम कराये हैं. दलित इन पेशों को छोड़ना चाहे तो भी उनसे जबरदस्ती ऐसे काम कराए जाते हैं, इस इस विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं, "दलित अपने व्यवसाय में कुछ बदलना चाहे तो यह तंत्र उसे घसीट कर वहीं डाल देता है"[18]

'छौआ माँ' कहानी एक दलित स्त्री की व्यथा को उजागर करती है. छौआ मां दाई का पुश्तैनी काम करती है. साथ ही जचकी की गंदगी साफ करने का काम भी करती हैं. एक बार उसके घर पर न रहने पर गैरदलित लोग उसकी बेटी से जबरदस्ती यह काम करवाते हैं. इस बात से नाराज छौआ मां अब इस काम को करने से इंकार करती है, जिस कारण गुस्साये गैरदलित उसे जिंदा जला देते हैं. आग की लपटों से चारों ओर से घिरी "छौआ मां को मूर्छा आने लगी. वह अपना सिर झटककर होश में रहने की कोशिश करती रही. धीरे-धीरे आग जमीन पर फैल गई और जमीन से आसमान तक उठने लगी. छौआ मां अकेली छटपटाती हुई जैसे आग से लड़ती रही. फिर वह बहुत जोर से चीखी उसकी खुली आंखों में पूरा गांव समा गया मगर वह कहीं शून्य में विलीन हो गई"[19] इस प्रकार वर्षों से उनकी बहू-बेटियों को जीवन दान देने वाली छौआ मां का दुखद अंत होता है. जो पाठक को भीतर तक दर्द की अनुभूति कराती है.

निष्कर्ष- हिंदी दलित स्त्री कथाकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित वर्ग की गरीब, मजदूर स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक संघर्ष को उजागर किया है. जाति व्यवस्था के कारण दलित महिलाओं को समाज में तमाम परेशानियों का सामना करना पड़ता है. कई बार उनकी आर्थिक विवशता भी उनके सामाजिक शोषण का कारण बनती है. स्त्री कथाकार दलित महिलाओं के संघर्ष को समाज के सम्मुख रखकर समाज से अपेक्षा करती हैं कि, दलित महिलाओं के साथ भी समाज मे वही व्यवहार होना चाहिए, जैसा अन्य वर्गों की महिलाओं के साथ होता है. जब तक दलित स्त्री को जाति के आईने से देखा जाएगा तब तक उसका संघर्ष चलता रहेगा. समाज में पारस्परिक एकता, समरसता लाने के लिए लिंग व जाति के भेदभाव को समाप्त करना अति आवश्यक है.

संदर्भ सूची -

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ.14
2. एस. एस. गौतम, दलित महिला दशा और दिशा, सिद्धार्थ बुक्स शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृ.132

3. कुसुम मेघवाल, ज्वालामुखी, सूची प्रकाशन जयपुर, संस्करण 2015, पृ. 14,15
4. वही, पृ. 15
5. अनिता भारती, एक थी कोटे वाली तथा अन्य कहानियाँ, एक लड़ाई की मौत, लोकमित्र प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.29
6. एस. एस. गौतम, दलित महिला दशा और दिशा, सिद्धार्थ बुक्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृ. 167
7. रजनी तिलक, बेस्ट ऑफ़ करवा चौथ, रोशनी धुंधली हो गई, अधिकरण प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018,पृ. 60
8. वही, पृ. 62
9. रजनी तिलक, बेस्ट ऑफ करवा चौथ, राधाकली की मौत, अधिकरण प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृ.49
10. वही, पृ. 49
11. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ. 76
12. कावेरी, अभावों में पलता स्वाभिमान, सुमंगली, जागृति प्रकाशन पटना, प्रथम संस्करण 2020, पृ. 27
13. वही, पृ. 27
14. कौशल पंवार, जोहड़ी, दिहाड़ी, प्रकाशन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2017, पृ. 5
15. वही, पृ. 6
16. वही, पृ. 11
17. एस. एस. गौतम, दलित महिला दशा और दिशा, सिद्धार्थ बुक्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृ.111
18. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ.112
19. सुशीला टाकभौरे, कथारंग सुशीला टाकभौरे की संपूर्ण कहानियाँ, छौआ माँ, प्रलेख प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड ठाणे महाराष्ट्र, प्रथम संस्करण 2022, पृ. 78

Email Id parurastogi123@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 60-63
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Mathematics plays a crucial role in the field of Artificial Intelligence (AI)

Dr. Vivek Kumar Namdeo, Assistant professor,
Mathematics and computer science department,
Bundelkhand university jhansi (u.p.)

ABSTRACT-
Mathematical playing circial role in the fild of artificial intelligence.Here are the some key importance of mathematics in AI. Including linear algebra for presenting machine learning data solve the system of linear equation and calculus used minimise the error function of performance of matrix .probability theory is used machine learning make predictions, and estimate probabilities. mathematics the developer of natural network how many programme mathematics is used in a programme of properly developer it's true. Then mathematics is properly including time development al.

Mathematical Foundations

1. Linear Algebra:The Linear algebra is used in machine learning to represent data, perform dimensionality reduction, and solve systems of linear equations.

2. Calculus: The Calculus is used in optimization techniques, such as gradient descent, to minimize error functions and maximize performance metrics.

3. Probability Theory: TheProbability theory is used in machine learning to model uncertainty, make predictions, and estimate probability learning.

Machine Learning

1. Supervised Learning: Mathematics is used in supervised learning to develop algorithms, such as linear regression, decision trees, and support vector machines.

2. Unsupervised Learning: Mathematics is used in unsupervised learning to develop algorithms, such as clustering, dimensionality reduction, and generative models.

3. Deep Learning: Mathematics is used in deep learning to develop neural networks, convolutional neural networks, and recurrent neural networks.

AI Applications

1. Computer Vision: Mathematics is used in computer vision to develop algorithms for image processing, object detection, and image recognition.

2. Natural Language Processing (NLP):
Mathematics is used in NLP to develop algorithms for language modeling, text classification, and machine translation.

3. Robotics: Mathematics is used in robotics to develop algorithms for motion planning, control systems, and sensor integration.

Research and Development

1. Mathematical Optimization: Mathematical optimization techniques are used in AI research to optimize performance metrics, such as accuracy, precision, and recall.

2. Mathematical Modeling: Mathematical modeling is used in AI research to develop models of complex systems, such as cognitive architectures and neural networks.

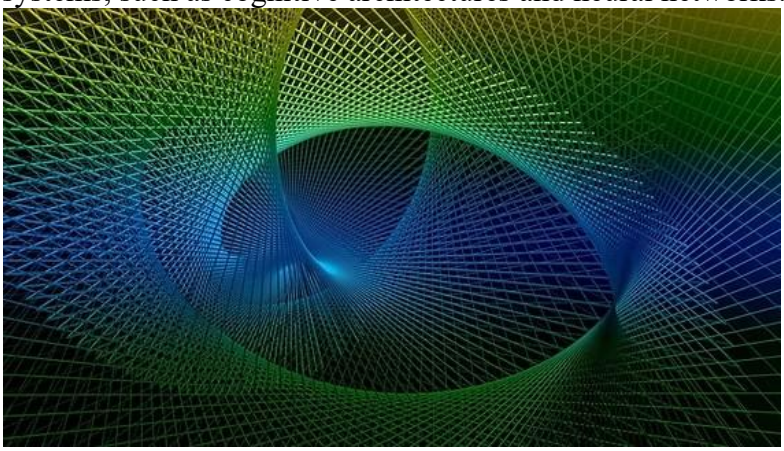

Career Opportunities

1. AI Researcher:
   Mathematicians can work as AI researchers, developing new algorithms and techniques for machine learning and AI applications.
2. Data Scientist:
   Mathematicians can work as data scientists, applying mathematical techniques to analyze and interpret complex data sets.

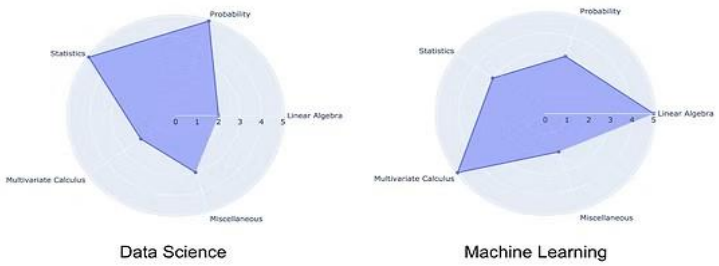

3. AI Engineer:
   Mathematicians can work as AI engineers, developing and implementing AI systems in various industries.

the importance of mathematics in the field of AI!Here are some additional mathematical concepts and techniques that are useful for AI:

Mathematical Concepts

1. Topology: Topology is used in AI to study the shape and structure of data.

2. Differential Geometry: Differential geometry is used in AI to study the curvature and geometry of data manifolds.

3. Measure Theory:

Measure theory is used in AI to define and compute probabilities and integrals.

4. Category Theory: Category theory is used in AI to study the relationships and structures between different mathematical objects.

Linear Algebra

1. Eigenvalue Decomposition: Eigenvalue decomposition is used in AI to diagonalize matrices and compute eigenvectors.

2. Singular Value Decomposition (SVD):

SVD is used in AI to decompose matrices into singular values and vectors.

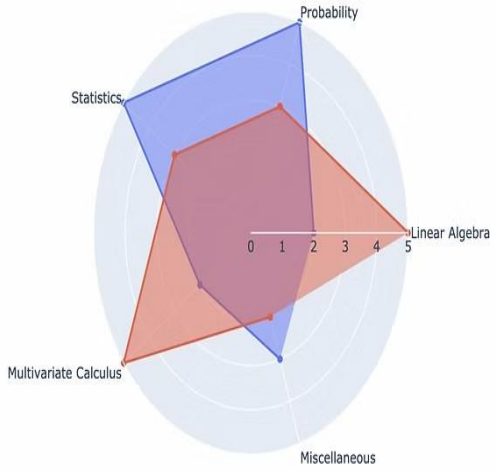

3. Matrix Factorization: Matrix factorization is used in AI to decompose matrices into lower-dimensional representations.

Calculus

1. Optimization Techniques: Optimization techniques, such as gradient descent and Newton's method, are used in AI to minimize or maximize functions.

2. Dynamical Systems: Dynamical systems are used in AI to model and analyze complex systems that change over time.

3. Control Theory: Control theory is used in AI to control and stabilize complex systems.

Probability Theory

1. Bayesian Inference:
   Bayesian inference is used in AI to update probabilities based on new evidence.
2. Markov Chains:
   Markov chains are used in AI to model random processes that evolve over time.

3. Stochastic Processes: Stochastic processes are used in AI to model random processes that evolve over time.

Information Theory

1. Entropy:
   Entropy is used in AI to measure the uncertainty or randomness of a probability distribution.
2. Mutual Information:
   Mutual information is used in AI to measure the dependence between two random variables.

3. Kullback-Leibler Divergence: Kullback-Leibler divergence is used in AI to measure the difference between two probability distributions.

Other Mathematical Techniques

1. Fourier Analysis:
   Fourier analysis is used in AI to decompose functions into frequency components.
2. Wavelet Analysis:
   Wavelet analysis is used in AI to decompose functions into time-frequency components.
3. Tensor Analysis:
   Tensor analysis is used in AI to represent and manipulate high-dimensional data.

Conclusion- the importance of mathematics in the field of AI!

Here are some additional mathematical concepts and techniques that are useful for AI. Including linear algebra for presenting machine learning data solve the system of linear equation and calculus used minimise the error function of performance of matrix .probability theory is used machine learning make predictions, and estimate probabilities.

Reference.

https://www.c-sharpcorner.com/article/algebra-for-machine-learning-and-data-science/
https://doi.org/10.1016/j.ijar.2024.109166

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 64-68
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'हेराका' एक धार्मिक-सामाजिक आंदोलन: पूर्वोत्तर भारत के संदर्भ में

डॉ. गोमा दे. शर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, असम।

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र विभिन्न मानव समुदाय का आदिम केंद्र हैं। हरे-भरे वन जंगल और रम्य पर्वत शृंखलाओं के मध्य खिलता यह प्रांत वर्तमान भारत के आठ राज्यों का सुंदर समाहार है। हर राज्य में विविध भाषा एवं समृद्ध संस्कृति की झाँकी दिखाई देती है। यह कई भाषा एवं बोलियों की क्रीड़ास्थली भी है। हर राज्य में आबाद जन समुदाय का अपना इतिहास है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में इस प्रांत की विशिष्ट भूमिका रही है। लाचित बरफुकन, वीर टिकेंद्रजीत, निरंजनसिंह छेत्री, तोगन नेमिंग्जा, उ कियांग नङ्बाह, मातमुर जामूह, विष्णुलाल उपाध्याय, हाइपु जादोनाङ जैसे वीरों ने औपनिवेशिक चंगुल से देश को आजाद करने के लिए संघर्ष करते हुए आत्मोत्सर्ग किया वह स्वर्णाक्षर में लिखे जाने के योग्य है।

भारत में लंबे समय तक अंग्रेजों के अधीन रहा। अंग्रेजों ने केवल देश की सत्ता पर कब्जा नहीं जमाया बल्कि धर्मांतरण का खेल भी रचाया जिसका शिकार हमारी भोली-भाली जनता के साथ आदिवासी समुदाय भी बना। जिस मानव समुदाय को अपना गौरवपूर्ण इतिहास, अपने पूर्वज, अपनी मान्यता, अपनी अस्मिता का ज्ञान नहीं था, उनका फायदा धर्मांतरणकारियों ने खूब उठाया। उन्हें बड़े सपने दिखाकर या सुख-सुविधाओं की काल्पनिक लोक का लोभ दिखाकर बड़े पैमाने पर धर्मांतरण को अन्जाम दिया गया। जब पूर्वोत्तर भारत में ईसाई मिशनरी सक्रिय होने लगी, गाँव के गाँव विदेशी धर्म को अंगीकार करने लगे तब मणिपुर के जलियाङरोङ (Zeliangrong) क्षेत्र ने एक इतिहास रचा। इसके अंतर्गत रोङमई नागा समूह जिसमें जामई, ल्याङमाई, रोङमई और इनपुई समुदाय शामिल हैं। नागा एकता के लिए हाइपु जादोनाङ का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उन्होंने अपने जाति समुदाय को अपने परंपरागत धर्म में बने रहने के लिए आह्वान किया। अपने धर्म को पुनर्जीवित करके नागा समुदाय को ईसाई बनने से बचाने का प्रयास किया।

हाइपु जादोनाङ

हाइपु जादोनाङ का जन्म 1905 में मणिपुर के तमेङलोङ ज़िले के काम्बिरोन गाँव में एक गरीब किसान परिवार में हुआ था। उनका संबंध रोङमई नागा समुदाय से था। पिता के तीन बेटों में वे सबसे छोटे थे। वे बचपन से चिंतनशील और अध्यात्मप्रिय थे। वे घंटों प्रार्थना में व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति आध्यात्मिक गुरु के रूप में होने लगी। उनकी भविष्यवाणियाँ ठीक-ठीक साबित होतीं। अध्यात्म के साथ-साथ वे प्राकृतिक जड़ी-बूटियों का ज्ञान भी रखते थे। लोग उनके पास रोगों के उपचार के लिए आते। यह वो समय था जब भारत में अंग्रेजी शासन का परचम लहरा रहा था। मणिपुर जैसा सुदूर प्रांत भी उपनिवेशकारियों के चंगुल में आ चुका था।

युवा जादोनाङ यह देख रहे थे कि अंग्रेज किस प्रकार नागा जनजाति पर शासन करने के साथ-साथ ईसाई धर्म थोप रहे थे। कई लोग धन और सुख के लोभ से ईसाई धर्म अंगीकार कर रहे थे, तो कई दवाब में अपना धईमांतरण कर रहे थे। जादोनाङ जानते थे कि इस कृत्य का नागा जनजाति के साथ-साथ भारतीय एकता में दूरगामी असर पड़ेगा। उनका मानना था कि धर्मांतरण अपने मूल मान्यताओं से विच्छिन्न होना है, जड़ों से कटना है, अपनी पहचान खोने का नाम है। नागाओं का धर्म परिवर्तन उनके विश्वास, रीति-रिवाज, पहचान, मान्यता और परंपराओं के लिए एक बड़ा खतरा है। तत्कालीन इस ज्वलंत स्थिति ने जादोनाङ को नागा संस्कृति के पुनरुत्थान करने और साम्राज्यवादी उत्पीड़न के खिलाफ़ विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने 'हेराका' नामक धार्मिक जागरण का बिगूल फूँका। हाइपु जादोनाङ परंपरागत निज धर्म की रक्षा के लिए सामाजिक जागरण के स्रोत बने। उन्होंने अपने धर्म को 'हेराका' नाम देकर इसका पुनरुत्थान किया।

हेराका धर्म : एक परिचय

हेराका सन् 1920 के आस-पास प्रारंभ होने वाला एक सामाजिक-धार्मिक आंदोलन था। यह शुद्ध स्वदेशी आदिवासी धार्मिक आंदोलन था, जो अंग्रेजों द्वारा लादे जा रहे विदेशी धर्म और ताक़त के विरुद्ध एक विद्रोह के रूप में अस्तित्व में आया। जामेई भाषा में 'हेराका' का अर्थ है 'शुद्ध' अर्थात् शुद्ध देशी आदिवासी उपासना पद्धति। जादोनाङ ने देखा कि अंग्रेजों के द्वारा नागा जनजातियों को निज धर्म के खिलाफ़ भ्रमित करने के मूल कारणों में से एक बहुदेवों की उपासना भी थी। उन्होंने अपने परंपरागत धार्मिक पद्धति में सुधार करते हुए बहु देवों की उपासना के स्थान पर केवल **टिङकाओ रागवाङ** ईश्वर की उपासना करने पर बल दिया। टिङकाओ रागवाङ इस ब्रहमांड के रचयिता है। मनुष्य, सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, पृथ्वी, जल, वायु, जीव-जंतु, चर-अचर सभी टिङवाङ की रचना है। उस ईश्वर की उपासना शुद्ध मन से, अपनी शुद्ध परंपरागत विधि और बिना किसी पशु बलि के करना ही हेराका है।

हेराका अपने परंपरागत धर्म और मान्यताओं से विमुख होना नहीं सिखाता। अपनी मान्यताओं के साथ अपने अस्तित्व की रक्षा करने का संदेश देता है। यह सभी जन समुदायों के बीच एकता, शांति, प्रेम, आपसी समझदारी और भाईचारे का संदेश देता है। यह अपने माता-पिता, पूर्वज के प्रति कृतज्ञ होने के साथ-साथ आत्म संयम, अनुशासन एवं सत्य के लिए मर-मिटना सिखाता है। यह ज्ञान और प्रकाश की खोज करने के संदेश के साथ-साथ किसी के प्रति बैर भाव एवं ईर्ष्या न रखते हुए शांतिपूर्ण जीवन यापन का संदेश देता है।

हेराका सिद्धांतों को मन और निष्ठा से पालन करने वाले को मरणोप्रांत स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अच्छे कर्म करने वालों को भगवान टिङकाओ का शरण प्राप्त होगा और बुरे कर्म करने वालों को इस धरती पर पुनर्जन्म लेना होगा।

हाइपु जादोनाङ ने अपने परंपरागत धार्मिक मान्यताओं में पुनरुत्थान करते हुए विदेशी ताकत के खिलाफ एक सामाजिक आंदोलन को जन्म दिया। परंपरागत धर्म किसी उपासना स्थल के निर्माण पर जोर नहीं देता था पर जिस प्रकार ईसाइयत चर्चों का निर्माण करके विभिन्न चमत्कार प्रदर्शन के माध्यम से नागाओं का धर्मांतरण कर रहा था, इसका मुकाबला करने के लिए सामूहिक पूजास्थलों का निर्माण अनिवार्य था। जादोनाङ ने हेराका के सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार के लिए कई उपासना स्थलों का निर्माण किया जिन्हें 'राहकाई' कहा जाता। सामूहिक प्रार्थना, धार्मिक प्रवचन के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध सामाजिक जागरण एवं एकजुटता का प्रयास जैसे महान कार्यों के लिए राहकाई विशेष केंद्र बने। उन्होंने सिलचर स्थित भुवन गुफा एवं मणिपुर के जिलाद झील को पवित्र स्थल मानते हुए अपने जीवन काल में इनकी यात्राएँ कीं। हेराका पूजास्थलों में विशेषकर सूर्योदय की पूजा के साथ टिङकाओ की उपासना की जाती है और पूर्णिमा के दिन को विशेष महत्व दिया जाता है। जादोनाङ ने अपने आराध्य की उपासना के लिए कई भजनों की रचना की। विशेष अवसर पर राहकाई में भजन कीर्तन एवं नृत्य का आयोजन करने की परंपरा बनाई।

हेराका धर्म में चंद्र कैलेंडर एवं कृषि व्यवस्था के अनुसार साल भर अनेक उत्सव मनाए जाते हैं जिनमें नव वर्ष, फसल की बुवाई, कटाई आदि से संबंधित प्रमुख हैं। हर उत्सव का मुख्य केंद्र सामूहिक प्रार्थना, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता, एकता के लिए वचन बद्धता के साथ विशेष नृत्य गायन होते हैं। हेराका जलियाङरोङ नागा समुदाय की जड़ों से संबद्ध परिमार्जित धार्मिक पंथ है। यह एकेश्वरवाद, पवित्रता, अनुशासन, अहिंसा, पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता एवं नैतिक शुद्ध आचरण पर जोर देता है। यह हाइपु जादोनाङ के कठोर प्रयास और एकनिष्ठ साधना का परिणाम है।

अपने समय में जादोनाङ को नागा आदिवासी अपना नेता मानने लगा। जन समाज उन्हें कर के रूप में अनाज देने लगा। इससे अंग्रेजों का राजस्व कम हो रहा था। वे लगातार नागाओं को संगठित कर रहे थे। इससे अंग्रेज क्रुद्ध हो गए और उन्हें गिरफ़्तार करके जेल भेज दिया गया। जेल से छूटने के बाद उन्होंने लगभग 500 पुरुषों और महिलाओं की एक सेना बनाई जिसमें

युवा और बुज़ुर्ग समान रूप से शामिल थे। इस स्वदेशी सेना के सदस्यों को 'रिफेन' नाम से जाना जाता था। उन्हें सैन्य रणनीति, हथियारबंदी और सैन्य परीक्षण जैसी युद्ध गतिविधियों में प्रशिक्षित किया जाता था। साथ ही साथ पशुधन, खेती, चारा एवं ईंधन संग्रहण जैसे असैनिक मामलों में भी उनकी मदद की जाती थी।

हाइपु जादोनाङ की गिरफ्तारी और शहादत

जादोनाङ को ब्रिटिश अधिकारियों ने देशद्रोह और हत्या के झूठे आरोप में गिरफ़्तार कर लिया और 29 अगस्त 1931 में अदालत द्वारा दोषी करार देकर उन्हें मणिपुर की राजधानी इम्फाल में फाँसी पर लटका दिया। आज भी जलियाङरोङ नागा समुदाय 29 अगस्त को अपने "मसीहा राजा" के रूप में स्मरण करके उन्हें श्रद्धांजलि देता है।

रानी गाईदिन्ल्यू और हेराका आंदोलन

हाइपु जादोनाङ के बाद उनकी शिष्या एवं चचेरी बहन रानी गाइदिन्ल्यू ने हेराका आंदोलन को आगे बढ़ाया गया। रानी का जन्म 26 जनवरी 1515 में मणिपुर के नुङकाओ गाँव में एक रोङमई परिवार में हुआ था। उनकी परवरिश पारंपरिक धार्मिक मान्यताओं के आधार पर हुई। इसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ा। धार्मिक मान्यताएँ, आस्था, परंपरा एवं अस्तित्व चेतना उन्हें विरासत में मिली थी। इसी आत्मिक बल के कारण उन्होंने महज 13 वर्ष की उम्र में अपने चचेरे भाई जादोनाङ द्वारा चलाए गए हेराका आंदोलन की कमान संभाली। पूर्वोत्तर भारत की यह वीरांगना भारत की स्वाधीनता पर्यंत तक अंग्रेजों की नीति एवं व्यापक धर्मांतरण विरूद्ध लड़ती रही। उन्होंने धार्मिक सांस्कृतिक पुनरूत्थान के लिए छेड़े गए हेराका मुहिम को अंग्रेजों के खिलाफ़ किए जा रहे देशव्यापि प्रतिरोध में बदल दिया। 16 वर्ष की आयु में उन्हें सन् 1932 में अंग्रेजों ने गिरफ्तार किया और राजद्रोह के आरोप में आजीवन कारावास की सजा दी। उन्होंने 14 वर्ष तक पूर्वोत्तर भारत के कई जेलों में बिताए। जेल में उन्हें कई प्रकार के प्रलोभन दिए गए लेकिन रानी अंग्रेजों के आगे कभी नहीं झुकी। उन्होंने औपनिवेशिक के प्रलोभन के आगे अपने आत्म सम्मान को झुकने नहीं दिया। देश स्वाधीन होने के बाद वे जेल से रिहा हुईं। स्वतंत्रता के बाद भी वे जलियाङरोङ नागा समुदाय के हितों के लिए आवाज उठाती रहीं। हेराका के सिद्धांतों को लेकर ईसाई धर्म को अंगीकार कर चुके नागा संगठनों ने उनका पुरजोर विरोध किया। इन ताकतों के खिलाफ़ भी गाइदिन्ल्यू डटकर खड़ी रही। उनके धार्मिक-सामाजिक एवं स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान के लिए उन्हें पद्मभूषण, भगवान बिरसामुण्डा पुरस्कार, विवेकानंद सेवा पुरस्कार, स्त्री शक्ति पुरस्कार जैसे कई शीर्ष सम्मान एवं पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 17 फरवरी 1993 को उनके पैतृक गाँव नुङकाओ में उनका निधन हुआ।

निष्कर्ष

यह अकाट्य सत्य है कि देश के विभिन्न हिस्सों में जीवन यापन करने वाला आदिवासी समुदाय भारत का अनन्य हिस्सा है। जिन्हें भारत की मुख्य धारा से काटने के लिए ब्रिटिश ने बहुत बड़ा खेल रचा। उनकी पैतृक धार्मिक मान्यताओं को समाप्त करके उन्हें अपने मत में शामिल कर लिया। आज भी विभिन्न प्रकल्पों के जरिए धर्मांतरण का खेल जारी है जो राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा है। भले ही देश में हर पंथ, धर्म और संप्रदाय को मानने की छूट है पर धर्मांतरण की छूट का उल्लेख संविधान की किसी भी धारा में नहीं है। हाइपु जादोनाङ एवं रानी गाइदिन्ल्यू जैसे महान नेताओं ने पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी समुदाय को अपनी पहचान, निज अस्तित्व, राष्ट्र की विरासत की रक्षा के लिए विदेशी ताकतों के खिलाफ़ किस प्रकार एक जुट होकर खड़ा होना है, यह संदेश दिया। पूर्वोत्तर भारत के साथ समग्र भारत इन दो रणबाँकुरों का आभारी रहेगा। इन दो महान आत्माओं का त्याग, निष्ठा और बलिदान युग- युग तक देशवासियों को देश रक्षा के लिए अनुप्राणित करता रहेगा।

संदर्भ स्रोत

1. Kamei Budhha, *Rani Gaidinliu and Heraka religion* - Part 2 - The Sangai Express, E pao, April 13, 2025
2. Kamei Budhha, Panti Neimei: *Prayer for longevity of life*,November 10, 2015
3. Pratim Partha Mazumdar, *The untold Story of Haipou Jadonang Malangmei, freedom fighter and protector of Hindus in the Northeast,* Organiser, Sptember 7, 2022.
4. https://organiser.org/2022/03/05/72772/bharat/unsung-heroes-crusader-against-missionaries/
5. https://en.wikipedia.org/wiki/Haipou_Jadonang
6. https://thebetterindia.com/155188/haipou-jadonang-naga-freedom-fighter-independence/
7. https://organiser.org/2022/09/07/93401/bharat/the-untold-story-of-haipou-jadonang-malangmei-freedom-fighter-and-protector-of-hindus-in-the-northeast/

Phone No.-8638505492

gomaadhikaris@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 69-71
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

اعلیٰ تعلیم میں ابھرتے ہوئے رجحانات

(زبان وادب کے بدلتے ہوئے رجحانات)

Sayyed Abdul Hannan Hilaluddin, Research scholar Phd.Urdu,
Research Center SSA Art's and Commerce College Solapur:
Punyashlok Aheliyadevi Holkar University,Solapur
Assitant Teacher : Dr.Mohd.Iqbal High School,Ambajogai

تمہید :-

زبان اظہار کا ذریعہ ہے ہر جاندار کو اللہ تعالیٰ نے زبان بخشی ہےں۔جانور،چرند ،پرند، فضائی مخلوقات ،بحری مخلوقات، زمین پر رہنے والی مخلوقات زیرِ زمین رہنے والے تمام جاندار کو اپنے اپنے انداز میں گویائی کی صلاحیت اللہ نے دی ہیں۔ تمام مخلوقات ہم نسل ،مخلوق سے گویا ہوتی ہیں۔ اس طرح اشرف المخلوقات حضرت انسان کو اللہ رب العزت نے زبان دی ہیں۔ لیکن ہر علاقے میں مختلف زبان کہی جاتی ہیں ۔پوری دنیا میں تقریباً ۷۱۰۰سے زائد زبانیں بولی جاتی ہیں ۔ بھارت میں ۲۲ زبانیں دفتری زبانیں ہیں اور تقریباً ۱۹۵۰۰علاقائی بولیاں بولی جاتی ہیں۔ زبان تہذیب کی عکاس ہوتی ہےں اور معاشرے کی ترقی کا ذریعہ ہوتی ہیں۔ زبان کے ذریعہ تہذیب ،تاریخ و ثقافتی ورثہ کو تحریری شکل محفوظ کیا جاسکتا ہےں۔ زبان نسل انسانی کی ترقی کا وسیلہ ہیں۔ دنیا میں کئی زبانیں ترقی یافتہ ملکوں کی منفرد ہیں۔جیسے جرمنی، انگریزی، چینی ،جاپانی ۔فرانسیسی ،پرتگالی ،وغیرہ ہر ملک و قوم اپنی زبان سے پہچانی جاتی ہیں۔ زبان و ادب ملک و قوم کی اخلاقی اصلاح ، معاشی ترقی ، سائنسی ترقی کا زینہ ہیں۔

ہر زبان کی ارتقائی منازل مختلف زمانوں میں ہوئی بعض زبانیں ایک دوسرے سے ملتی جلتی ہیں تو بعض مختلف ۔ ہر زبان کا رسم الخط جُدا ہیں۔ زبان زمانے کے ساتھ ساتھ ترقی کرتی چلی جاتی ہےں۔ زبانوں میں دوسری زبانیں مل جانے سے زبان کی ترقی ہوتی ہے۔ اگر کوئی زبان اپنے اندر دوسری زبان جذب نہیں کرتی تو وہ زبان ترقی نہیں کرتی اور آہستہ آہستہ پیچھے ہو تے ہوئے ختم ہو جاتی ہےں۔ زبان کی خصوصیت ہے کہ وہ اپنے اندر دیگر زبانوں کے الفاظ کو جذب کریں۔

اردو زبان و ادب ایسی زبان ہے جو مختلف زبانوں سے مل کر بنی ہے۔اس کی تاریخ دیکھی جائے تو سولہویں صدی کے آغاز سے ہی اردو زبان اپنی ارتقائی منزل طئے کر رہی تھی۔دھیرے دھیرے دیگر زبانوں کے الفاظ کو اپنے اندر سموتے گئی اور آج ہم اردو استعمال کرتے ہیں وہ اردو وجو د میں آئی۔ مزید اردو ترقی کی منازل طئے کرتی جا رہی ہےں۔ اکیسویں صدی کے نصف اولیٰ میں ہی نئی تکنالوجی کی ترقی نے اردو زبان و ادب کو متاثر کیا۔ بلکہ دنیا کی تمام زبانوں و ادب کو متاثر کر دیا دنیا کی تمام زبانیں سیکھنا تکنالوجی کے ذریعہ سہل ہوتا جا رہا ہیں۔ مزید کہ اب مو بائیل فون نے تو زبان و ادب کی تو دنیا ہی بدل ڈالی

-

نفس مضمون : Main Theme

زبان و ادب بدلتے ہوئے رجحانات کی عکاسی کرتی ہے جیسے جیسے معاشرتی ،ثقافتی اور تکنیکی تبدیلیاں آتی ہیں۔زبان بھی ارتقاء پذیر ہوتی ہے۔ نئے الفاظ محاورے اور اظہار کے انداز وقت کے ساتھ ساتھ بدلتے رہتے ہیں،جو کسی بھی سماج کی فکری اور تہذیبی ترقی کا مظہر ہوتے ہیں۔مثال کے طور پر ای میل، ویب سائٹ اور' چیٹ ' جیسے الفاظ عام ہوگئے ہیں جبکہ ماضی میں ان کا تصور بھی نہیں تھا۔ اسی طرح سوشل میڈیا نے زبان میں نئے غیر رسمی اور مختصر اظہار متعارف کرائے۔ یہ رجحان اس بات کاعکاس ہے کہ زبان و ادب محض الفاظ کا مجموعہ نہیں بلکہ ایک

زندہ اور متحرک نظام ہے جو انسانی تجربات اور عادات کے ساتھ مسلسل ترقی کرتا رہتا ہے زبان و ادب کی بھی معاشرے کے تہذیبی سماجی اور فکری ارتقاء کی آئینہ دار ہوتے ہیں جیسے جیسے انسانی زندگی میں تبدیلیاں آتی ہیں ویسے ویسے ہی زبان اور ادب بھی نئے رجحانات اختیار کرتے ہیں ۔ ڈیجیٹل ٹیکنالوجی ،گلوبلائزیشن ،سوشل میڈیا ،اور بدلتے ہوئے سماجی و سیاسی حالات نے زبان و ادب پر گہرے اثرات مرتب کیے ہیں۔ اس مقالے میں ان رجحانات کا تجزیہ کیا جائے گا جنھوں نے جدید زبان و ادب کو ایک نئی سمت دی ہے۔

ادب کے بدلتے ہوئے رجحانات:

۱) ترقی پسند تحریک کا اثر : ترقی پسند تحریک نے اردو ادب پر گہرا اثر چھوڑا ہے اس تحریک کے زیراثر ادب میں سماجی مسائل معاشرتی نا انصافی اور طبقاتی جدو جہد جیسے موضوعات پر توجہ دی گئی۔مثال: سعادت حسن منٹو اور کرشن چندر کی کہانیوں میں سماجی مسائل کی عکاسی کی گئی ہے۔
(ترقی پسند ادب کے عطایا)

۲) جدیدیت اورمابعد جدیدیت : جدیدیت اور ما بعد جدیدیت کے اثر نے اردو ادب میں نئے تجربات کو جنم دیا ہے مصنفین نے روایت سے ہٹ کر نئے اسالیب اور موضوعات کو اپنایا۔ مثال: شمس الرحمن فاروقی کا ناول'کئی چاند تھے سر آسماں' جدیدیت کی مثال ہے۔

زبان کے بدلتے رجحانات :

۱) سوشل میڈیا اور ڈیجیٹل زبان : انٹرنیٹ اور سوشل میڈیا نے زبان کوایک نئی جہت دی ہے۔ مختصر جملوں ۔ایموجیز ،اور غیر روایتی الفاظ کے استعمال میں اضافہ ہوا ہے۔ الفاظ اور جملوں کی ساخت مختصر ہوتی جا رہی ہے۔ جیسے ---
OMG(Oh My God)،LOL (Lough out Loud)،BTW (By The Way)،ASW (Assalamu Alaikum)
ایسے مخففات عام ہوچکے ہیں۔
اردو میں انگریزی کے الفاظ زیادہ استعمال ہو رہے ۔ بلکہ تمام بھارتی زبانوں میں استعمال ہو رہے ہیں۔ جیسے میٹنگ ،ای میل ،ریسورس ، سوشل میڈیا ،سوشل میڈیا پر مختصر جملے اور ہیش ٹیگز کا رجحان
(Crystal ,D.(2011) ,Internet Linguistics, A Student Guide Roulades)

۲) کوڈ سوئچنگ اور مخلوط زبان: اردواورانگریزی سمیت دیگر زبانوں میں کوڈ سوئچنگ ایک عام رجحان بن چکا ہے۔ آج Amazingکے دور میں لوگ ایک جملے میں دو یا دو سے زیادہ زبانوں کو ملا کر بولتے اور لکھتے تھا۔
مثال :- یہ ایک Experian
(Bhatia , T.K & Ritchie ,W.C (2013).The Hand Book o Biligualism and Multilinguism. Wiley Blac **(حوالہ**
بھارت میں مختلف زبانوں کے ملاپ کا رجحان بڑھ رہا ہے اردو اور ہندی کے ساتھ انگریزی الفاظ کا استعمال عام ہو گیا ہے جس سے ایک مخلوط زبان کی تشکیل ہو رہی ہے۔ مثال: میں نے آج مارکیٹ سے کچھ گروسریز خریدی ہیں۔
(حوالہ : ڈاکٹر محمد یحییٰ کی تصنیف " شعر و فسانہ")

۳) **نئی اصطلاحات اور الفاظ کا ارتقاء :** معاشرتی ،سائنسی اور تکنیکی ترقی کے ساتھ نئی اصطلاحات زبان میں میں داخل ہو رہے مثال کے طور پر مصنوی زہانت Artificial Intelligence کرپٹو کرنسی کے لیے دیجیٹل کرپٹو کرنسی کے لیے دیجیٹل کرنسی ، ماھولیاتی تبدیلی کے لیے کلائیمنٹ چینج جیسے الفاظ اردو میں رائج ہو ہورہے ہیں۔
(MC Whorter ,J.(2011)The Power of Babel : A Natural History of Language - **(حوالہ**

۴) علاقائی زبانوں اور بولیوں کا احیا: علاقائی زبانوں اور بولیوں کا احیا ایک نمایاں رجحان ہے جہاں لوگ اپنی مقامی زبانوں کو ڈیجیٹل پلیٹ فارمز ،شاعری ،اور ادب میں زیادہ استعمال کر رہے ہیں۔
مثال : مراٹھی ،تیلگو، کنڑ ،ملیالم ،تامل ،بھوجپوری ،بنگالی وغیرہ مقامی زبانوں میں بڑھتی ہوئی (سوشل میڈیا) ،یوٹیوب چینل ،انسٹا گرام، فیس بُک وغیرہ پر سرگرمیاں
(Fishman J.A(1991) Reversing Language Shift Multilingual Matters - **(حوالہ**

۵) ادب کے بدلتے ہوئے رجحانات:

الف) عصری مسائل پر مبنی ادب: جدید اردو ادب میں سماجی سیاسی اور ماحولیاتی مسائل پر زیادہ زور دیا جا رہا ہے۔ نسائی ادب ،اقلیتی مسائل، اور جدیدیت جیسے موضوعات نمایاں ہوگئے ہیں۔
مثال : عصمت چغتائی ،قرۃ العین حیدر کی تحریری مثالیں ہیں ۔
(حوالہ شعر و فسانہ (ڈاکٹر محمد یحییٰ کی تصنیف)

ب) فیکشن میں اسالیب اور تکنیکوں کا استعمال : جدید اردو فیکسن میں بیانیہ کے نئے تجربات کے جارہے ہیں۔ جیسا فیکشن میں فینٹسی : نئے افسانوی موضوعات کا اضافہ
Hassan, I(1987)The Postmodern Turn: Essay in Postmodern Theory and culture.ohio state university press)

۳)ڈیجیٹل ادب اور بلاگنگ کا فروغ : آن لائن بلاگر ڈیجیٹل شاعری اوسوشل میڈیا پلیٹ فارمز پر ادبی تخلیقات کا فروغ ادب کے پھیلاؤ میں اہم کردار ادا کر رہا ہے۔
مثالیں :آن لائن اردو بلاگر جو ادبی تبصروں اور افسانوی تحریروں پر مشتمل ہیں۔
ڈیجیٹل شاعری: شاعروں کی انسٹا گرام اور فیس بک پر تخلیقات کی اشاعت نثر اور شاعری دونوں
(Heyles N.K.(2008) Electronic Literature : New Horizons for the literacy **حوالہ)**
اردو بلاگر جو ادبی تبصروں اور تنقیدی مضامین پر مشتمل ہیں۔
٤) ترجمہ ادب کا فروغ : عالمی ادب کے تراجم اردو میں اور اردو ادب کے تراجم دیگر زبانوں میں زیادہ کئے جا رہے ہیں۔جو ادب بدلتے ہوئے رجحانات کا حصہ ہیں۔ خالد حسینی اور یانا فالجی اور پاؤلو کوئیلو کے اردو تراجم انتظار حسین اور سعادت حسن منٹو کے انگریزی فرانسیسی اور ہر یانوی زبانوں میں تراجم
(Bassnett,S & .Lefevere,A.(1990) Translation, History & Culture - حوالہ)

سفارشات

* زبان وا دب کی ترقی کے لیے جدید ٹیکنالوجی کا موثر استعمال ضروری ہے۔
*اردو زبان میں سوشل میڈیا اور ڈیجیٹل پلیٹ فارمز پر مزید مواد تخلیق کیا جانا چاہیے تاکہ نئی نسل کی اردو ادب میں دلچپی برقرار رہے۔
*ادبی میلوں ،ورکشاپ اور آن لائن کورسز کے ذریعے ادب کی ترویج کی جائے۔
*علاقائی زبانوں کے فروغ کے لیے حکومتی اور نجی سطح پر اقدامات کیے جائے۔
*اردو زبان کو جدید دور کے تقاضوں کے مطابق اپنانے کے لیے تعلیمی اداروں میں تحقیقی کو فروغدیا جائے۔
*جدید ادب کو زیادہ سے زیادہ بین الاقوامی سطح پر متعارف کرانے کے لیے تراجم کی حوصلہ افزائی کی جائے۔

خلاصہ مقالہ :- Research Abstract

زبان و ادب میں بدلتے ہوئے رجحانات معاشرتی ثقافتی اور ٹیکنالوجیکل تبدیلیوں کا نتیجہ ہیں۔بھارتی مصنفین نے ان تبدیلیوں کو اپنے ادب سے منعکس کیا ہے جو اردو ادب کی ترقی اور تنوع کا باعث بنے ہیں۔ ان رجحانات کا مطالعہ ہمیں زبان و ادب کی موجودہ حالت اور مستقبل کی سمت کو سمجھنے میں مدد دیتا ہے۔

زبان و ادب میں وقت کے ساتھ نمایاں تبدیلیاں آرہی ہیں۔ جن کا تعلق ٹیکنالوجی سماجی عوامل اور بدلتے ہوئے فکری رجحانات سے ہے۔ زبان میں سوشل میڈیا مخلوط زبان اور نئی اصطلاحات کا اضافہ ہوا ہے جبکہ ادب میں عصری مسائل ،فلیش فکشن اور ڈیجیٹل تحریر جیسے رجحانات ابھر رہے ہیں ۔ ان تبدیلیوں کو سمجھنا اور ان کے مطابق حکمت عمل وضع کرنا ضروری ہے تاکہ اردو زبان و ادب کو نئی نسل کے لیے مزید دلچسپ اور قابل رسائی بنایا جا سکے۔

زبان و ادب ہمیشہ بدلتے رہتے ہیں اور جدید دور میں ان تبدیلی کی رفتار مزید تیز ہوگئی ہے۔ ڈیجیٹل انقلاب سوشل میڈیا اور بدلتے ہوئے سماجی حالات نے زبان و ادب کے نئے رجحانات متعارف کروائے ہیں ۔آج اردو زبان میں کوڈ سوئچنگ ڈیجیٹل الفاظ اور علاقائی زبانوں کا احیا دیکھنے کو ملتا ہے۔ جبکہ ادب میں جدید موضوعات فلیش فکشن ڈیجیٹل تحریر اور ترجمہ ادب کی مقبولیت بڑھ گئی ہے۔ان رجحانات کو سمجھنا اور ان کے مطابق زبان و ادب کی ترقی کے لیے اقدامات کرنا وقت کی ضرورت ہے۔

Mob.No. 9595566924 E-mail:hannansayyed123@gmail.com
Address:rish Colony,Mandi Bazar,Ambajogai.431517

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 72-74
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बदले शक्ति ध्रुवीकरण में विश्व राजनीति

भंवराराम, सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान (विद्या संभल योजना),
राजकीय महाविद्यालय फलसुंड जैसलमेर

भूमिका (Introduction):- बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में वैश्विक राजनीति द्विध्रुवीय संरचना (Bipolar Structure) के अंतर्गत संचालित होती रही, जिसमें अमेरिका और सोवियत संघ दो महाशक्तियों के रूप में प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के पश्चात अमेरिका एकमात्र महाशक्ति के रूप में उभरा और एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था (Unipolar World Order) का जन्म हुआ। किंतु इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में यह स्थिति चुनौतीपूर्ण होती गई, और अब वैश्विक राजनीति एक बहुध्रुवीय (Multipolar) दिशा में गतिशील हो रही है, जहाँ अनेक राष्ट्र अपनी-अपनी शक्ति के आधार पर वैश्विक शक्ति संतुलन को प्रभावित कर रहे हैं। इस शोध-पत्र का उद्देश्य बदलते शक्ति ध्रुवीकरण के संदर्भ में विश्व राजनीति के बदलते परिदृश्य का विश्लेषण करना है।

1. **शक्ति ध्रुवीकरण की अवधारणा :-** राजनीतिक विज्ञान में शक्ति ध्रुवीकरण का तात्पर्य उस स्थिति से है जहाँ वैश्विक शक्ति किसी एक, दो अथवा अनेक ध्रुवों (nuclei of power) के बीच विभाजित होती है।

एकध्रुवीयता :- केवल एक शक्ति का वैश्विक प्रभुत्व - जैसे अमेरिका (1991-2010)।

द्विध्रुवीयता :- दो महाशक्तियों के बीच प्रतिस्पर्धा - जैसे शीत युद्ध काल में अमेरिका और सोवियत संघ।

बहुध्रुवीयता :- अनेक शक्तियाँ वैश्विक संतुलन को प्रभावित करती हैं - वर्तमान वैश्विक परिदृश्य।

2. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शक्ति ध्रुवीकरण :-

2.1चीन का उदय :- चीन ने 1978 के बाद आर्थिक सुधारों के माध्यम से अपने को एक वैश्विक आर्थिक और सामरिक शक्ति के रूप में स्थापित किया है। उसके बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI), दक्षिण चीन सागर में गतिविधियाँ और अफ्रीकी देशों में निवेश उसकी वैश्विक भूरणनीतिक उपस्थिति को दर्शाते हैं।

2.2रूस की भू-रणनीतिक पुनर्स्थापना :- यूक्रेन पर आक्रमण (2022), नाटो के विस्तार के विरोध, और ऊर्जा संसाधनों के नियंत्रण के माध्यम से रूस ने अपनी स्थिति एक शक्ति-ध्रुव के रूप में पुनः सुदृढ़ की है।

2.3भारत की बढ़ती भूमिका :- भारत रणनीतिक स्वायत्तता की नीति पर चलते हुए क्वाड, ब्रिक्स और G20 जैसे मंचों पर सक्रिय हो रहा है। तकनीकी नवाचार, स्टार्टअप इकोसिस्टम और रक्षा क्षमताओं में आत्मनिर्भरता भारत को उभरती महाशक्ति बना रही है।

2.4यूरोपीय संघ की रणनीतिक द्विविधा :- यूरोपीय संघ आर्थिक शक्ति तो है परंतु रक्षा और विदेश नीति में उसकी एकता अभी सीमित है। ब्रेग्ज़िट और नाटो पर निर्भरता उसकी स्वतंत्र शक्ति बनने की राह में बाधाएँ हैं।

2.5अमेरिका की स्थिति :- हालाँकि अमेरिका सैन्य और तकनीकी रूप से अब भी अग्रणी है, किंतु घरेलू राजनीतिक विभाजन, अफगानिस्तान से वापसी, और चीन की चुनौती से उसकी स्थिति सापेक्ष रूप से कमजोर प्रतीत हो रही है।

3.भू-राजनीतिक प्रभाव :-

नवीन गठबंधन :- क्वाड (QUAD), ऑकस (AUKUS), ब्रिक्स+, आरआईसी (RIC) जैसे गठबंधन नई शक्ति संरचनाओं को जन्म दे रहे हैं।

तकनीकी टकराव :- अमेरिका-चीन के बीच AI, 5G, सेमीकंडक्टर जैसे क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा |

संसाधनों की राजनीति :- ऊर्जा, जल, और खनिज संसाधनों की वैश्विक होड़।

वैश्विक दक्षिण का उदय :- अफ्रीका, दक्षिण एशिया, लैटिन अमेरिका जैसे क्षेत्र अब महाशक्तियों के लिए सामरिक महत्व के केंद्र बन रहे हैं।

4.भारत के लिए रणनीतिक अवसर और चुनौतियाँ - अवसर: डिजिटल अर्थव्यवस्था, तकनीकी नेतृत्व, वैश्विक मंचों पर भूमिका।

चुनौतियाँ: चीन-पाकिस्तान गठजोड़, सीमाई तनाव, ऊर्जा निर्भरता, आंतरिक सामाजिक-राजनीतिक स्थिरता।

निष्कर्ष :- विश्व राजनीति एक स्पष्ट बहुध्रुवीय दिशा में बढ़ रही है। जहाँ एक ओर यह शक्ति संतुलन को बहुपक्षीयता की ओर ले जा सकता है, वहीं दूसरी ओर अनिश्चितता और संघर्ष की संभावनाएँ भी बढ़ा सकता है। भारत जैसे देशों के लिए यह समय रणनीतिक संतुलन, आत्मनिर्भरता और वैश्विक साझेदारी के माध्यम से अपनी स्थिति को सशक्त बनाने का है।

संदर्भ सूची (References):

1. Waltz, Kenneth. Theory of International Politics. McGraw-Hill, 1979.
2. Kissinger, Henry. On China. Penguin Books, 2011.
3. Mearsheimer, John. “Why the Ukraine Crisis Is the West’s Fault.” Foreign Affairs, 2014.

4. Nye, Joseph S. The Future of Power. PublicAffairs, 2011.
5. Raja Mohan, C. Crossing the Rubicon: The Shaping of India's New Foreign Policy. Palgrave Macmillan, 2004
6. Cohen, Stephen Philip. India: Emerging Power. Brookings Institution Press, 2001.
7. Zakaria, Fareed. The Post-American World. W. W. Norton & Company, 2008.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 75-76
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थानी लोक गीत : एक सांस्कृतिक धरोहर

रविन्द, शोधकर्ता,
डॉ. मरजीना, शोध निर्देशिका व विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग),
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, गांव बुझावड, तहसील–लूणी, जोधपुर

लोक शब्द का अर्थ है– सुनने वाला. लोक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की लोक दर्शने धातु में 'धञ्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है. लोक दर्शने धातु का अर्थ है 'देखना'. लोक शब्द का प्रयोग भारतीय साहित्य में बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है. लोक शब्द के कुछ और अर्थ भी है। लोक शब्द का अर्थ 'जन–पद' या 'ग्राम्य' नहीं है। लोक शब्द का अर्थ है नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। लोक शब्द का अर्थ है मनुष्य समाज का वह वर्ग जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है।

लोकगीतों में मानव की सभी प्रकार की भावनाओं, हर्ष, उल्लास शोक–विषाद, प्रेम–ईर्ष्या, भय आशंका, घृणा, ग्लानि, आश्चर्य, विस्मय भक्ति, निवृत्ति आदि का सरल रूपों में दर्शन होता है। लोकगीतों में किसी भी प्रकार का कोई बन्धन नहीं होता। ये अपनी आप में उन्मुक्त होते हैं. ये लोकगीत व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक जुड़े रहते है। इस प्रकार इन लोकगीतों में व्यक्ति के लोक संस्कृति के सारत्न और व्यापक भावों के स्वच्छ एवं स्वाभाविक दर्शन देखने को मिलते है। किसी देश या क्षेत्र के लोगों के बीच उत्पन्न होने वाला गीत, जो मौखिक परंपरा द्वारा एक गायक या पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचता है, जो प्रायः कई संस्करणों में विद्यमान रहता है, तथा जो सामान्यतः सरल, लयबद्ध राग और छंदबद्ध, वर्णनात्मक पद्य द्वारा चिह्नित होता है।

लोकगीत एक विशेष समूह के लोगों , संस्कृति या उपसंस्कृति द्वारा साझा की जाने वाली अभिव्यंजक संस्कृति का समूह है। इसमें मौखिक परंपराएँ जैसे कि कहानियाँ , मिथक , किंवदंतियाँ , कहावतें , कविताएँ , चुटकुले और अन्य मौखिक परंपराएँ शामिल हैं। इसमें भौतिक संस्कृति भी शामिल है, जैसे कि समूह के लिए सामान्य पारंपरिक भवन शैलियाँ। लोकगीत हमारे सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अंग है। इन गीतों का उद्देश्य केवल हमारा मनोरंजन करना ही नहीं, अपितु हमें हमारे समाज के अनेक पहलुओं की जानकारी देना भी है। हिमाचल में प्रचलित विभिन्न प्रकार के लोकगीतों में यहां के सामाजिक–आर्थिक व सांस्कृतिक रूप के साक्षात दर्शन होते हैं।

लोकगीत आम जनता के लोकप्रिय गीत होते हैं। इस गीत की भाषा आम बोलचाल की भाषा होती है परिणामस्वरूप यह गीत घर घर की लाज लिए हुए है। इन गीतों में विविध वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता है जैसे बासुरी करतल मंजीरा और ढोल आदि । लोकगीतों में ताजगी होती है ये गीत गाँव के लोगों द्वारा ही लिखे जाते हैं।

शौर्य, श्रृंगार और साहित्य की त्रिवेणी संगम राजस्थान के गरिमामयी इतिहास की उपज है। ऐतिहासिक परम्पराओं से प्रदीप्त, जौहर की ज्वालाओं से उत्पत तथा बलिदान और प्राणोत्सर्ग की आकांक्षाओं से उत्प्रेरित होने के कारण भारत के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करने में सक्षम रहा है।'' इसलिए राजस्थान का इतिहास हमारी अद्भुत गौरवमयी पृष्ठभूमि है। यहाँ विविधता के साथ निरन्तरता भी है।

यह प्रस्तुति राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और लोक गीतों के महत्व पर प्रकाश डालती है। इसमें, हम इन गीतों की विशेषताओं, विषय–वस्तु, और आधुनिक प्रभाव पर चर्चा करेंगे। राजस्थानी लोक गीतों की विशेषताएँ –

मधुर संगीत – इन गीतों का संगीत मधुर और लयबद्ध होता है, जो सुनने वालों को मोहित कर लेता है।

भाषा सौंदर्य – राजस्थानी भाषा का सौंदर्य इन गीतों में झलकता है।

वाद्य यंत्र – ढोलक, हारमोनियम, सारंगी जैसे परंपरागत वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

सांस्कृतिक मूल्य – ये गीत सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिबिंब हैं।

प्रमुख राजस्थानी लोक गीत :–

पनिहारी गीत – जल भरने जाती महिलाओं के गीत, जो उनके जीवन और संघर्ष को दर्शाते हैं।

ढोला मारू – प्रेम और विरह की कहानी, जो प्रेमियों के बीच की भावनाओं को व्यक्त करती है।केसरिया बालम – प्रदेश से आए पति का स्वागत गीत, जो प्रेम और सम्मान को दर्शाता है।

विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीत :–

विवाह गीत

जन्म गीत

त्योहार गीत

ऋतु गीत

संरक्षण और संवर्धन :–

सरकारी प्रयास –सरकार लोक कला को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएँ चला रही है।

युवा प्रेरणा – युवा पीढ़ी को लोक गीतों के प्रति प्रेरित करना आवश्यक है।

लोक मंच – लोक कला मंचों का आयोजन करके प्रतिभाओं को अवसर देना चाहिए।

आधुनिक प्रभाव :–

फिल्मों में – फिल्मों में लोक गीतों का प्रयोग बढ़ रहा है।

फ्यूजन संगीत – फ्यूजन संगीत में राजस्थानी लोक तत्वों का समावेश हो रहा है।

सोशल मीडिया – सोशल मीडिया पर लोक गीतों की लोकप्रियता बढ़ रही है।

निष्कर्ष / महत्व :– लोक गीत राजस्थान की पहचान और गौरव है। सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखना है। आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा स्रोत है।

सन्दर्भ ग्रथ :–

1. डॉ० रामप्रसाद व्यास, आधुनिक राजस्थान का वृहत् इतिहास
2. डॉ0 हरिमोहन सक्सेना, राजस्थान अध्ययन भाग
3. डी० आर० आहूजा, राजस्थान, लोक संस्कृति और साहित्य
4. डॉ० हुकमचन्द जैन, डॉ० नारायण लाल माली, राजस्थान का इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य परम्परा एवं विरासत
5. www.google.com
6. www.abstract.com

मोबाइल न0 9571092918 मेल– ravisa202202@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 77-79
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विश्व की प्राचीन जीवित भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का आधार ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता'

कु0 स्वीटी यादव, शोध छात्रा,
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय संस्कृति, राष्ट्र और जाति की आत्मा है और आत्मिक उत्थान का चिह्न है। आत्मिक उत्कर्ष की सीढ़ी एवं आत्म–दर्शन का मार्ग है। भारतीय संस्कृति जीवन–दृष्टि है। इस संस्कृति को प्राचीन जीवित संस्कृति एवं सभ्यता के रूप में सम्पूर्ण विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। हमारी संस्कृति के साहित्य रूप में अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हैं – जिनमें चार वेद, षड्–वेदांग, महाभारत, रामायण और महाभारत का ही एक विशेष अंग – श्रीमद्भगवद्गीता जोकि अपने आप में एक ऐसा ग्रन्थ है। जिसके माध्यम से हम जीवन जीने के समस्त उपाय एवं भगवत्प्राप्ति का श्रेष्ठ मार्ग प्राप्त करते हैं –

सर्वोपनिषदों गावों द्रोग्धा गोपालनन्दनः
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुगंध गीताम्रतं महत्।।

श्रीमद्भगवद्गीता शब्द तीन शब्दों से मिलकर बना है – श्रीमद् का अर्थ है – सुन्दर या शानदार, भगवद् का अर्थ – दैवीय अथवा भगवान का तथा गीता का अर्थ है – देवों का सुन्दर गीत। साक्षात् भगवान के मुखार बिन्दु से प्रवाहित होने के कारण कहा गया है कि –

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

भारत के योगशील जीवन, संयमित आहार–विहार बौद्धिक ऋचाओं और गीता के उपदेशों को भौतिक विकास के शिखर पर पहुँचे देशों के लोग भी अब ग्रहण करने लगे हैं। गीता विश्व मानवता की पीड़ा को दूर करने के लिए, भारतीय एकात्म भाव तथा अध्यात्म की गंगा प्रवाहित करने वाला ग्रन्थ है। विश्व मानवता को संकटों व दुःखों से निवृत्ति प्रदान करने में गीता के वैचारिक भाव व इसकी शिक्षा वर्तमान काल में और भी अधिक प्रासंगिक है।

आज प्रायः जब लोग जात–पात, ऊँच–नीच क्षेत्रवाद आदि भावों से लिप्त हैं, तो गीता इस विचार के विपरीत समत्व–एकत्व की अनुभूति कराने वाले दर्शन को प्रस्तुत करती है। गीता की महत्ता को बताते हुए स्वयं भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि –

गीता श्रेयद्धहं तिष्ठामि गीता में चोत्रम ग्रहम।
गीता ज्ञानापुपाश्रित्यं त्रील्लोकान् पालायाम्यहम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित – सांख्ययोग का निरूपण

शक्तिशाली योद्धा अर्जुन युद्धाभिमुख होकर विपक्षी सेनाओं में अपने निकट सम्बन्धियों को युद्ध में अपना–अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए उद्यत देखता है। शोक तथा करूणा से अभिभूत होकर अपनी शक्ति खो देता है, उसका मन मोहग्रस्त हो जाता है और युद्ध करने के अपने संकल्प को त्याग देता है। तब भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन का युद्ध में नेतृत्व करते हुए सांख्ययोग का ज्ञान प्रदान करते हुए कहते हैं कि –

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः।।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग

इस भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति को किसी–न–किसी प्रकार के कर्म में प्रवृत्त होना पड़ता है, किन्तु ये ही कर्म उसे इस जगत से बाँधते या मुक्त कराते हैं। निष्काम भाव से परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए कर्म करने से मनुष्य कर्म के नियम से छूट सकता है और आत्मा तथा परमेश्वर विषयक दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है –

न कर्मणामनारम्भा भैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित ध्यानयोग

अष्टांगयोग मन तथा इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है और ध्यान को परमात्मा पर केन्द्रित करता है। इस विधि की परिणिति समाधि में होती है। अतः मनुष्य को ध्यानयोग अवश्य ही करना चाहिए। यही भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रतीक ग्रन्थ–गीता का परम संदेश भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा दिया गया है –

स निश्चयेन योक्तत्वो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।
संकल्प प्रभवान्कामांस्त्य वत्वां सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित अक्षरब्रह्मयोग

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि यदि भक्तिपूर्वक मनुष्य मेरा आजीवन स्मरण करता है और विशेषतया मृत्यु के समय ऐसा करने से उसे परमधाम की प्राप्ति अवश्य ही होती है –

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित भक्तियोग

भगवान के शुद्ध प्रेम को प्राप्त करने का सबसे सुगम एवं सर्वोच्च साधन भक्ति योग है। इस परम पथ का अनुसरण करने वालों में दिव्य गुण उत्पन्न होते हैं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जो लोग अपनी इन्द्रियों को वश में करके तथा सभी के प्रति समभाव रखकर परम् सत्य की निराकार कल्पना के अन्तर्गत उस अव्यक्त की पूरी तरह से पूजा करते हैं, जो इन्द्रियों की अनुभूति के परे है, सर्वव्यापी है, अकल्पनीय है, अपर्वतनीय है, अचल एवं ध्रुव है। वे समस्त लोगों के कल्याण में संलग्न रहकर अन्ततः मुझे प्राप्त करते हैं –

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमंचलं ध्रुवम्।।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।

निष्कर्षतः इस कलियुग में सामान्य जनता कृष्ण की बहिरंगा शक्ति द्वारा मोहित है और उसे यह भ्रान्ति है कि भौतिक सुविधाओं की प्रगति से हर व्यक्ति सुखी बन सकेगा। उसे इसका ज्ञान नहीं है कि भौतिक या बहिरंगा प्रकृति अत्यन्त प्रबल है, क्योंकि हर प्राणी प्रकृति के कठोर नियमों द्वारा बुरी तरह से जकड़ा हुआ है। सौभाग्यवश जीव भगवान का अंश–रूप है। अतएव उसका सहज कार्य है – भगवान की सेवा करना। मोहवश मनुष्य विभिन्न प्रकारों से अपनी इन्द्रियतृप्ति करके सुखी बनना चाहता है, किन्तु इससे वह कभी–भी सुखी नहीं हो सकता। अपनी भौतिक इन्द्रियों को तुष्ट करने के बजाय उसे भगवान की इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। यही जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है, अतः मनुष्य को भगवद्गीता के इस परम संदेश को समझना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन – डॉ0 शिवस्वरूप सहाय।
2. श्रीमद्भगवद्गीता (यथारूप) संस्थापकाचार्य – कृष्णक्रपामूर्ति श्री श्रीमद् ए0सी0 भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद – भूमिका पृ0सं0–26
3. वाराहपुराण–पुराण
4. श्रीमद्भगवद्गीता (यथारूप) पृ0सं0–66

5. वही पृ0सं0–113
6. वही पृ0सं0–219
7. वही पृ0सं0–275
8. वही पृ0सं0–401

ई–मेल – yadavsweety87678@gmail.com
मो0नं0 – 7983916029

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 80-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पितृसत्तात्मक अवधारणा और किन्नर समाज ('मैं पायल' उपन्यास के संदर्भ में)

आशिमा गोयल, पीएच.डी. शोधार्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली -110007

सदियों से समाज में स्वयं को मुख्यधारा की श्रेणी में लाने के लिए संघर्षरत किन्नर समाज का वजूद युगों-युगों में सर्वत्र फैला हुआ है। ये वे समुदाय है जिन्हें एक लघु शारिरिक अक्षमता के चलते हाशिये की श्रेणी में ढकेल दिया गया हैं। समाज, परिवार से बहिष्कृत यह समुदाय नारकीय जीवन जीने पर बाध्य है। समाज के लोगों द्वारा इन्हें किन्नर, हिजड़ा, छक्का, ख्वाजा सरा, पवैया आदि उपनामों से सम्बोधित किया जाता है।

'किन्नर' शब्द ऐसे समाज के लिए प्रयोग में लाया जाता है जो लैंगिक रूप से न तो पूर्ण रूप से नर होते हैं और न ही मादा । अपितु इनमें स्त्री और पुरुष दोनों के गुण मौजूद होते है। 'किन्नर समाज' हाशियों की श्रेणी का एक ऐसा समाज है जो समाज में स्वयं को इज्जतदार कहलाने वाले लोगों की घृणित मानसिकता का शिकार है। ये वे समाज है जो ट्रेनों, बसों, ट्रैफिक सिग्नल है आदि जगहों पर पैसे मांगकर अपना जीवनयापन करते है, कारण समाज की घृणित सोच, जो उन्हें समाज की मुख्यधारा से जुड़ने की इज़ाजत नहीं देती हैं। किन्नर बच्चा किसी को भी प्रिय नहीं होता है, जब वह किसी परिवार में जन्म लेता है तो उस परिवार में हर्ष उल्लास की जगह मातम जैसा परिवेश बिखेर देता है, या यूँ कहा जाए कि किन्नरों के नारकीय जीवन का आरम्भ उसके परिवार से ही होता है। परिवार का सदस्य होने के नाते उससे अपरिचित जैसा आचरण किया जाता है, उसके साथ बैठने-उठने एवं साथ खाना-खाने में भी हद से ज्यादा सोच-विचार किया जाता है, हेतु क्योंकि वह हमसे पृथक है। परिवार के सदस्यों द्वारा ही उसके लिए ऐसा दम घोंटू परिवेश तैयार कर दिया जाता है कि उसके पास घर से निर्वासित होने के अलावा कोई अन्य मार्ग नहीं बचता हैं और यह परिवेश परिवार में सबसे ज्यादा पिता के द्वारा ही बनाया जाता है क्योंकि घर में एक किन्नर बच्चे का जन्म लेना पिता के लिए उसकी मर्दांगनी पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है, और यहीं से ही, उस किन्नर बच्चे या कहाँ जाए किन्नर समाज के प्रति पितृसत्तात्मक अवधारणा का जन्म होता है।

लोगों के द्वारा पितृसत्तात्मक अवधारणा और शक्ति सत्ता के रूप में यदि हम देखे तो पाते हैं कि 'किन्नर समाज' को हर तरह से वंचित रखना पितृसत्ता की साजिश थी, जो आधे-अधूरे लोगों को मुख्यधारा के समाज के लिए कलंक मानती थी। इसके दो कारण थे- एक तो यह कि जिस भी पुरुष के यहाँ 'किन्नर संतान' पैदा होगी, उसकी समाज में कोई इज्ज़त नहीं या उसके 'पुरुषत्व' पर सवाल उठेगा और दूसरी यह कि हमारा समाज किन्नर समुदाय को 'यौनिकता' की नजर से देखने का आदी रहा है। अजीब विडंबना है कि आधी-अधूरी संतान को पता भी नहीं होता कि उसका गुनाह क्या था, और उसे हर रिश्ते, हर अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। जो लोग प्रजनन प्रक्रिया में भागीदार नहीं हो सकते, हम उन्हें 'यौनिकता' और 'मनोरंजन' के नज़रिए से 'जज' करने के आदी है सत्ता और शक्ति से वंचित रखना पितृसत्ता की दूसरी साजिश थी किन्नरों के खिलाफ जो कुछ भारतीय समाज व्यवस्था से बाकी रह गया था, उसे पूरा कर दिया 1871 की क्रिमिनल ट्रिब्यूनल एक्ट ने, जिसके तहत अंग्रेजों ने किन्नर समुदाय को 'जरायम पेशा' जनजातियों में शामिल कर दिया। एक ऐसा समुदाय, जिसका उदाहरण दुनिया के हर इतिहास में मिलता है, हर मिथकीय कथा में मिलता है, हर समाज में मिलता है, वह आपराधिक दायरे में आने लगा। सामाजिक अधिकार, सम्पत्ति अधिकार, रिश्ते-नाते, सार्वजनिक जीवन की सभी स्वतंत्रताएँ छीन कर हर चीज़ से बेदखल कर दिए जाने के पीछे की साजिश यही थी कि जो लोग उत्पादन एवं सृजन प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बन सकते, उनको समाज के बीच रहने का कोई हक नहीं है। आजादी के बाद 1951 ई. में किन्नर समुदाय पर लगे सभी तरह के प्रतिबंध हटा लिए गए। लेकिन सार्वजनिक में उनकी उपस्थिति सहज नहीं थी, डर का वातावरण महज अभी भी वैसा ही था।

'मैं पायल' महेन्द्र भीष्म द्वारा रचित 'जीवनीपरक' उपन्यास है। जिसमें किन्नर पायल के जीवन संघर्ष में आए निम्न पड़ावों को रेखांकित किया गया है। पितृसत्तात्मक की अवधारणा ही इस उपन्यास का चरमोत्कर्ष बनती है। इस उपन्यास का प्रथम बिन्दु ही 'पितृ' और उसकी 'इगो' को चोट करता हुआ दिखाई देता है। पायल अपने परिवार की पाँचवी संतान थी। पुत्र की लालसा ने पिता को इस कदर अंधा कर दिया था कि चार पुत्रियों के बाद भी और एक पुत्र होने के बाद भी उसकी पुत्र लालसा खत्म नहीं हुई। इस उपन्यास में हम पायल उर्फ जुगनी के जीवन के कई पड़ावों को देखेंगे। 'मैं पायल' उपन्यास सामाजिक अर्थव्यवस्था, सत्ता और शक्ति का विकेन्द्रीकरण जहाँ पुरुषत्व ही प्रधान होता है, पुरुष का वर्चस्व परिवार में मुख्य होता है, ऐसे पहलुओं को उजागर करता है। 'मैं पायल' उपन्यास का प्रथम पड़ाव इसी पहलू से सम्बंधित है। जब पायल उर्फ जुगनी के पिता को पता चलता है कि उसकी पाँचवी संतान सामान्य नहीं है, वह एक किन्नर है, बस वही से ही पिता और समाज के द्वारा उसका तिरस्कार शुरु हो जाता हैं। उसके पिता उसे पुत्र बनने के लिए विवश करते है, उसे लड़के के कपड़े पहनाते है, उसका नाम जुगनी से बदलकर जुगनु रख देते हैं और यदि उसके द्वारा ऐसा नहीं किया जाता है तो उसको मारते है, पीटते है, भूख से विचलित रखते

हैं यहाँ तक की कई दफा कालकोठरी में भी बंद कर देते हैं। पुरुषत्व रूपी रूप उन्हें इस कदर अंधा कर देता है कि वह अपनी पुत्री का दुख दर्द नहीं समझ पाते हैं कि छोटी सी बच्ची के मन में कितने अंतर्द्वन्द्र विचार उत्पन्न हो रहे होगे और उस बच्ची का मन अन्दर से कितना कचोट रहा होगा, मगर उनके लिए समाज में उनकी मान-मर्यादा ही सर्वपरि है। जुगनी के हिस्से का सच देखें तो हम पाते हैं कि उसे वह सजा मिल रही थी, जो गुनाह उसने किया ही नहीं था "मैं ही तो उनका निशाना था कुछ कलंकिनी / क्षत्रियों के खानदान में हिजड़ा पैदा होने का जैसा सारा श्रेय मेरा ही हो..... मैं हिजड़ा हूँ... ठीक है, पर इसमें मेरा क्या कुसूर? हिजड़ा होने में मेरी अम्मा बल्कि पिताजी का भी तो कोई दोष नहीं, फिर मेरे साथ ही ऐसा दुर्व्यवहार क्यों? लोग अपने विकलांग बच्चे को पाल लेते है, पर एक हिजड़ा बच्चे को नहीं क्योंकि हिजड़ा बच्चा होना वह अपनी आन-बान-शान के खिलाफ समझते है।" (मैं पायल, उपन्यास, पृष्ठ 26)

जब पायल उर्फ जुगनी अपने आप को पुत्र रूपी जीवन के साथ स्वीकार नहीं कर पाती है तो अन्त में वह अपने घर को छोड़ कर चली जाती हैं, क्योंकि पायल के पिता समाज में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने की जद्दोजहत में इस कदर अंधे हो गए थे कि पायल के पास घर को छोड़ने के अलावा कोई रास्ता नहीं बच पाता है, और यही से उसके जीवन का दूसरा पड़ाव शुरू होता है।

घर छोड़ने के उपरांत वह एक रेलगाड़ी में सवाल हो जाती है लेकिन वहाँ पर भी पुरुषत्व रूप उसका पीछा नहीं छोड़ता है। जैसे-जैसे परेशानियाँ झेलते हुए पायल उर्फ जुगनी कानपुर पहुँचती है, वहाँ पहुँचते ही वह पुरुष रूप धारण कर लेती है। असल में पायल ने ट्रेन में एक व्यक्ति के दुर्व्यवहार तथा रेलवे स्टेशन पर लड़की की वेशभूषा में देखकर सिपाही द्वारा शारीरिक शोषण करने की घटना के बाद लड़के का रूप धारण कर लिया था। लेकिन इन्हीं सब घटना से उसने पहली बार यह जाना कि स्त्रियों का जीवन कितना कठिन है। पितृसत्तात्मक की भोगविलास में लिप्त नज़र किसी को भी नहीं छोड़ती है, फिर चाहे वह स्त्री हो या फिर किन्नर ।

कानपुर पहुँचकर उसकी अनवर से दोस्ती होती है। अनवर और उसके परिवार से मिलने का अनुभव शरणार्थी बस्ती के सच को उजागर करता हैं। शरणार्थी बस्तियों में रहने वाले लोगों का जीवन इतना दयनीय है कि वहाँ के लोग पेट पालने के लिए चोरी, भीख यहाँ तक की देह व्यापार जैसे कार्यों को करने पर भी मजबूर है। भूख दुनिया का सबसे ईमानदार सच है, यह सत्य जुगनी को स्टेशन पर रहने के दौरान वहाँ के बच्चों और बुजुर्गों से पता चलता है। छोटे-छोटे बच्चों का अपहरण करके उनसे भीख मँगवाने का धंधा चलाने वालों के चंगुल में फँसी जुगनी को उसके जैसे बच्चों से मिलने का अवसर मिलता है, जो उसी की तरह अलग-अलग कारणों से घर से भागे होते हैं। भूख, सहानुभूति, आर्थिक स्थितियाँ कई बार लोगों को एक होने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करती हैं। पायल उर्फ जुगनी का जीवन

चाय की दुकान पर काम करने और सिनेमा में प्रोजेक्ट चलाने तक में एक लम्बा दिल-चस्प सफर रहा है। लेकिन वहाँ पर भी समाज के भूखे भेडियों की नज़र से बचने के लिए वह पुरुष वेश में छिपी रहती है, लेकिन फिर भी समाज के इस भूखे पुरुषत्व की नज़रे उस पर से नहीं हटती है। संतोष सिंह के सिनेमा हॉल में प्रोजेक्ट चलाने के कार्य में लगी जुगनी के जीवन को एक नया आयाम मिलता हैं लेकिन पितृसत्तात्मक की नज़र से वह स्वयं को वहाँ बचा नहीं पाती है। वहाँ का चौकीदार प्रमोद उसके साथ बलात्कार करने के मनसूबे हर प्रकार से करता हैं। इतनी समस्याओं को झेलती हुई पायल सिंह उर्फ जुगनी कामयाबी के शिखर को छूती है। कहते हैं, ममता की छाव में वह प्यार होता है, जो दुनिया के हर रिश्ते से अनमोल होता है। पायल की माँ ने कभी उसका साथ नहीं छोड़ा था। पायल भी जो कुछ कमाती थी, अपनी माँ के हाथ रखती थी और कहती थी कि मुझे अपनी बेटी नहीं अपना बेटा समझो माँ।

पायल की जिदंगी में जो अंतिम पड़ाव आया वह सबसे महत्वपूर्ण एवं कष्टकारी था कहते हैं पितृसत्ता केवल पुरुषों के सत्ता और शक्ति के इर्द-गिर्द घुमती है, पर ऐसा नहीं है, पितृसत्ता केवल पुरुषों तक सीमित सत्ता नहीं है, जब एक स्त्री द्वारा दूसरी स्त्री को घात पहुँचाया जाए तो यह भी पितृसत्तात्मक अवधारणा का ही प्रतीक बन जाती हैं। पायल अपने अंतिम पड़ाव में लखनऊ पहुँच जाती हैं जहाँ वह मोना किन्नर और उसके चेलो द्वारा पकड़ी जाती है। वही से जुगनी को यह पता चलता है कि वह पैदाइशी किन्नर अर्थात् बुचरा हैं। मोना किन्नर जुगनी को जबरन अपनी टोली में शामिल करना चाहती थी, उसे नाच-गाना सिखाकर उससे काम करवानी चाहती थी। सारे उपन्यासों में उपन्यासकार द्वारा यह बात कॉमन रखी है कि किन्नर अपनी इस स्थिति को नियति मानकर इस तरह का जीवन जीने के लिए विवश है। लेकिन 'महेन्द्र भीष्म' के 'मैं पायल' उपन्यास और 'चित्रा मुद्गल' का 'पॉस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास की कथावस्तु, सभी उपन्यासों से बिल्कुल विचित्र हैं। 'मैं पायल' उपन्यास की पायल उर्फ जुगनी अपने जीवन को नियति मानकर बाकी किन्नरों की तरह नारकीय जीवन जीने पर मजबूर नहीं थी। मोना किन्नर लगातार उस पर दबाव डालती है कि पायल उनकी टोली में शामिल हो जाए, पर जुगनी लगातार इस बात से इंकार करती हैं। जुगनी को पहली बार किन्नर समुदाय की बस्ती से रूबरू होने का मोका मिलता है जहाँ से बहुत बीभत्स परिस्थितियाँ मिलती हैं। बस्ती के सभी किन्नर एवं मोना किन्नर तक नशे में चूर रहते हैं और देह व्यापार में लिप्त रहते हैं। लेकिन जुगनी ने अपनी जिंदगी में हमेशा संघर्ष को ही अपना सर्वप्रथम कार्य माना है, इसलिए वह इन सब चीज़ों के लिए मना कर देती है। यहाँ तक की एक बार जब पप्पू द्वारा जुगनी की खूब पिटाई की जाती है, तो कोई उसे बचाने की चेष्टा नहीं करता है, सारे साथी भाग जाते हैं। निहायत शर्मनाक है कि एक 'सभ्य मनुष्य' एक 'हिजड़े' को नंगा कर रहा है 'असली हिजड़ा कौन है'? इस तरह परिस्थितियाँ जुगनी को लगातार संघर्ष करने के लिए मजबूर करती हैं, लगातार

भागते रहना उसकी नियति बन गई है। पप्पू से बदला लेने से लेकर, आर्केस्ट्रा में काम करने और स्वरूप रूप से अपनी पहचान बनाने तक का समय बहुत कुछ देखने और समझने लायक बना देता है। अशोक सोनकर के रूप में प्रेम का आगमन जहाँ पायल को भावनात्मक रूप से सुरक्षित महसूस कराता है वहीं कालांतर में अशोक सोनकर का पुरुषवादी अहं और शक करने की आदत उन दोनों के रिश्तों को बहुत जल्द विराम की तरफ भी ले जाता हैं।

कुल मिलाकर जुगनी सभी परिस्थितियों को झेलती आगे बढ़ती है। कभी न झुकने वाली, नारकीय जीवन जीने पर मजबूर न रहने वाली पायल किन्नर उर्फ जुगनी की हमारे समाज में जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है।)

अंतत: ' मैं पायल.....' यातना, संघर्ष और जिजीविषा की अनवरत यात्रा है। एक ओर मनुष्य के अंदरुनी संसार की कश्मकश और आत्मबल, दूसरी और निर्मम दुनियां में जीवन जीने और अपने अस्तित्व की रक्षा, पहचान की स्वीकृति के लिए निरंतर संघर्ष। उपन्यास पाठकों को यथार्थ के उस रूप से परिचय कराता है जो उसके अनुभव के दायरे से, रोज देखते सुनते हुए भी, छूट जाता है। इस संदर्भ में मेरे द्वारा लिखित एक छोटी सी कविता है-

क्यूँ हूँ समाज से अलग,
क्यूँ हूँ उनकी सोच से पृथक।।
क्या कुसूर है मेरा,
क्यूँ नहीं है परिवार मेरा ।।
क्या गलती है मेरी,
क्या हस्ती है मेरी।।
हूँ तो मैं भी समाज का हिस्सा,
फिर क्यूँ बनता हूँ मैं हँसी का किस्सा।।

संदर्भ ग्रंथ-

1. अथ किन्नर-कथा संवाद न दैन्यं न पलायनम्, महेन्द्र भीष्म, पृष्ठ 49
2. गघ कोष
3. 'मैं पायल' उपन्यास, महेन्द्र भीष्म, पृष्ठ 26
4. थर्ड जेण्डर और साहित्य, डॉ. एम फिरोज़ खान

संपर्क : 7503869771

ई-मेल ashimagoelma@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 85-89
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A STUDY OF E-BANKING IN INDIA

Dr. Anju Singla, Associate Professor,
Department of Commerce, Vaish College, Rohtak

ABSTRACT
Increasing competition, changing business environments, globalization and the advancement of information and communication technology are the important factors that have pushed the banking and financial service sector to keep up with the changing technology and evolve. To do so, banks have to incorporate information technology into their systems and day-to-day operations. For example, E-Banking which can be understood as electronic banking, in which all the financial transactions and other services will be made available to customers at a single click via mobile applications or websites. It is commonly known as Internet Banking, Online Banking, and Virtual Banking. With the advent of technology, banking services and other financial services & products are being offered via online means more and more. Today, it is possible to conduct any financial transaction around the clock by just sitting at home with ease. Further, ATMs are made available at nearby locations to ease transactions. Slowly and steadily, plastic money is going to replace the actual paper money in the near future.

KEYWORDS: E-Banking, Information Technology, ATM

INTRODUCTION

The marvelous kinds of innovation in technology have made a paradigm shift in the banking industry. Technology itself created in this world is the greatest invention of human beings. The advent of Internet Banking happened in the early 1990s. The introduction of Internet Banking created a phenomenal shift in the daily operations. E-Banking or you may refer to it as Internet Banking allows any user with a digital device and internet connectivity to use any banking facility remotely from any corner of the world. In this system, banks have to maintain a centralized database that is web-enabled with all its services shown on the Internet in the menu. All the branches are interconnected via satellite links which creates a borderless entity permitting banking operations anytime and from anywhere in the world. To access the online banking facility, users need to register with the institution for the service and set up a security password for customer verification.

E-BANKING

It can be understood as a platform providing a system that enables financial institutions to allow customers or businesses to access their accounts, transact financial transaction or obtain information on financial products and services through the internet anytime with ease. The E-banking is still in the transitional phase and yet it has lot of potential to evolve and achieve new heights. There is still a lot to develop in the case of internet banking and set new examples. It has surpassed the limits imposed by banking operations through branches and reached new limits extending operations to foreign.

EVOLUTION OF E-BANKING

E-banking came into being in the UK and the USA in the 1920s. It became quite popular in the 1960s via electronic funds transfers and credit cards. Moving forward, web-based banking also came into existence in Europe and the USA in the beginning of the 1980s.

E-BANKING IN INDIA

In India, e-banking is of fairly recent origin. In the current scenario with time, the Indian banks have also started moving towards E-banking. Most of the big Indian banks like SBI, BOI, etc. have started providing e-banking services. Recently, the traditional banking model has been replaced by E-banking. The credit for the launch of E-banking services in India goes to ICICI Bank in 1996. After that in 1999, Citibank and HDFC bank to contribute in this revolution came up with internet banking services next. There has been a clear need to develop a better understanding of customer expectations i.e., how consumers evaluate these services and develop loyalty for long-term relations. Service quality is one of the main factors determining the success/ failure of electronic commerce. (Santosh, 2003).

The Government of India along with Reserve of India takes several initiatives to contributes towards the development of e-banking in India. The Government of India to ensure proper development of environment, enacted the Information Technology Act, 2000 with effect from October 17, 2000 which provided legal recognition to electronic transactions and other means of electronic commerce. The Reserve Bank is monitoring and reviewing the legal and other requirements of e-banking continuously to ensure that e-banking is developed on sound lines and e-banking-related challenges would be dealt with and do not pose a threat to financial stability.

With time, the Indian banks have started offering variety of services via electronic means to their customers which are as follows:

- Automated Teller Machines (ATMs)
- Internet Banking
- Mobile Banking
- Phone Banking
- Telebanking
- Electronic clearing Services
- Electronic Clearing Cards
- Smart Cards
- Door Step Banking
- Electronic Fund Transfer

The three broad facilities that e-banking offers are:

- **Convenience**- This system allows the user to access the banking services at their convenience in the comfort of their home.
- **No more Queue**s- With the introduction of e-banking facilities, there are no more a requirement to wait in long queues.
- **24x7 service**- Nowadays, banks are providing services around the clock whenever desired 24x7 throughout the year.

OBJECTIVES OF THE STUDY

- To identity various services/products introduced by Indian banks through E-banking.
- To study the challenges faced by the Indian banks in adoption of e-banking and make recommendations to tackle these challenges.
- To analyze the users and non-users of e-banking facility on the basis of education, gender and income.

RESEARCH METHODOLOGY

The study is descriptive in nature. Some primary data has been collected through questionnaire and conceptual information regarding e-banking has been collected from books, journals,

research papers and related web-sites. The sample size used in this study is 100. The population from which we get the targeted sample respondents are the bank customers whose bank provides e-banking services. The study covers bank customers from Rohtak city. Convenience sampling technique is used in the study. A survey on 100 respondents of different age groups with different educational qualifications and income levels was conducted and an attempt was made to discover the inter-relations between the utilization of E-banking services and respondents (with different age, educational qualifications and income levels). The study divided the bank customers into two parts: the customers who use e-banking services and who doesn't use it.

Table: Respondents profile of e-banking users and non-users

	Internet banking users N=60	Internet banking non-users N=40	Total N=100
Undergraduate	10	20	30
Graduate	30	10	40
Postgraduate	20	10	30
Male	40	20	60
Female	20	20	40
Income above 3 lakhs/year	50	20	70
Income below 3 lakhs/year	10	20	30

Results of the study:

1. From the selected sample of 100 respondents, it was found that 60% use e-banking services and 40% don't use e-banking services.
2. Education plays an important role in improving the usage of e-banking. The result reveals that more educated people use more e-banking services as point out in table. 50% users of e-banking are graduates and 33.33% users are post graduate; only 16.67% users are under graduate. This becomes important in a country where the level of education is not very high.
3. Also, gender plays a significant role in the utilization of e-banking. The study reveals that males are more e-banking users as compared to females. Out of 60 samples, 40 users (67%) are male and 20 users (33%) are female utilize the e-banking facilities.
4. Similarly, the study also reveals that people of higher income group are more e-banking users in comparison to those have low income.
5. This study also revealed that e-banking non user respondents are happy with the manual banking operations and non- users of e-banking prefer manual banking due to high level of cyber crimes like phishing, hacking etc. Security forms a major concern for not using e-banking facility.

CHALLENGES TO E-BANKING

E-banking is facing following challenges in Indian banking industry:

- Infrastructural barriers are one of the challenges for the implementation and development of e-banking in India as there is lack of proper infrastructure for the installation of e-delivery channels. Software available in the country is not suitable and hardware (PC, ATM etc.) available is also not sufficient in the country.
- Knowledge barriers are the next challenge for the implementation and development of e-banking in India. Less awareness and familiarity regarding new technologies and their benefits, illiteracy, low levels of computer literacy and limited trained

human resources among bank staff and customers are important challenges for the development of e-banking in India.

- Legal and security issues are next challenge for the implementation and development of e-banking in India. Security being the biggest challenge for the e-banking schemes. Despite the host of sophisticated encryption software is designed to protect customer accounts, there is always a scope of hacking by smart elements in the cyber world. Individuals attempting to hack or phish the systems, introduce malware and other unauthorized activity are not uncommon on the internet. Lack and limitation of regulation of law, increased potential for fraud, denial of e-document in courts and lack of strong trust environment are most important. Lack of security measures and customer trust creates an unhealthy environment for e-banking development.
- Social and cultural barriers are the next challenge for the implementation and development of e-banking in India. In countries like India, physical visits to shops and banks are a social activity. In-person interaction with sellers and bankers is an important part of the shopping and business experience. Illiteracy and lack of English language knowledge is a big barrier for e-banking. Tendency of people to hold cash component in India is also a barrier for e-banking development.
- Economic factors are one of the challenges for implementation and development of e-banking in India. Need for heavy investment regarding new infrastructures for e-banking facilities and low level of average income per person and therefore low ability to achieve communication equipment in India is a barrier to e-banking development.

RECOMMENDATIONS

- Banks should create awareness among people about e-banking products and services. Customers should be made literate about the use of e-banking products and services.
- Special arrangements are required to ensure complete security of customer funds. Technical defaults should be dealt with by well trained and expert technicians in the field of computers on a timely basis, so that data loss can be minimized & avoided.
- Employees of banks should be given special training for the use of e-banking so that they can further encourage customers to use the same.
- The Government of India is required to make huge investments in building technology infrastructure to contribute the development of E-banking in India.
- Seminars and workshops should be organized on the healthy usage of e-banking.
- Framing and utilizing proper e-legislations.

CONCLUSION

In India, e-banking is in a progressive stage. No doubt Indian banks are making sincere efforts for the adoption of advanced technology and installation of e-delivery channels and efforts to popularize the e-banking services and products. Today's generation has started to see the convenience & benefits of e-banking and they are moving towards Internet banking on complete basis. The banks should provide more facilities and convenience to the customers. Banks should take all steps and measures to make e-banking transactions safer and secure for the customers. In years to come, e-banking will be accepted on a large scale with most of the people preferring Internet banking over physical interactions unless and until required.

REFERENCES

- Dev, S.M. "Financial Inclusion: Issues and Challenges", Economies and political weekly.
- Gupta V, "Risks of E-Banking in India" the ICFAI university press, 2004.

- Uppal R.K. "E-Banking Channels in Banks- A Fresh Outlook", Researchers World Journal of Arts Science and Commerce, Volume II, Number 1, January 2011, pp. 180-191.

WEBSITES

http://www.bankingnetindia.com/banking/boverview.htm
http://en.wikipedia.org/wiki/commercial_bank

anjusingla20@gmail.com
House No. 773/23, D.L.F. Colony
Rohtak (Haryana)
124001
Mobile No. 9416836181

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 90-93
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य मैं कबीर के दोहों का योगदान

डॉक्टर वैशाली सिंह, हिन्दी संकाय
B 29 A top fioor Rameshwar nagar main road MCD flates
Ajadpur New Delhi 110033

सारांश:

कबीर एक महान संत, कवि और समाज सुधारक थे जिनकी रचनाएँ आज भी हमारे समाज में प्रासंगिक हैं। उनके दोहे भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और सामाजिक भेदभाव के खिलाफ एक सशक्त संदेश देते हैं। इस शोध पत्र में कबीर के दोहों की संरचना, उनके दर्शन, उनके माध्यम से समाज में किए गए सुधारों और उनके धार्मिक दृष्टिकोण की चर्चा की जाएगी। इस शोध में कबीर के दोहों के माध्यम से उनकी सोच और भारतीय समाज पर उनके योगदान का विश्लेषण किया जाएगा।

परिचय:

कबीर (1440-1518) संत भक्ति आंदोलन के महत्वपूर्ण कवि थे। वे एक ऐसे समय में जी रहे थे जब भारतीय समाज में धार्मिक उथल-पुथल और भयंकर सामाजिक भेदभाव था। वे न तो हिंदू थे, न ही मुस्लिम, बल्कि एक ऐसे संत थे जिन्होंने धार्मिक संप्रदायों के बीच के भेद को नकारा और सच्ची भक्ति का संदेश दिया। उनके दोहे सरल भाषा में जीवन के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करते हैं और समाज को जागरूक करने का कार्य करते हैं।

कबीर के दोहे भारतीय समाज में व्याप्त पाखंड, अंधविश्वास, कुरीतियों और धार्मिक आडंबरों के खिलाफ प्रखर आलोचना करते हुए सच्चे प्रेम और एकता का संदेश देते हैं। उनके विचार आज भी लोगों को जीवन के सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं।

कबीर के दोहे:

कबीर के दोहे, उनके सरल और गहरे अर्थ के कारण बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से न केवल धार्मिक, बल्कि सामाजिक और नैतिक संदेश भी दिए। उनके दोहे समाज में फैली अंधविश्वास, सामाजिक असमानता, और धार्मिक आडम्बरों के खिलाफ थे। कबीर का उद्देश्य लोगों को सच्चाई का एहसास दिलाना था और उन्हें जीवन के असली उद्देश्य की ओर अग्रसर करना था।

कबीर के प्रमुख दोहे और उनके अर्थ:

1. “बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।

जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥"

इस दोहे में कबीर आत्मावलोकन की आवश्यकता की बात कर रहे हैं। उनका कहना है कि हमें हमेशा दूसरों में बुराई नहीं ढूँढनी चाहिए, बल्कि अपने भीतर के दोषों को पहचानने की जरूरत है। यह दोहा आत्म-संवेदनशीलता और आत्म-निर्माण की शिक्षा देता है।

2. "जाति ना पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥"

कबीर इस दोहे में जातिवाद के खिलाफ हैं। उनका कहना है कि एक व्यक्ति की जाति नहीं, बल्कि उसका ज्ञान और कर्म अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। तलवार का मोल उसके धार से है, न कि उसके आवरण से। इसी तरह, व्यक्ति का मूल्य उसके आंतरिक गुणों से होता है, न कि बाहरी रूप से।

3. "माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का रोय।
करका मनका डारिए, मन का मनका होय॥"

कबीर इस दोहे में बताते हैं कि अगर हम केवल बाहरी पूजा या धार्मिक क्रियाओं में ही लीन रहते हैं, तो वह हमारी आत्मा के शुद्धिकरण के लिए पर्याप्त नहीं हैं। सच्ची साधना तो मन के भीतर होनी चाहिए। माला फेरने से कुछ नहीं होता जब तक मन में शांति और सच्चाई न हो।

4. "हंस वाहे मुख में हंसी, दिल में दरिया भारी।
वह काहे को दरिया, कर लाहे में कागा॥"

इस दोहे में कबीर यह सिखाते हैं कि जो दिखावा करता है, वह सच्चा नहीं होता। इस उदाहरण में हंसा (हंस) के बारे में बताया गया है जो बहार से हंसी हंसता है, लेकिन दिल में एक दरिया छिपा है। इस प्रकार की अवस्था को नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कबीर के दोहे: विशेषताएँ और काव्यशैली

कबीर के दोहे उनकी कविता का एक महत्वपूर्ण रूप हैं। इन दोहों में गहरी आध्यात्मिकता, सामाजिक संदेश और सरल भाषा का अद्भुत मिश्रण देखने को मिलता है। कबीर के दोहे दो पंक्तियों में जीवन के गहरे सत्य को उद्घाटित करते हैं। उनका काव्य गद्यात्मक नहीं बल्कि उच्चतम विचारशीलता और बोध से भरपूर होता है। उनके दोहे प्रायः प्रतीकात्मक और रूपक होते हैं, जिनमें जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझाने की कोशिश की जाती है।

कबीर का जीवन और ऐतिहासिक संदर्भ:

कबीर का जन्म वाराणसी में हुआ था, और वे एक मुस्लिम परिवार से थे। उनका जीवन और उनके विचार एक अमिट छाप छोड़ते हैं, जो धार्मिक विभाजन और जातिवाद से परे थे। कबीर का मानना था कि ईश्वर एक है और कोई भी उसे अपने दिल से पूज सकता है। वे न तो हिन्दू धर्म के पंथी थे, न ही मुस्लिम। उनकी कविता और दर्शन में वे निराकार परमात्मा की उपासना की बात करते हैं।

कबीर का समय भारत में धार्मिक और सामाजिक संघर्षों से भरा हुआ था। हिंदू धर्म में जातिवाद और मुसलमानों के भीतर पंथों की संख्या बढ़ रही थी। इस समय कबीर ने अपनी कविता के माध्यम से समाज में सुधार की आवश्यकता महसूस की और लोगों को धार्मिक भेदभाव से ऊपर उठकर एकता की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

कबीर के दोहे और उनके विषय:

कबीर के दोहे जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हैं। उनके दोहे धार्मिक, सामाजिक और व्यक्तिगत चिंताओं को व्यक्त करते हैं। कबीर के दोहे मुख्यतः निम्नलिखित विषयों पर आधारित होते हैं:

1. ईश्वर का निराकार रूप:

कबीर का सबसे महत्वपूर्ण विचार यह था कि ईश्वर निराकार है और उसे किसी भी धार्मिक पंथ या आचार-व्यवहार के माध्यम से नहीं बांधा जा सकता। वे सच्चे प्रेम और भक्ति के माध्यम से ईश्वर तक पहुंचने की बात करते थे। यह दोहा कबीर के इस विचार को व्यक्त करता है कि जो व्यक्ति अपने दिल से परमात्मा में खो जाता है, उसे कोई बुरा नहीं लगता, क्योंकि वह सच्चे ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा को समझता है।

2. धार्मिक आडंबरों की आलोचना:

कबीर धार्मिक आडंबरों और विधियों का विरोध करते थे। वे मानते थे कि साधक का दिल सच्चा होना चाहिए, न कि बाहरी आडंबरों को अपनाना चाहिए। यह दोहा कबीर के इस विचार को व्यक्त करता है कि जो लोग केवल किताबों में पढ़कर ज्ञान प्राप्त करते हैं, लेकिन उनका मन शुद्ध नहीं होता, उनका ज्ञान निरर्थक होता है।

3. जातिवाद और सामाजिक असमानता पर आलोचना:

कबीर ने जातिवाद और सामाजिक भेदभाव का कड़ा विरोध किया। वे मानते थे कि सभी मनुष्य समान हैं और ईश्वर के समक्ष सबका स्थान एक सा है। कबीर इस दोहे के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि सभी जातियों और वर्गों के लोग समान हैं, और किसी भी व्यक्ति की आध्यात्मिक क्षमता उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके भीतर के विश्वास और आस्था से होती है।

4. आत्मज्ञान और आत्म-साक्षात्कार:

कबीर के दोहे आत्मज्ञान और आत्म-साक्षात्कार की ओर इंगीत करते हैं। वे मनुष्य को आत्म-समाधान के लिए प्रेरित करते हैं और कहते हैं कि जब तक व्यक्ति अपने अंदर की दुनिया को नहीं समझेगा, तब तक बाहरी दुनिया को नहीं समझ सकता। यह दोहा कबीर के इस दृष्टिकोण को व्यक्त करता है कि बाहरी रूप को रंगने से कुछ नहीं होगा, जब तक मन का रंग नहीं बदला जाता।

कबीर के दोहों का साहित्यिक मूल्य:

कबीर के दोहे न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि उनके साहित्यिक मूल्य भी बहुत अधिक हैं। उनके दोहे सरल और सुबोध भाषा में होते हुए भी गहरे अर्थ रखते

हैं। उनकी कविता में अलंकार, उपमेय, और रूपक जैसे साहित्यिक तत्वों का उपयोग किया गया है, जो उनके विचारों को अधिक प्रभावशाली बनाते हैं।

कबीर के दोहों का समाज पर प्रभाव:

कबीर के दोहे आज भी समाज में बड़े पैमाने पर प्रासंगिक हैं। उनका संदेश धर्म, जाति, और वर्ग के भेद से ऊपर उठकर एकता और प्रेम का है। उनकी कविता ने समाज में व्याप्त भेदभाव को चुनौती दी और लोगों को अपने आत्मज्ञान की ओर अग्रसर किया।

कबीर के दोहे सामाजिक असमानताओं, भेदभाव, और धार्मिक कुप्रथाओं के खिलाफ थे। उन्होंने धार्मिक पाखंड और कर्मकांडी पूजा पद्धतियों का विरोध किया और सच्चे भक्ति और साधना का मार्ग बताया। उनके दोहों में यह संदेश है कि किसी भी धर्म, जाति, या पंथ के नाम पर मानवता से परे जाकर पूजा करना निरर्थक है। वे अक्सर कहते थे कि ईश्वर एक है और उसे सभी जगह समान रूप से पूजा जाना चाहिए।

कबीर के विचारों का असर न केवल उनके समकालीन समाज पर पड़ा, बल्कि उनकी रचनाएँ समय के साथ हमारे समाज में भी गूंजती रही हैं। उनका संदेश आज भी लोगों को धर्म, जाति और सांस्कृतिक भेदभाव से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है।

निष्कर्ष:

कबीर के दोहे आज भी जीवन की सरलता, सच्चाई, और आध्यात्मिकता की ओर मार्गदर्शन करते हैं। वे अपने समय के सबसे प्रखर समाज सुधारकों में से एक थे, जिन्होंने धर्म और समाज में व्याप्त आडंबरों का विरोध किया और सत्य की ओर लोगों को प्रेरित किया। कबीर के दोहे न केवल एक साहित्यिक धरोहर हैं, बल्कि वे हमें जीवन के गहरे अर्थों को समझने की प्रेरणा देते हैं। कबीर के दोहे न केवल उनकी धार्मिक और दार्शनिक विचारधारा को व्यक्त करते हैं, बल्कि वे समाज सुधार की दिशा में भी अत्यधिक प्रभावी रहे हैं। उनके दोहे आज भी लोगों को सत्य, समानता, और मानवता की दिशा में प्रेरित करते हैं। कबीर ने जिन मूल्यों की बात की, वे आज भी समाज में अत्यधिक प्रासंगिक हैं। उनके विचारों और दोहों का साहित्यिक, दार्शनिक और सामाजिक महत्व अत्यधिक गहरा है, जो समय की परिधि से परे जाकर मानवता के लिए एक अमूल्य धरोहर बन चुके हैं।

संदर्भ:

1. कबीर, (2015). कबीर के दोहे (संस्करण 3). दिल्ली: साहित्य अकादमी।
2. . कबीर के दोहे और उनके जीवन पर आधारित शोधपत्र (1990), प्रकाशित: साहित्य अकादमी।k
3. प्रसाद, विश्वनाथ (2002). कबीर: जीवन और काव्य। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
4. श्रीवास्तव, अजय (2010). कबीर के जीवन दर्शन की विवेचना। इलाहाबाद: साहित्य संग्रह।
5. शुक्ल, राधेश्याम (2013). कबीर के काव्य का समाजशास्त्र। वाराणसी: बनारस हिंदू विश्वविद्यालय।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 94-100
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

AN ANALYSIS OF WORKING CAPITAL MANAGEMENT AND FINANCIAL STATEMENTS OF BSSKM SUGAR FACTORY OF C.G.

Mr. Linendra Kumar Verma, Asst.Professor,
Govt.Naveen College Risali, Durg, Chhattisgarh.
Dr. Harjinder Pal Singh Saluja, Professor,
Govt.V.Y.T. PG. Autonomous College Durg, Chhattisgarh.

Abstract: **This research work is an outcome of "AN ANALYTICAL STUDY ON WORKING CAPITAL MANAGEMENT AND FINANCIAL STATEMENTS OF SUGAR FACTORY". The main objective of this study is to examine performance of working capital and measures of the financial efficiency. The study was carried out for the period of five years (2019-20 to 2022-23) annual data (profit & loss account and balance sheet) to analyse working capital and financial performance of sugar factory. The current study used ratio analysis, comparative analysis and trend analysis techniques. The study investing that how different factors such as current ratio, inventory turnover ratio, gross profit ratio, current asset turnover ratio are affecting working capital in sugar factory and how their relationship with profitability is affected each other. This research found that overall performance of the factory is increasing but at decreasing growth comparing to the performance of year 2022-23.**

Keywords: Ratio analysis, **working capitals, financial statements, profitability of factory**

. INTRODUCTION

The Working capital management (WCM) deals with current assets and current liabilities and therefore Working capital management has a significant impact on the firm's profitability of the firm. The working capital Known as capital which is not fixed in nature. But, the most commonly use of the working capital is to consider it as the difference between the book value of the current assets (C.A.) and current liabilities (C.L). For a firm positive working capital is required to ensure that it is able to continue its operations and that it has enough funds to absorb short-term debt as well as upcoming operational expenses.

Financial statements are primarily created for decision making. Analysis of financial statements refers to the process of determining the financial strengths and weaknesses of a firm by properly establishing the strategic relationship between its balance sheet and statement of profit & loss account. Strong financial performance reflects the effectiveness and efficiency of management in utilizing factory's resources and is often expressed in terms of growth of sales, earnings, employment or stock prices.

This study is related to financial analysis of Bhoramdev Sahkari Sakkar Karkhana Maryadit (BSSKM) co-operative sugar Factory of Kawardha district which is situated in Chhattisgarh state of India. This sugar factory is the biggest and the oldest sugar factory

of Chhttisgarh State. BSSKM sugar producing factory is running as a remunerative co-operative society. Its operational functions are running from the year 2002-03. From the year 2018-19 to 2022-23 this factory benifited more than 45 thousand sugarcane farmers. This factory plays an important role in international trade by supplying sugar in the country as well as exporting sugar abroad. Paddy has been traditionally cultivated in Kawardha district, which has the climatic characteristics of Chhattishgarh. But with the establishment of BSSKM factory kawardha, there was a change in crop cycle. The construction work of ethanol plant based on co-product molasses is in progress at factory. With the establishment of an ethanol plant, molasses, a by-product of sugarcane, can be used. Its establishment will increase the employment sector.

REVIEW OF LITERATURE

Muhammad Aleem and others, (2017) the study researcher analysed and found that current ratio and inventory turnover has a significant and positive relationship with the firm's profitability but quick ratio and trade debt has no significant association with the firm's profitability.

Melita Stephanou Charitou and others, (December, 2010) the outcomes of this study should be of great importance to executives and major stakeholders, such as investors, financial analysts, and bankers. Efficient utilization of the firm's resources leads to increased profitability and reduces volatility. Which leads to the reduction in default risk and thus improves the firm's overall value.

Mr. B. Sudhakar Reddy and others, (April,2019) in this study examines that there was an increase in net profit of the firm and there was an increase in return on net worth but there was a decrease in capital adequacy ratio.

Dr. P. Mohan Sundaram, (April,2015) in this study researcher analysed that the profitability performance of Dhampur Sugar Mills Ltd and Sakthi Sugars Ltd is not satisfactory. Factory may enhance their profitability ratios through procuring raw materials at cheap rate, acquiring debt at low interest and effective cost control.

Dr. S. Poongavanam, (October,2017) in this study researcher identified that the working capital management of the company appears to be satisfactory. But in certain years there is decrease in working capital. Which is due to higher amount of current liabilities especially, increasing in provision for dividend and taxation and creditors.

RESEARCH METHODOLOGY

Descriptive study is used to this research problem. For this study data set of research was obtained from the year 2015-16 to 2019-20 of the BSSKM co-operative sugar factory of Chhattishgarh. The data were analysed by using the ratio analysis, trend analysis, statement of changes and comparative analysis methods. This study was mainly focused on practical and theoretical aspects of the study into real life work experience. Data were analysed by using M.S. Excel sheet for this study.

Objectives:

1. To identify the BSSKM sugar factory's performance by using ratio analysis.
2. To study the overall financial position of the of the BSSKM sugar factory on the basis of comparative analysis and trend analysis.

DATA ANALYSIS

1. RATIO ANALYSIS OF BSSKM SUGAR FACTORY

Type of Ratio	Ratio	2019-20	2020-21	2021-22	2022-23
Profitability Ratio	Gross Profit Ratio	0.37%	5.20%	4.26%	3.78%
	Net profit Ratio	(8.67%)	(12.15%)	(5.42%)	(5.58%)
	Operating Profit Ratio	(10.12%)	(20.69%)	(9.65%)	(10.42%)
	Return on Assets	(9.23%)	(11.32%)	(6.95%)	(13.39%)
Liquidity Ratio	Current Ratio	3.9	2.88	3.06	1.78
Solvency Ratio	Interest Coverage Ratio	(699.32%)	(242.35%)	(228.33%)	(215.38%)
Turnover Ratio	Current asset Turnover Ratio	0.95 times	0.47 times	0.62 times	0.81 times
	Inventory Turnover Ratio	1.94 times	0.96 times	1.00 times	1.10 times

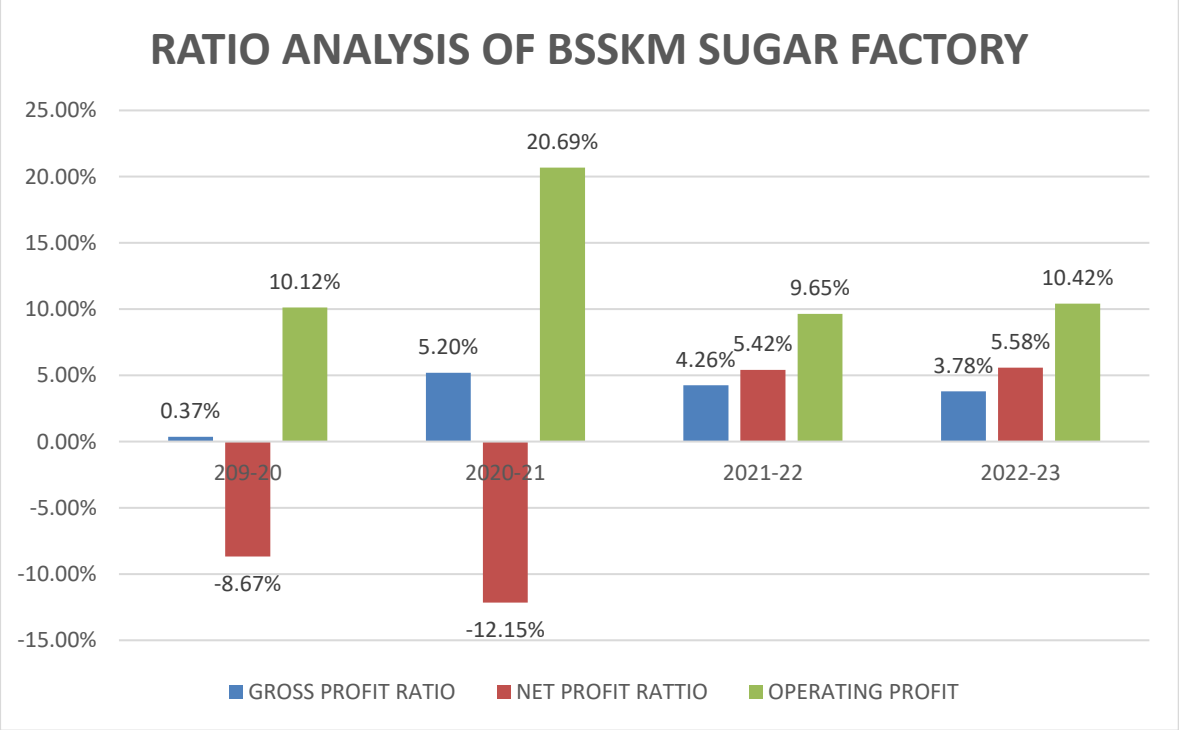

- Profitability ratios represents actual performance of A firm. In the year 2022-23 average profitability ratio of BSSKM factory is (6.4025%) has better than compare to the year 2019-20 , because in this year average profitability ratio is (6.9125%). But negative average profitability ratio indicates the performance of BSSKM sugar factory is poor and it's recommended that suitable steps have been taken by management.
- Higher or strong solvency ratio indicates financial strength of a firm. Lower ratio of a firm indicates it's financial struggles in the future. Comparing to the previous year ratio, factory's ratio is very low. So we can say that factory would increase their solvency ratio otherwise they faced many financial struggles in future.
- Liquidity ratio of 2:1 or higher is considered satisfactory for most of the firms. In this

study all four years ratios are between 2.5- 4.0 and it shows the good efficient management of working capital.
In year 2022-23 average turnover ratio has 0.96 times its lower compare to year 2019-20. It's shows that company is not using its assets more efficiently.

2. COMPARATIVE ANALYSIS OF BSSKM SUGAR FACTORY

PROFIT & LOSS ACCOUNT

Particulars	**Increase/Decrease (Amt)**	**Increase/ Decrease (%)**
INCOME		
Sales	213665100	22.08%
Indirect Income	(48038061)	(57.44%)
EXPENDITURE		
Direct Expenses	9616804	5.17%
Inirect Expenses	(31952644)	(40.60%)
Interest & Other overheads	16267149	39.77%

Comparative analysis is related to comparison of last two years changes in amount and it also comparison of changes in percentage. Sales income positively change 22.08% and Indirect Income negative change (57.44%). More sales income can helps a firm to recover the losses and make more profit. In expenditures the highest change is interest & other overheads 39.77% and the lowest change in expenditure is indirect expenses (40.60%). Direct expense increased by 5.17% from previous year. So, from this comparison we can say that production and sales of sugar are increase compare to last year. To increase the profit some factors like govt. policies, factory's strategies etc can be helpful and for this suitable steps can also be taken by management.

BALANCE SHEET

LIABILITIES	**Increase/Decrease (Amt)**	**Increase/ Decrease (%)**
Share Capital	(10000)	0.00
Loans & Borrowing	(35,55,69,690)	(32.46)
Current Liabilities & Provision	312435842	61.44
ASSETS		
Fixed Assets	(19213232)	(6.45)
Current Assets, Loans & Advances	(89895679)	(5.46)

In balance sheet, the highest comparative change in liability side was 61.44% in Current Liabilities & Provision and (32.46%) of Loans & Borrowing. In assets side, factory faced (6.45%) change in Fixed Assets and (5.46%) in Current Assets, Loans & Advances compare to the previous

TREND ANALYSIS

PROFIT & LOSS ACCOUNT

Particulars	**2018-19**	**2019-20**	**2020-21**	**2021-22**	**2022-23**
INCOME					
Sales	1	(44.96%)	(64.55%)	(43.06%)	(30.48%)
Indirect Income	1	(79.47%)	(74.12%)	(31.84%)	(70.99%)
EXPENDITURE					
Direct Expenses	1	(43.67%)	(88.11%)	(86.47%)	(85.77%)
Inirect Expenses	1	(2.70%)	(5.57%)	42.53%	(15.33%)
Interest & Other overheads	1	(81.29%)	(28.88%)	(43.45%)	(20.96%)

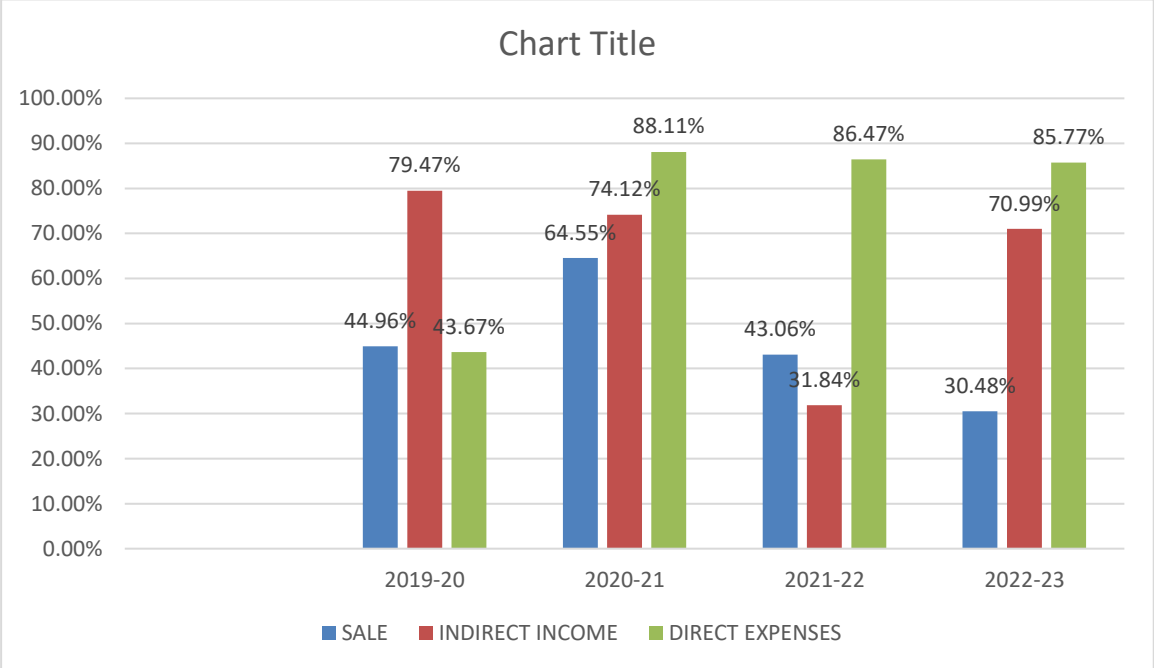

In this study 2018-19 data are considering as a base year (1), i.e., in Sales income BSSKM sugar factory shown negative increase in previous years on the basis of base year. Factory generates (70.99%) in Indirect income in the year 2022-23 which was less to the previous year performance. The average Expenditure change in year 2022-23 was (40.69%) which was improved for last three years, and also factory earn (50.735%) average administrative incomes which was higher compare to the last three years but shows negative figures.

BALANCE SHEET

Particulars	2018-19	2019-20	2020-21	2021-22	2022-23
Liabilities					
Share Capital	1	0.00%	(2.97%)	16.87%	16.87%
Loans & Borrowing	1	75.80%	116.70%	168.16%	81.13%
Reserve & Other Funds	1	(1.93%)	(1.93%)	(1.93%)	(1.93%)
Current Liabilities & Provision	1	(40.04%)	4.68%	20.10%	93.88%
Assets					
Fixed Assets	1	(6.19%)	(12.90%)	(3.47%)	(9.69%)
Current Assets, Loans & Advances	1	7.73%	36.75%	62.73%	53.84%

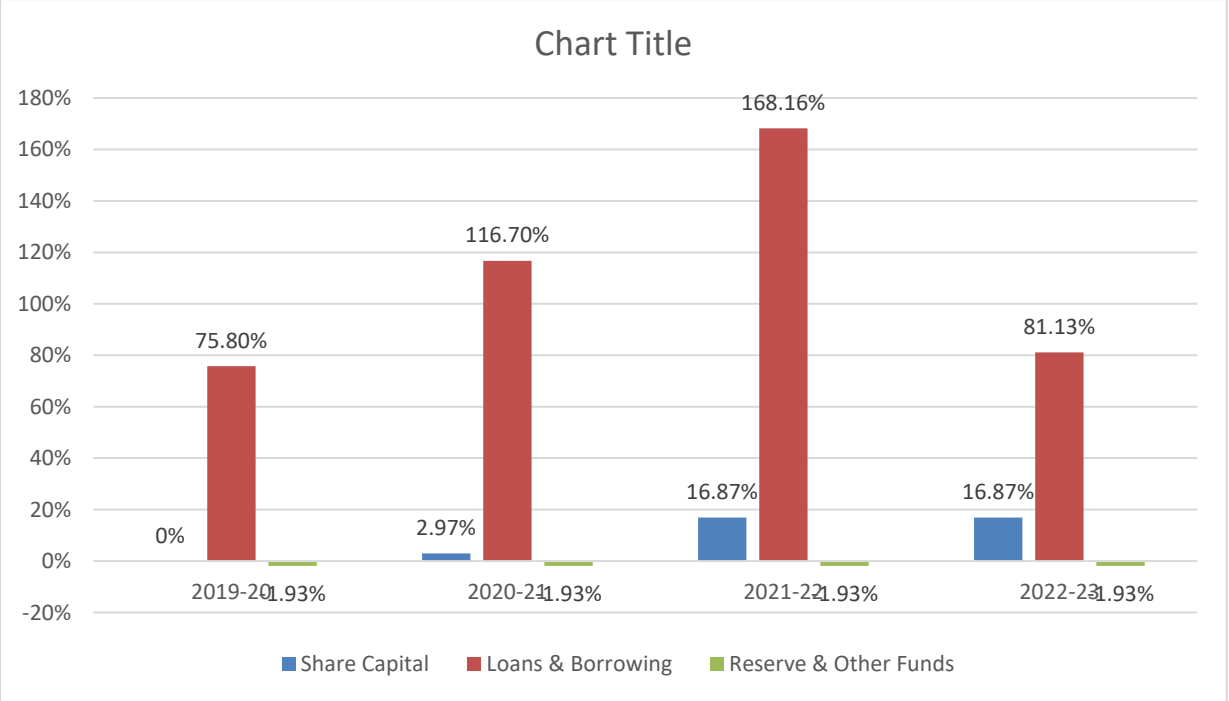

In balance sheet, BSSKM co-operative sugar factory continuously shows decreasing changes in its fixed asset compare to last Four years. In study period factory's Current Assets, Loans & Advances was increase compare to last years. And compare to last four years performance, factory's current assets and current liabilities was also increase and it shown the improvement of company's performance in the year 2022-23.

CONCLUSION

The study analyse that how different factors such as current ratio, net profit ratio, gross profit ratio, inventory turnover etc. are affecting working capital management in BSSKM co-operative sugar factory and how their relationship with Profitability is affected. The overall working capital management and profitability of the BSSKM sugar factory is not highly satisfactory. The analysis has shown the fluctuations and have both good and bad sides during five years data. The performance of the factory seems to be in increase every year because of the increase in sales but the efficient management of adapting to changes is needed to run towards success in future. The factory is having good reputation, which will lead the factory to excellent progress in the upcoming years. The management of sugar factory and government policies can also lead factory's performance more profitable if suitable steps can be carryout for this. The financial information of this research will also help the management and government in setting up plans and financial strategies. From an academic point of view, this study represents a new approach to evaluating the financial performance of co-operative sugar factories and the results of this study can be added to the existing literature and may help researchers in their future research in this field.

REFERENCES

[1] Patel Rinkkal, M. V. (2020). A STUDY ON WORKING CAPITAL MANAGEMENT AND FINACIAL STATEMENTS ANALYSIS OF SUGAR COMPANY. International Journal of Management and Commerce Innovations, Vol. 8, Issue 1, pp 1-6

[2] Muhammad Aleem, D. A. (2017). Impact of Working Capital Management on Profitability: A Case of the PakistanTextile Industry. Research Journal of Finance and Accounting.

[3] Melita Stephanou Charitou, M. E. (2010). The Effect Of Working Capital Management On Firm's Profitability: Empirical Evidence From An Emerging Market. Journal of Business & Economics Research.

[4] Dr.S.Poongavanam. (2017). A Study On Comparative Financial Statement Analysis With Reference To Das Limited
. IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS), 09-14.

[5] Mr. B.SUDHAKAR REDDY, M. G. (2019). A STUDY ON FINANCIAL STATEMENTS ANALYSIS.International Journal of Research.

[6] Dr.P.Mohanasundaram. (2015). PROFITABILITY PERFORMANCE OF SELECTED SUGAR COMPANIES IN INDIA: AN EMPIRICAL STUDY. Asia Pacific Journal of Research.

[7] Singh Dharmendra & Saluja H.P. Singh (2018), "A Study of Danteshwari Maiya Co-Operative Sugar Factory Limited', *International Journal of Management Studies,ISSN-2231-2528Vol.–V, Special Issue_2, August 2018*

[8] Annual Reports of Bhoramdev Sahkari Sakkar Karkhana Maryadit (2018-19 to 2022-23)

[9] https://www.drishtiias.com/hindi/state-pcs-current-affairs/bhoramdev-co-operative-sugar-factory

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 101-104
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सूरदास के साहित्य में वात्सल्य वर्णन

डॉ मिनाक्षी सोनवणे, हिन्दी विभाग प्रमुख,
एल. ए. डी. और श्रीमती आर. पी. महिला
महाविद्यालय शंकर नगर नागपूर। महाराष्ट्र - 440010

हिंदी साहित्य के इतिहास के विभाजन एवं नामकरण का जब अध्ययन किया, तब यह ज्ञात होता है कि कोई भी परिस्थितियों अपने आप जन्म नहीं लेती उसके लिए वहां की तत्कालीन परिस्थितियों का निर्माण करती है कि आने वाली परिस्थितियों क्या होगी।

आदिकाल में मुगलों और ब्रिटिशों का आगमन भारतीय राजा महाराजाओं पर आक्रमण करना, नहीं तो दोस्ती का हाथ बढ़ाकर दो भाई, बाप - बेटी एवं अन्य रिश्तो में कटुता लाने का प्रयास मुगल एवं ब्रिटिश शासको ने किया। जिससे एक दूसरे को मारने काटने एवं युद्ध करने की परिस्थितियों बनी जब चारों ओर से विजय हासिल करने के उपरांत अब क्या करें तब वह मदिरा, वासना में अलिप्त होते हुए दिखाई देते है। पर मनुष्य बुद्धिशील प्राणी है सच समझने की क्षमता उसके पास है। जिससे राजा - महाराजा सोचने लगे की क्या हमने सही किया ? अपने ही रिश्तेदारों, सगे भाई बहन एवं पिता को मृत्यु के घाट उतारा यही विचार उनके द्वारा किए गए पापों को उल्लेखित करता है। तब इस पाप से मुक्ति की भावना अपने आप ईश्वर की शरण में ले जाती है अर्थात आदिकाल के उपरांत भक्ति काल के निर्माता का मूल कारण बनती यह परिस्थितियों है।

भक्ति की मूल धारा दक्षिण से उत्तर की ओर बहती नजर आई पर सोचे तो तो वह स्थिति थी, जिसने भारत वर्ष के चारों दिशाओं से भक्ति का स्वर प्रज्वलित किया।

भक्ति काल में भी अपनी- अपनी भावना हर संत कवियों ने अपने तरीके से करने का प्रयास किया। जिसमें सगुण धारा भक्ति, निर्गुण धारा भक्ति का उल्लेख भी मिलता है।

निर्गुण भक्ति धारा जिसमें ईश्वर निर्गुण निराकार होता हैं। जिसका इस सृष्टि के कण - कण में वास है। निर्गुण निराकार ईश्वर की प्रार्थना करने के लिए किसी मंदिर, मस्जिद में जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इस धारा का प्रतिनिधित्व संत कबीर जी करते हुए नजर आते हैं। संत कबीर बचपन से ही विद्रोही व्यक्तित्व के धनी रहे । जिनका

हर दोहा उनके भाव को प्रखर रूप को प्रस्तुत करता है । इसी तरह सगुण धारा के प्रमुख संत कवियों में तुलसीदास जी एवं सूरदास जी का नाम लिया जाता है।

इनके ईश्वर सगुण रूप में अर्थात ईश्वर ने धरती पर जन्म लिया मनुष्य की तरह सुख-दुख एवं समस्या, परेशानियों का सामना किया है। तुलसीदास जी ने अपने आराध्य श्री राम जी को अपने साहित्य में उभारा, तो सूरदास जी ने अपने आराध्य कृष्ण जी को अपने साहित्य में उभारने का प्रयास किया। कृष्ण भक्ति धारा के प्रमुख संत सूरदास जी माने जाते हैं, उनके बारे में बताया जाता है कि सूरदास जन्म से ही अंधे थे। अगर जन्म से अंधे थे, तो श्री कृष्ण की बाल लीला, अटकीलियों का इतना सुंदर वर्णन कैसे कर सकते हैं ? जिस व्यक्ति ने सृष्टि को देखा ही नहीं वह वात्सल्य वर्णन इतना सुंदर कैसे कर सकते हैं ?

हिंदी आचार्य एवं विद्वानों ने भी अनेक प्रश्न उठाए की यह कैसे हो सकता है फिर कुछ विद्वानों का मानना है कि कुछ समय या वर्षों के उपरांत सूरदास जी अंधे हुए होंगे, जिससे सृष्टि एवं रिश्तो को उन्होंने करीब से देखा होगा। जिससे उनके साहित्य में इतना सजीव वर्णन दिखाई देता है। सूरदास जी ने सखा भक्ति को अपने साहित्य में अपनाया है। सूरदास ने प्रमुख वात्सल्य एवं श्रृंगार का वर्णन किया है, इन दोनों रसों का वर्णन जितना मार्मिक, संजीविता, विविधता पूर्ण एवं निपुणता के साथ सूरदास जी ने प्रस्तुत किया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

दोहावली सूरदास जी कृष्ण मुख का वर्णन करते हैं

'हरि मुख देखि हो वासुदेव
कोटी कल स्वरूप सुंदर को न जाना भेद।' १

हे वासुदेव जी कृष्ण बालक का मुख देखिए यह परम सुंदर है। इस मुख को देखना गोकुल नगरी में कृष्ण का प्रकट होना उत्साह और त्योहार से कम नही था, मात्र कृष्णा बालक का मुख देखना यह परम ऐसा सुख है जिसे किसी माप में नही नापा जा सकता। पूरी गोकुल नगरी में मंगल गीत गाए जा रहे हैं। गोप गोपिया सब कुंवर को देखने जा रही है, और बाहर आकर कुंवर के सौंदर्य का वर्णन भी कर रही है, गोठे में बंधी गईया भी यह मुख दर्शन करना चाहती रही है, वह भी जोर-जोर से हंभार रही है।

यशोमती मैया और वासुदेव को घर-घर से बधाई आ रही है। मनुष्य सुख का ही वर्णन नहीं है अपितु गोकुल नगरी की सृष्टि में भी वह आनंद और कौतूहल देखने मिल रहा है।

' जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हालरावै, दुलराइ, मल्हावै
जोइ-सोई कछु गावै।।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया,
काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगहीं बेगिहि आवै,

तो कौं कान्हा बुलावैं।। २

सूरदास जी ने अत्यंत मार्मिक और सुंदर वात्सल्य वर्णन करते नजर आते हैं उपयुक्त पंक्ति में जसोदा मैया अपने बालक को झूले में झूला रही है, दुलार रही है, जो कुछ आता है उसे गीत में बांधकर गा रही है, कि है निंदिया तू मेरे लाल को क्यों नहीं आ रही, जल्दी आ जल्दी-जल्दी आ मेरा कान्हा तुझे बुला रहा है, अर्थ यशोमती मैया की तरह सामान्य भारतीय मां जो अपने बालक को इसी तरह झूलाती है और गीत गाती भी है। इतना सुंदर दृश्य का वर्णन सूरदास जी ने अपने दोहावली में चित्रित किय हैं ।

सूरदास जी बताते है की एक माता को बालक होने के उपरांत बालक जल्दी-जल्दी चलने लगे, तोतले बोल इसके मेरे कानों पर पड़े आदि आतुरता वाले भाव या उतावली भावना जो हर एक मां की होती है वही सहज सरल भाव को अभिव्यक्त किया है।

'जसुमती मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घटुरूवनि रेंगे।
कब धरनी पग व्दैक धरै।।
कब द्वै धरे दांत दूध के देखौ,
कब तोतरैं मुख बचन झरै.....। ३

प्यारा कान्हा, नटखट कान्हा के मुख में दांत आते हैं और जसोदा मैया जैसे यह देखती हैं वह फूली नहीं समाती सबको पास बुलाती है और अपने बालक के दांत दिखा रही है।

' सूत- सूत देखि जसोदा फुली।
हरषित देखि दूध की दांतियां प्रेम मगन तन की सुधि भुली।।
बहिर तैं तब नंद बुलाए,
देखौं धौं सुंदर सुखदाई.....।।४

श्री कृष्ण जी का कहीं माखन चुराना तो कहीं गोपी के संग गाईय चराने यमुना तट जाना आदि, सुंदर चित्रण सूरदास जी ने अपने दोहावली के अंतर्गत किया है। सूरदास जी बड़े ज्ञानी थे, बहुज्ञाता है , हर क्षेत्र ज्ञान था। इसका प्रारूप सूरदास की दोहावली में प्रखर रूप से देखने को मिलता है। सूरदास जी कृष्ण काव्य में प्रेम मूलक भावना का उत्कर्ष रूप देखने मिलता है, जब कृष्ण गोकुल में रहने के उपरांत मथुरा चले जाते हैं, तो कृष्ण के जाने के उपरांत गोकुल नगरी के सृष्टि और गोपीओं के हृदय भावना का सजीव वर्णन मिलता है। जिसमें जिसमे मधुबन भी अब जल चुके हैं विरह में राधा रानी एवं गोप गोपीया सुख कर काटा होने लगी है। गोप गोपिका और राधा रानी के दुख पीड़ा को मिटाने के लिए कृष्ण जी उद्धव को संदेश वाहक बनाकर गोकुल भेजते हैं। ज्ञानी उध्दव कितना ही ज्ञान का भंडार गोप गोपियों के संमुख उडेल रहे, पर एक क्षण भी , या पल भर की वेदना उद्धव मिटा नहीं पाए। आदि सुंदर अभिव्यक्ति सूरदास के दोहावली में देखने मिलती है जो अन्यत्र दुर्लभ है

सूरदास के वात्सल्य वर्णन एवं प्रेम की पराकाष्ठा का सजीव वर्णन मार्मिक दृश्य का निर्माण सूरदास के दोहावली में मिलता है ।

निष्कर्ष रूपसे कहां जा सकता है कि सूरदास जी हिंदी साहित्य के ऐसे संत कवि है जिनके साहित्य में वात्सल्य वर्णन प्रेम काव्य का वर्णन इतना मार्मिक और मौलिक किया है अन्यत्र वह दुर्लभ है । मानवजीवन की भाव भावनाओं को एवं प्रकृति के संजीव वर्णन करने में सूरदासजी को सफलता हासिल हुई है । वात्सल्य वर्णन के हर कोने से वाकिफ थे, जो उनके साहित्य मे सफल और सार्थक होते हुआ दिखाई देता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सुर दोहावली - मूल लेखक - कविवर सूरदास संपादक आबीद रिजवी पृष्ठ क्र. 07
2. सुर दोहावली - मूल लेखक - कविवर सूरदास संपादक आबीद रिजवी पृष्ठ क्र. 23
3. सुर दोहावली - मूल लेखक - कविवर सूरदास संपादक आबीद रिजवी पृष्ठ क्र. 32
4. सुर दोहावली - मूल लेखक - कविवर सूरदास संपादक आबीद रिजवी पृष्ठ क्र. 34

मोब. नं - 7709091335

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 105-109
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

419 वें शहादत दिवस (30 मई सन 2025 ई.) पर विशेष शहीदों के सरताज: श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी की जीवन-गाथा

डॉ. रणजीत सिंह 'अर्श',
सदनिका क्रमांक 5, अवन्तिका रेजिडेंसी 58/59,
सोमवार पेठ, नागेश्वर मंदिर रोड़ पुणे 411011 (महाराष्ट्र)

१ॐ सतिगुर प्रसादि॥

(तेरा कीआ मीठा लागै॥ हरि नामु पदारथु नानकु माँगै)॥

भूमिका

'श्री गुरु नानक देव साहिब जी' की ज्योति, सिख धर्म में शहादत की परंपरा की नींव रखने वाले प्रथम शहीद, शहीदों के सरताज, महान शांति के पुंज, गुरबाणी के बोहिथा (ज्ञाता/सागर), सिख धर्म के पांचवें गुरु 'श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी' एक महान कवि, लेखक, देशभक्त, समाज सुधारक, लोकनायक, परोपकारी और ब्रह्मज्ञानी ऐसी अनेक प्रतिभा से संपन्न गुरु हुए हैं। आप का जीवन शक्ति, शील, सहजता, पराक्रम और ज्ञान का मनोहारी चित्रण था, सिख धर्म में गुरु जी के इस कार्यकाल को गुरमत का मध्यान्ह माना जाता है। आप ने शहादत का जाम पीते समय अपने शीश पर डाली गई गर्म रेत की तपस को सहजता से सहन किया, उबलती हुई देग (उबलते हुए पानी का बड़ा बर्तन) में उन्हें बैठाया गया और तो और तपते हुए तवे पर आपने बैठकर, उस अकाल पुरख के भाणे को मीठा मानकर, स्वयं शहादत प्राप्त कर ली परंतु अपने धर्म के उसूलों पर आंच तक नहीं आने दी थी। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी' की वाणी में अंकित है--

तेरा कीआ मीठा लागै॥ हरि नामु पदारथु नानकु माँगै॥
(अंग क्रमांक 394)

अर्थात हे प्रभु-परमेश्वर तेरे द्वारा किया हुआ प्रत्येक कार्य मुझे मीठा लगता है। है नानक! तुझसे तेरा यह भक्त हरिनाम रूपी पदार्थ की दात मांगता है।

जीवन परिचय

श्री गुरु अर्जुन देव जी का प्रकाश 15 अप्रैल सन् 1563 ई. को गोइंदवाल साहिब में माता भानी जी के पवित्र गर्भ से हुआ। आप 'श्री गुरु रामदास साहिब जी' के सुपुत्र एवं 'श्री गुरु अमरदास साहिब जी' के नाती थे। 'श्री गुरु अमरदास साहिब जी' ने आपको 'दोहिता बाणी का बोहिथा' अर्थात बाणी का ज्ञाता, कहकर आशीर्वाद प्रदान किया था। बाल्यावस्था में ही आप में आध्यात्मिक सौंदर्य, विनम्रता और सेवा भावना परिलक्षित होने लगी थी। 11 वर्ष की आयु तक आपने गोइंदवाल साहिब में निवास किया, तत्पश्चात श्री अमृतसर साहिब (गुरु का चक) आ गए, जहाँ आगे चलकर 'गुरु के महल' में आपका निवास रहा।

पारिवारिक जीवन

ग्राम मऊ तहसील फिल्लौर के भाई संगत राय जी की सुपुत्री माता गंगा जी आपकी जीवन संगिनी बनीं। उनके गर्भ से महाबली योद्धा और संत-सिपाही स्वरूप में 'श्री गुरु हरगोबिंद साहिब जी' का जन्म हुआ, जिन्होंने आगे चलकर खालसा परंपरा की बुनियाद को और अधिक सुदृढ़ किया।

व्यक्तिगत संघर्ष, आध्यात्मिक दृष्टिकोण और सामाजिक सेवाएं

श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी की अपने बड़े भाई पृथ्वी चँद से गृह कलह थी, पृथ्वी चँद ने येन-केन-प्रकारेण गुरु गद्दी को प्राप्त करने हेतु सभी प्रकार के नकारात्मक कार्यों को आप के विरुद्ध अंजाम दिये थे। भाई पृथ्वी चँद ने आप से सब कुछ लूट लिया था, एक समय ऐसा भी आया कि 3 दिनों तक लंगर (भोजन प्रसादी) मस्ताना रहा। जगत माता और आप की सुपत्नी ने सारा घर खोज के बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे घर में बचे हुए बेसन की दो रोटियां (प्रशादे) तैयार कर परोस दी और जब दो सुखे प्रशादे (रोटी) गुरु पातशाह जी के समक्ष परोसी तो माता गंगा जी की आंखों से आंसुओं की धाराएं बहने लगी थी।

उस समय में ब्रह्म ज्ञान के प्रतीक गुरु 'श्री अर्जुन देव साहिब जी' ने अपनी पत्नी को संबोधित करते हुए वचन किये, जिसे 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी' में इस तरह अंकित किया गया है-

रुखो भोजन भूमि सैन सखी प्रिअ संगि सूखि बिहात।। (अंग क्रमांक 1306)

हे सखी! अपने पति-प्रभु के साथ रूखा-सूखा भोजन एवं भूमि पर शयन इत्यादि ही सुखमय है, यदि भाई पृथ्वी चँद सब कुछ लूट कर ले गये तो क्या हुआ? इन सभी दातों को देने वाला मेरा वाहिगुरु मेरे अंग-संग सहाय है। उस अकाल पुरख वाहिगुरु जी को तो कोई लूट नहीं सकता, वह तो मेरे पास हमेशा ही है। आप अत्यंत धीरजवान, क्षमा की मूर्ति और निर्मलता की प्रतिमा थे। प्रभु के प्रति प्यार आपके रोम-रोम में पुलकित होता था। आप ने अपनी बाणी में अंकित किया है--

इक घड़ी न मिलते ता कलिजुगु होता।।
हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवंता।। (अंग क्रमांक 96)

है अकाल पुरुख! यदि मैं तुझे एक क्षण भर भी नहीं मिलता तो मेरे लिए कलयुग उदय हो जाता है, हे मेरे प्रिय भगवंता! मैं तुझे अब कब मिलूंगा? यदि प्रभु-परमेश्वर का मिलाप हो तो सतयुग है और यदि बिछड़ना है तो कलयुग है!

गुरु अर्जुन देव जी को 31 अगस्त सन 1581 ई. को सिख धर्म के पंचम गुरु के रूप में सुशोभित किया गया। आपने न केवल धार्मिक परंपराओं को सुदृढ़ किया, बल्कि सामाजिक सरोकारों, लोकहितकारी प्रयासों एवं साहित्यिक साधना को अद्‌वितीय ऊंचाइयां प्रदान की।

आपके कार्यकाल में 'गुरु का चक' (वर्तमान में अमृतसर) का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। पीने के जल की समस्या से पीड़ित जनता के लिए आपने संतोखसर और अमृतसर सरोवर का निर्माण स्वयं अपने कर-कमलों से वर्ष 1590 ई. में तरनतारन नामक स्थान पर स्थापना कर, वहाँ कोढ़ियों के लिए चिकित्सालय स्थापित किया। करतारपुर और हरगोबिंदपुर शहरों का निर्माण भी आपके द्‌वारा ही हुआ।

आप के रोम-रोम में संगीत और कविता की ज्योति थी। आपने सिरंदा वाद्‌य का आविष्कार किया तथा कीर्तन में परमानंद प्राप्त किया। आपकी रचित वाणियों में सुखमनी साहिब, बावन अखरी, बारह माहा, गुणवंती ते दिन रैन, और विभिन्न रागों में छह वारें सम्मिलित हैं।

आपके काल में अकबर और जहाँगीर जैसे सम्राट सत्तासीन थे। आपने अपने अनुयायियों को आर्थिक रूप से सशक्त करने हेतु व्यापार, विशेषकर घोड़े के व्यापार के लिए प्रोत्साहित किया।

सेवा, साहित्य और श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का संपादन

'श्री गुरु नानक देव साहिब जी' द्‌वारा प्रारंभ की गई वाणी-संरचना की परंपरा को 'श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी' ने एक अभूतपूर्व कार्य में परिणत किया। आपने 'श्री गुरु नानक देव साहिब जी', 'श्री गुरु अंगद देव साहिब जी', 'श्री गुरु अमरदास साहिब जी' एवं 'श्री गुरु रामदास साहिब जी' की बाणियों के साथ-साथ समकालीन 15 संतों, 11 भटों और 3 गुरुसिखों की वाणियों को क्रमबद्‌ध ढंग से रामसर नामक स्थान पर संकलित किया।

यह ग्रंथ 'श्री आदि ग्रंथ' के रूप में हरिमंदिर साहिब में प्रतिष्ठित किया गया, जहाँ बाबा बुड्‌ढा जी को प्रथम ग्रंथी नियुक्त किया गया। इस संकलन की विशेषता यह थी कि प्रत्येक वाणी को राग, ताल, क्रम, और रचनाकार के नाम सहित अंकित किया गया, जिससे किसी भी मिलावट की संभावना समाप्त हो गई।

'श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी' न केवल सिख धर्म का आध्यात्मिक स्तंभ है, अपितु यह समस्त मानवता के लिए ज्ञान और सद्‌भाव का ग्रंथ है। इसके समक्ष हर मत, हर संप्रदाय के व्यक्ति श्रद्‌धा से शीश झुकाते हैं।

कथनी और करनी के महाबली 'श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी ने 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी' के संपादन के पश्चात उसे अपने अधीन न रखते हुए, मानवता की भलाई हेतु हरमंदिर साहिब अमृतसर में सुशोभित किया। इस ऐतिहासिक क्षण पर आपने सिर नवाकर यह वाणी उच्चारित की:

बाणी गुरु गुरु है बाणी विचि बाणी अंम्रितु सारे॥
गुरुबाणी कहै सेवकु जनु मानै परतखि गुरु निसतारे॥ (अंग 982)

आपके विचार और कर्म में कोई द्वैत न था। भट्ट मथुरा की वाणी में आपके योगदान की महिमा इस प्रकार अंकित है:

जब लउ नही भाग लिलार उदै तब लउ भ्रमते फिरते बहु धायउ॥
कलि घोर समुद्र मै बूडत थे कबहू मिटि है नही रे पछुतायउ॥
ततु बिचारु यहै मथुरा जग तारन कउ अवतारु बनायउ॥
जपुउ जिन् अरजुन देव गुरुफिरि संकट जोनि गरभ न आयउ॥ (अंग 1409)

यासा-ए-सियासत और शहादत का वृतांत

जहाँगीर की शासकीय नीति 'यासा-ए-सियासत' के अंतर्गत 'श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी' को शहादत की सजा सुनाई गई। यह कानून साधु-संतों को इस प्रकार मृत्यु दंड देने का प्रावधान रखता था कि उनका रक्त भूमि पर न गिरे। कारण यह विश्वास था कि यदि ऐसा हुआ, तो विद्रोह और प्राकृतिक विपत्तियां उत्पन्न होंगी।

आपको यह सजा इसलिए दी गई क्योंकि आपने 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी' में किसी विशेष शासक या मजहब की प्रशंसा न कर, उसे संपूर्ण मानवता के लिए **"गुरु"** के रूप में प्रतिष्ठित किया।

25 मई सन 1606 ई. (ज्येष्ठ सुदी चौथ) को तपती रेत, उबलती देग और गर्म तवे जैसी यातनाओं के बीच आपने परम भाणे को मीठा मानकर शहादत प्राप्त की। आपके शरीर पर छाले पड़े, मांस उखड़ा, पर आपकी आत्मा अडोल रही।

आपके इस अपूर्व समर्पण के कारण इतिहास ने आपको **"शहीदों के सरताज"** का गौरव दिया। इस विषय में 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी' में अंकित है:

सबर अंदरि साबरी तनु एवै जालेनि॥
होनि नजीकि खुदाइ दै भेतु न किसै देनि॥ (अंग 1384)

उत्तराधिकार और प्रेरणा

गुरु जी को ज्ञात था कि धर्म की रक्षा हेतु उनका बलिदान अपरिहार्य है। इसलिए आपने अपने सुपुत्र 'श्री गुरु हरगोबिंद साहिब जी' को 25 मई सन 1606 ई. को गुरु गद्दी पर विराजमान कर दिया, जो आगे चलकर 'संत-सिपाही' परंपरा के प्रतीक बने।

'श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी' की शहादत केवल ऐतिहासिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक मार्गदर्शन का शिखर है। यह बलिदान बताता है कि अत्याचार का प्रतिकार 'सबर' से भी किया जा सकता है।

निष्कर्ष

'श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी' ने धर्म, साहित्य, समाज और मानवता के लिए जो योगदान दिए, वे अनंत काल तक मानव सभ्यता को प्रेरणा देते रहेंगे। आपके जीवन से हमें यह सिखने को मिलता है कि सत्य, सेवा और सहिष्णुता का पथ कठिन अवश्य है, परन्तु वही सबसे ऊँचा है।

आपकी शहादत के स्मरण स्वरूप आज भी वैशाख में ठंडा जल, शरबत और कच्ची लस्सी बाँटी जाती है। यह सिख परंपरा में केवल श्रद्धा नहीं, बल्कि समाज सेवा का सजीव उदाहरण है।

ऐसे महान 'श्री गुरु अर्जुन देव साहिब जी' की शहादत को कोटिशः प्रणाम!

संदर्भ सूची

1. 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी' के पृष्ठों को सम्मान पूर्वक 'अंग' कहकर संबोधित किया गया है।
2. गुरबाणी अनुवाद के लिए 'Gurbani Searcher App' को मानक माना गया है।
3. गुरबाणी पदों की जानकारी खोज-विचार टीम के प्रमुख सरदार गुरदयाल सिंह जी के योगदान से प्राप्त हुई है।

मो. 9096222223 email:arshpune18@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 110-115
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दिल्ली की पहली महिला शासक रजिया सुल्तान की शासन-व्यवस्था : एक अध्ययन

रोहित रंजन, विद्यार्थी, राजनीति विभाग,
स्वामी विवेकानंद सुभारती विवि, मेरठ (उप्र)

शोध सार : दिल्ली सल्तनत की पहली और एकमात्र महिला शासक रजिया सुल्तान ने 1236 से 1240 ई. तक शासन किया। उनके शासनकाल में उनके समय के स्थापित पितृसत्तात्मक मानदंडों से एक महत्वपूर्ण विचलन देखा गया। अपने शासन की छोटी अवधि के बावजूद, उन्होंने कई राजनीतिक सुधार लागू किए, पुरुष-प्रधान सत्ता संरचना को संभाला और सत्ता को केंद्रीकृत करने का प्रयास किया। वह खुले दरबारों में बैठती थी, पुरुषों की तरह कपड़े पहनती थी और युद्ध में निडरता से घोड़ों की सवारी करती थी। रजिया ने 'सुल्ताना' कहलाने से इनकार कर दिया था क्योंकि इसका अर्थ 'राजा की पत्नी' होना था। नेता बनना उसके खून में था और उसका मानना था कि उसका स्त्री होना उसकी ताकत निर्धारित नहीं कर सकता है। पितृसत्ता से लड़ने के साथ-साथ रजिया का प्राथमिक कर्तव्य अपनी जनता का कल्याण था। यह शोधपत्र उनके शासनकाल के राजनीतिक परिदृश्य, सत्ता पर काबिज़ होने और उसे बनाए रखने के लिए उनके द्वारा अपनाई गई रणनीतियों और मध्ययुगीन भारतीय राजनीति के संदर्भ में उनकी स्थायी विरासत का पता लगाना है। अध्ययन ऐतिहासिक ग्रंथों, समकालीन विवरणों और आधुनिक इतिहासलेखन की व्याख्याओं पर आधारित है ताकि उनके राजनीतिक योगदान का व्यापक अवलोकन किया जा सके।

बीज शब्द : रजिया सुल्तान, दिल्ली सल्तनत, राजनीतिक इतिहास, मध्यकालीन भारत, महिला शासक, केंद्रीकरण।

प्रस्तावना : दिल्ली सल्तनत के इतिहास में 1236 ई. से 1290 ई. तक की अवधि को एक महत्वपूर्ण शासन काल माना जाता है। यह ऐसा समय था जब दिल्ली में एक सशक्त और केंद्रीकृत राजतंत्र की स्थापना के लिए संघर्ष हो रहा था। यह समय ही राजनीतिक अस्थिरता और तुर्की कुलीनों के बीच गुटबाजी के कारण सत्ता के लिए संघर्ष और विद्रोहों का दौर था। विशेष रूप से रजिया सुलतान का उत्थान और पतन, तुर्की कुलीनों और ताजिकों के संघर्ष, और गुलाम अधिकारियों की भूमिका ने इस युग को सीमांकित किया। शम्स-उद-दीन इल्तुतमिश

की बेटी रजिया सुल्तान ने दिल्ली की गद्दी पर बैठकर पूरी परंपरा को चुनौती दी थी। दिल्ली की शासक के रूप में उनका उत्थान न केवल एक व्यक्तिगत सफलता थी बल्कि इस उपमहाद्वीप के इतिहास में एक सामाजिक-राजनीतिक मील का पत्थर भी। इस शोधपत्र का उद्देश्य रजिया द्वारा अपने शासनकाल के दौरान सामना की गई राजनीतिक प्रयासों और चुनौतियों की आलोचनात्मक अध्ययन करना है, जिसमें महिला संप्रभुता के प्रति शत्रुतापूर्ण वातावरण में अपने अधिकारों की वैधता स्थापित करने के लिए उनके द्वारा अपनाए गए तंत्रों पर जोर दिया गया है। साथ ही, दिल्ली सल्तनत की इन जटिल राजनीतिक स्थितियों, रजिया सुलतान के शासन-प्रक्रिया और तुर्की कुलीनों के बीच संघर्ष के परिणामों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

भारत के ऐतिहासिक कालखंड में दिल्ली सल्तनत एक अपेक्षाकृत नई राजनीतिक इकाई थी, जिसकी विशेषता लगातार सत्ता संघर्ष और विकसित प्रशासनिक संरचनाएँ प्रदान करना माना जाता है। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद पुरुष उत्तराधिकारियों के अस्तित्व के बावजूद राजगद्दी रजिया को दे दी गई। रजिया का प्रारंभिक जीवन दरबार की राजनीति और सरकार की पेचीदगियों से परिचित होने से चिह्नित था। शाही दरबार की भव्य दीवारों के भीतर पली-बढ़ी, उसने साम्राज्य पर शासन करने की जटिलताओं के बारे में जानकारी हासिल की। इल्तुतमिश ने उसकी बुद्धि और क्षमता को पहचाना, उसकी शिक्षा को बढ़ावा दिया और उसे एक ऐसी भूमिका के लिए तैयार किया जो आमतौर पर पुरुष उत्तराधिकारियों के लिए आरक्षित होती है। रजिया सुल्ताना का पालन-पोषण भी पारंपरिक लैंगिक मानदंडों के विपरीत था, क्योंकि उन्हें विशिष्ट शिक्षा प्रदान की गई थी जो उस समय की महिलाओं को शायद ही कभी दी जाती थी। रजिया सुल्तान की शिक्षा में सैन्य रणनीति, राज्य प्रशासन और कूटनीति में कठोर प्रशिक्षण शामिल था - कौशल जो आमतौर पर पुरुष उत्तराधिकारियों के लिए आरक्षित होते हैं। इस दूरदर्शी तैयारी ने उनके ऐतिहासिक शासनकाल की नींव रखी। शाही दरबार में पली-बढ़ी, वह राजनीतिक गतिशीलता, गठबंधनों और प्रतिद्वंद्विता से परिचित हुई, जिसने बाद में दिल्ली सल्तनत की पहली महिला शासक के रूप में उनके नेतृत्व को प्रभावित किया। हालाँकि, रजिया के सत्ता ग्रहण को लेकर तुर्की कुलीन-वर्ग, जिन्हें **'चहलगानी'**[1] से प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। मुख्य रूप से तुर्की मूल के ये कुलीन, एक महिला शासक को अपने प्रभाव और प्रचलित पितृसत्तात्मक व्यवस्था के लिए खतरा मानते थे। इस विरोध के बावजूद रजिया 1236 ई. में 'सुल्तान' बनने के लिए पर्याप्त समर्थन जुटाने में सफल रही जिसने राजनीतिक रूप से उथल-पुथल भरे लेकिन प्रतीकात्मक रूप से महत्वपूर्ण शासनकाल की शुरुआत की। सत्ता का एकीकरण और प्रशासनिक सुधार रजिया सुल्तान की सबसे बड़ी राजनीतिक चुनौती थी। उसे तुर्की अभिजात वर्ग और क्षेत्रीय शासकों पर अपना अधिकार जताना था। 'चहलगानी' की दृढ़ शक्ति का मुकाबला करने के लिए, उन्होंने कई रणनीतिक उपाय अपनाए। मसलन, रजिया ने वंश या जातीयता के बजाय योग्यता के आधार पर व्यक्तियों को पदोन्नत किया। उनके सबसे विवादास्पद लेकिन

राजनीतिक रूप से सोचे-समझे कदमों में से एक था - **'जमाल-उद-दीन याकूत'**[2]। इसने तुर्की रईसों के प्रभुत्व को चुनौती दी थी।

रजिया सुल्तान अक्सर सार्वजनिक रूप से भी पुरुष पोशाक में ही रहती थी और राज्य के मामलों में भाग लेती थी। वह पुरुष सत्ता और उनके मानदंडों को तोड़ती थी और 'सुल्ताना' के बजाय 'सुल्तान' के रूप में अपनी स्थिति को मजबूत करती थी। उनके स्वभाव में ही ताकत की खनक थी। रजिया ने क्षेत्रीय शासकों की स्वायत्तता पर अंकुश लगाकर और प्रांतीय अधिकार क्षेत्रों पर सल्तनत की प्रधानता लागू करके सत्ता को केंद्रीकृत करने की कोशिश की। उन्होंने केंद्रीय खजाने और सैन्य तंत्र को मजबूत करने के लिए अपने पिता की प्रशासनिक और राजकोषीय सुधारों की नीतियों को भी जारी रखा।

रजिया के राजनीतिक कदमों ने अनिवार्य रूप से प्रतिक्रिया को ही जन्म दिया। कुलीन वर्ग, विशेष रूप से **'चहलगानी'** उनकी नीतियों को अपने विशेषाधिकारों का सीधा अपमान मानते थे। गैर-तुर्की अधिकारियों पर उनकी निर्भरता और उनके अपरंपरागत सार्वजनिक व्यक्तित्व को बढ़ती शत्रुता का सामना करना पड़ा। 1239 ई. में एक बड़ा विद्रोह हुआ, जिसका नेतृत्व भटिंडा के गवर्नर मलिक अल्तुनिया ने किया। दिलचस्प बात यह है कि अल्तुनिया कभी रजिया का समर्थक था, लेकिन असंतुष्ट कुलीनों के प्रभाव में आकर उसके खिलाफ हो गया। इस विद्रोह ने रजिया के शासन के अंत की शुरुआत की। हालाँकि उसने अपनी गद्दी वापस पाने के लिए अल्तुनिया से बातचीत करने और यहाँ तक कि उससे शादी करने का प्रयास किया।

अपने संक्षिप्त शासनकाल के बावजूद रजिया सुल्तान ने अपने प्रभुत्व को स्थापित करने और विद्रोहों को दबाने के लिए कई सैन्य अभियानों का नेतृत्व किया। सैनिकों को आदेश देने की उनकी क्षमता और युद्ध में उनकी भागीदारी ने उन्हें अपने सैनिकों का सम्मान दिलाया। उनकी सैन्य रणनीतियों में से एक राजधानी को मजबूत करना और तेजी से तैनाती करने में एक स्थायी और सक्षम सेना को बनाए रखना था। हाल ही में शोधकर्ताओं ने भी यह पाया कि, "रजिया सुल्ताना की विरासत उनकी बौद्धिक और प्रशासनिक उपलब्धियों से कहीं आगे जाती है; यह उनकी सैन्य शक्ति तक फैली हुई है। ऐसे समय में जब महिलाएं युद्ध के मैदान से शायद ही कभी जुड़ी होती थीं, रजिया ने सेनाओं की सक्रिय कमान संभालकर और सैन्य अभियानों का नेतृत्व करके परंपराओं को चुनौती दी। उनकी रणनीतिक सूझबूझ और दृढ़ संकल्प ने उन्हें एक दुर्जेय सैन्य नेता के रूप में चिह्नित किया। रजिया सुल्ताना की सैन्य उपलब्धियों में यह सफल अभियान भी शामिल था जिससे दिल्ली सल्तनत की सीमाओं का विस्तार हुआ। उसने प्रतिद्वंद्वी गुटों और बाहरी खतरों से चुनौतियों का सामना किया, जिससे उसने अपने साम्राज्य की सुरक्षा बनाए रखने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन भी किया।"[3] साथ ही, उन्होंने प्रांतों और उसकी राजधानी के बीच संचार लाइनों में भी सुधार किया, जिससे विद्रोहों पर तेजी से कार्यवाही संभव हुई। खुफिया जानकारी जुटाने और कूटनीतिक पहुँच पर उनका जोर राज्य की गहरी समझ को दर्शाता है। उनके शासनकाल के दौरान, दिल्ली सल्तनत ने आर्थिक समृद्धि और प्रशासनिक सुधारों का दौर देखा। उन्होंने शासन में गहरी रुचि दिखाई,

कुशल कर संग्रह, व्यापार विनियमन और बुनियादी ढाँचे के विकास पर ध्यान केंद्रित किया। उनके प्रयासों ने एक अधिक स्थिर और संपन्न अर्थव्यवस्था में योगदान दिया, जिससे अंतरराष्ट्रीय मंच पर उनकी स्थिति में सुधार हुआ।

रजिया ने सामाजिक प्रगति के लिए शिक्षा और बौद्धिक गतिविधियों के महत्व को भी पहचाना। उन्होंने विद्वानों, कवियों और कलाकारों को संरक्षण दिया, जिससे सीखने और सांस्कृतिक विकास के लिए अनुकूल माहौल बना। शिक्षा पर उनका जोर सैन्य प्रशिक्षण तक बढ़ा। उन्होंने सैन्य अभियानों में सक्रिय रूप से भाग लेकर लैंगिक बाधाओं को तोड़ना जारी रखा। उनके शासन में, "शिक्षा के संस्थान फले-फूले और बौद्धिक बहस को बढ़ावा मिला। शिक्षा के प्रति इस प्रतिबद्धता ने महिलाओं और पुरुषों को समान रूप से विभिन्न क्षेत्रों में सार्थक योगदान देने के लिए सशक्त बनाया। रजिया के शासनकाल ने एक ऐसे समाज में प्रगति की एक झलक प्रदान की, जो अक्सर महिलाओं की क्षमताओं को कम आंकता था। शिक्षा और बौद्धिक विकास को बढ़ावा देने के उनके प्रयासों ने एक अधिक समावेशी और प्रबुद्ध समाज की नींव रखी। जिस तरह समय के साथ कांस्य की चमक और ताकत बढ़ती जाती है, उसी तरह रजिया के शासनकाल ने उन्नति के एक युग को रोशन किया। इसने ऐतिहासिक चुनौतियों के बीच सशक्तिकरण लाया।"[4]

रजिया सुल्ताना के शासन काल में व्यापार में वृद्धि और करों में कमी के कारण अर्थव्यवस्था ख़ूब फली-फूली। बाजारों के निर्माण से वाणिज्य को बढ़ावा मिला तथा कारीगरों और व्यापारियों को मंच उपलब्ध हुआ। कृषि में प्रगति ने संकट के दौरान खाद्य सुरक्षा और स्थिरता सुनिश्चित की। कारीगरों और शिल्पकारों को समर्थन मिलने से उनके काम को बढ़ावा मिला और व्यापार के अवसर बढ़े। मानकीकृत मुद्रा **'टका'**[5] के विकास से व्यापार विस्तार और आर्थिक विकास में मदद मिली।

रजिया का शासन उस समय के इस्लामी और भारतीय समाजों के लिंग मानदंडों के लिए एक सीधी चुनौती था। उनके शासनकाल ने उलेमा और कुलीन वर्ग के भीतर नेतृत्व में महिलाओं की भूमिका पर गहन बहस को जन्म दिया। पुरुषों की पोशाक अपनाकर और सार्वजनिक दर्शकों (दरबार) में भाग लेकर, उन्होंने शासन के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व को फिर से परिभाषित किया। शिलालेखों और सिक्कों में उनका उल्लेख पुरुषोचित उपाधियों के साथ किया गया है, जो उनकी भूमिका को एक पत्नी या रानी माँ के रूप में नहीं बल्कि एक संप्रभु शासक के रूप में पुष्ट करता है। पुरुषोचित अधिकार का यह रणनीतिक विनियोग एक पितृसत्तात्मक समाज में राजनीतिक अस्तित्व के लिए आवश्यक था।

रजिया के अंतिम वर्ष विश्वासघात और राजनीतिक अलगाव से भरे हुए थे। अल्तुनिया के द्वारा पकड़े जाने और अस्थायी सुलह के बाद राजसिंहासन पर अपना दावा मजबूत करने के लिए एक रणनीतिक कदम उठाते हुए रजिया सुल्ताना ने लाहौर के इस कुलीन व्यक्ति मलिक अल्तुनिया से विवाह कर लिया। हालाँकि, यह विवाह अल्पकालिक साबित हुआ। कुछ लोगों का मानना है कि "यह एक राजनीतिक गठबंधन था, जबकि अन्य लोग इसके गहरे संबंध

की ओर संकेत करते हैं। उन्होंने दिल्ली को फिर से अपने कब्जे में लेने का प्रयास किया, लेकिन वह हार गईं। 1240 ई. में कैथल के पास अल्तुनिया के साथ उनकी हत्या कर दी गई।"[6]

उनकी मृत्यु के बाद दिल्ली सल्तनत में महिलाओं के राजनीतिक पहुँच में गिरावट देखा गया। इसके बाद फिर 'चहलगानी' ने एक पुरुष शासक को ही दिल्ली की गद्दी पर बहाल किया। हालाँकि रजिया के शासन के हर मानदण्डों को इतिहासकारों ने एक 'प्रगतिशील प्रयोग' के बजाय एक 'चेतावनी कथा' के रूप में चित्रित किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने छोटे शासनकाल के बावजूद रजिया सुल्तान की राजनीतिक विरासत व्यापक विद्वानों के बहस का विषय रही है। **इसामी** और **मिन्हाज-ए-सिराज** जैसे कुछ इतिहासकारों ने अपने लैंगिक पूर्वाग्रहों और राजनीतिक संबद्धताओं के आधार पर परस्पर विरोधी आख्यान प्रस्तुत किए। समकालीन इतिहासकार रजिया को एक सक्षम और दूरदर्शी शासक के रूप में देखते हैं, जिसका शासन काल गहरी स्त्री-द्वेष और कुलीन प्रतिरोध के कारण छोटा पड़ गया। उनके जीवन ने कई साहित्यिक और लोकप्रिय प्रस्तुतियों को प्रेरित किया है, जो एक जटिल विरासत को दर्शाता है जो प्रशंसा और त्रासदी दोनों को जोड़ती है। वह महिला सशक्तिकरण का प्रतीक बनी हुई हैं और सत्ता में महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली ऐतिहासिक चुनौतियों की याद दिलाती हैं।

निष्कर्ष :

रजिया सुल्तान का राजनीतिक कार्य अपने समय और समाज की दृष्टि से क्रांतिकारी था। एक ऐसे युग में जहाँ महिला नेतृत्व लगभग न के बराबर था, उन्होंने प्रशासनिक कौशल, रणनीतिक नियुक्तियों, सैन्य कार्रवाई और लैंगिक भूमिकाओं की 'प्रतीकात्मक अवज्ञा' के संयोजन के माध्यम से खुद को एक संप्रभु शासक के रूप में स्थापित किया। अधिकार को केंद्रीकृत करने, नौकरशाही को पेशेवर बनाने और कुलीन प्रभुत्व को चुनौती देने के उनके प्रयास एक कुशल और समावेशी राज्य की उनकी दृष्टि को रेखांकित करती है। हालाँकि उनका पतन सामंती और पितृसत्तात्मक व्यवस्था में परिवर्तनकामी कार्यों को देखते हुए उनके विरोधी नेताओं की शक्ति और सीमा को भी रेखांकित करती है। एक महिला शासक द्वारा तुर्की कुलीन वर्ग का मुखर प्रतिरोध और तत्कालीन दिल्ली सल्तनत की नाजुक राजनीतिक माहौल भी उनके पतन में योगदान दिया। कहा जा सकता है कि रजिया सुल्तान का शासनकाल बहुत ही संक्षिप्त था लेकिन यह भारत के राजनीतिक इतिहास में एक ऐतिहासिक क्षण के रूप आज भी प्रतिबिंबित होती है। उनकी शासकीय जीवन की कहानी सार्वभौमिक रोमांच पैदा करती है। रजिया सुल्तान की यह कहानी न सिर्फ़ शासकीय व्यवस्था की उज्ज्वल छवि के रूप में पढ़ी-देखी जाती है, बल्कि यह मध्ययुगीन दक्षिण एशिया में सत्ता, लिंग और शासन की जटिलताओं को समझने-परीक्षण करने के लिए एक 'वसीयतनामा' के रूप में कार्य करती रहेगी। उनके राजनीतिक कार्यों के माध्यम से हम अधिकार, प्रतिरोध और जीवन की गतिशीलता में सुगम अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं जो विभिन्न युगों में नेतृत्व को परिभाषित करती है।

सन्दर्भ एवं पाद टिप्पणी

1. **चहलगानी**, जिसे तुर्कान-ए-चहलगानी या दल चालीसा भी कहा जाता है, दिल्ली सल्तनत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण समूह था। यह 40 तुर्क गुलाम अमीरों का एक समूह था, जो 13वीं और 14वीं शताब्दी में दिल्ली सल्तनत की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।
2. **जमाल उद-दीन याकूत** जिसे 'याकूत' भी कहा जाता है, एक अफ्रीकी गुलाम था जो बाद में कुलीन बन गया था और वह रजिया सुल्तान का विश्वासपात्र था इस कारण दिल्ली सल्तनत का एक भरोसेमंद सलाहकार बन गया था। रजिया सुल्तान ने उसे दरबार में एक प्रभावशाली सदस्य का दर्जा दिया हुआ था। दरबार के अन्य सदस्यों के बीच व्यापक रूप से अफवाह फैल गई कि वह रानी का प्रेमी है। समकालीन इतिहासकार भी यही मानते थे। इब्नबतूता सहित कई इतिहासकार यह मानते हैं कि उनका संबंध अवैध और सार्वजनिक रूप से बहुत अंतरंग था।
3. 9 अप्रैल, 2025 को प्रकाशित निधि कुकरेजा के शोधपूर्ण आलेख से; https://www.cheggindia.com/general-knowledge/razia-sultana/#h-razia-sultana-s-military-prow%D0%B5ss-nbsp
4. वही; पूर्वोद्धृत।
5. **'टका' -** दिल्ली सल्तनत ने ही पहली बार इस **'टंका'** नाम के मुद्रा की चलन स्थापित की। इसमें मूल इकाइयाँ चाँदी का टंका था जिसका वजन एक तोला 96 रत्ती (11.2 ग्राम) होता था। टंका 48 बिलियन जीतल से बना था जिसमें 2 रत्ती चाँदी और तांबा मिला हुआ था, जिसका कुल वजन लगभग 3.5 ग्राम था। दिल्ली में ढाले गए चांदी के टंका पर खलीफा अल-मुंतसिर और इल्तुतमिश का नाम और उपाधियाँ अंकित हैं। अभी भी इस 'टंका' को अपने पड़ोसी देश बांग्लादेश में 'टका' बोला जाता है।
6. 'निधि कुकरेजा के लेख से उद्धरित'; वही; पूर्वोद्धृत।

पता: रोहित रंजन
मार्फ़त मदनलाल गुप्ता, सिद्धि विनायक होटल के समीप, जगन्नाथपुर, प. सिंहभूम (झारखंड) 833203
मो: 9809311115

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 116-119
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मानव भाषाः लक्षण, प्रवृत्ति और विशेषताएँ

सविता अधाना, सहायक–प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
शहीद स्मारक राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय तिगाँव, फरीदाबाद

भूमिका :– मानव मन के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होती है। मानव समाज के विचार–विनिमय का माध्यम भाषा है। लेकिन भाषा पर केवल मनुष्य का एकाधिकार या भाषा केवल मनुष्यों की बपौती है ऐसा मानना सही नहीं है क्योंकि मानवेतर बहुत सारे प्राणी किसी न किसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करते है। प्राणी जगत के साथ–साथ पेड़–पौधों की भी अपनी भाषा होती है ऐसा अनुमान वैज्ञानिकों ने लगाया है। इस बात का प्रमाण हमें मधुमक्खियों की नृत्य भाषा जिसमें वह अलग–अलग स्थिति में अलग–अलग प्रकार का नृत्य कर अपनी साथी मधुमक्खियों को संकेत देती है। इसी प्रकार पक्षियों में बोलने, गाने व नृत्य की भाषा है जिससे वह अपने साथियों से अपनी अभिव्यक्ति करते हैं। मोर पक्षी का नृत्य अपने साथी को प्रभावित करने के रूप में प्रसिद्ध अभिव्यक्ति है। स्तनपायी प्राणियों में बन्दर, लंगूर, बैबून, गिबन, गोरिल्ला आदि की भाषा, डालफिन की भाषा, जलीय जीवों इत्यादि की भाषा को समझा जा सकता है। परन्तु मानवेतर भाषा हमारी भाषा के समान प्रगतिशील व सुसंस्कृत नहीं होती है। काल, समय और वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार ढलने की विशेषता के कारण यह विशिष्ट है।

"भाषा शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना है जिसका अर्थ है – 'बोलना' या 'कहना' अर्थात्, भाषा वह है जिसे बोला जाए।"[1]

संस्कृत आचार्य महर्षि पतंजलि ने पाणिनी की अष्टाधयायी के महाभाष्य में भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी गई है –"व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाच!।"[2]

अमर कोष में भाषा को वाणी का पर्याय बताते हुए कहा गया है – ब्राह्म तु भारती गीर् वाक् वाणी सरस्वती।"[3]

भाषा की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध वैयाकरण प० कामताप्रसाद गुरु लिखते हैं, "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली–भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।"[4]

भाषा की परिभाषा देते हुए डॉ० भोलानाथ तिवारी अपनी पुस्तक भाषा विज्ञान में स्पष्ट करते है कि, "भाषा उच्चारण–अवयवों से उच्चारित, यादृच्छिक (Arbitrary) ध्वनि–प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज–विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।"[5]

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनसार, "उच्चारित ध्वनि–संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।"[6]

विदेशी विद्वान प्लेटो का भाषा के विषय में कहना है कि "विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वहीं जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है जो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं। "विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वहीं जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है जो उसे भाषा की संज्ञा देते है।"

इसी प्रकार का मत हेनरी स्वीट प्रकट करते है, जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उसे भाषा कहते है।"[7]

विद्वान वेन्द्रिय कहते है कि, "भाषा एक तरह का संकेत है। संकेत से आशय उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है ये प्रतीक कई प्रकार के होते है, जैसे नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य और स्पर्शग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से कर्णग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है।"[8]

इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के विचारों से अवगत होकर हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कह सकते है कि "भाषा मानव मुखोच्चस्ति, यादृच्छिक, ध्वनि–प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से एक भाषा समुदाय के सदस्य परस्पर विचार–विनिमय करते है।"[9]

भाषा के अभिलक्षण / प्रवृत्ति / विशेषताएँ :– यहाँ भाषा से आशय है 'मनुष्य की भाषा' तथा अभिलक्षण से आशय है 'विशेषता' या 'मूलभूत लक्षण'।"[10]

मनुष्य भाषा के यह अभिलक्षण या विशेषताएं ही मनुष्य भाषा को अन्य प्राणियों की भाषा से अलग बनाते है। अभिलक्षणों की संख्या के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं "हॉकिट इस प्रसंग में सात अभिलक्षणों का उल्लेख करते हैं। कुछ अन्य लोगों ने इससे कुछ अधिक अभिलक्षणों का उल्लेख किया है। मुख्य अभिलक्षण निम्नांकित नौ–दस माने जा सकते हैं।"[11]

1. **यादृच्छिकता:–** 'यादृच्छिक' शब्द का अर्थ हैं 'जैसी इच्छा हो' अथवा 'माना हुआ'। ध्वनि और अर्थ के आपसी सम्बन्ध से उभरने वाली संकल्पना को ध्वनि–प्रतीक कहते हैं। यह ध्वनि–प्रतीक ध्वनि कर्णग्राह्य होने के पश्चात् नेत्रग्राह्य रूप में चित्र–संकल्पना के रूप में व्यक्तिगत इच्छा से स्वीकृत होकर फिर उसे समाज सापेक्ष स्वीकृति मिलती है। वास्तव में हमारी भाषा में किसी वस्तु या भाव का किसी शब्द से तार्किक या सहज–स्वाभाविक संबंध नहीं है। यह पहले व्यक्ति व फिर समाज द्वारा इच्छा से माना हुआ सम्बन्ध है। एक ही प्रकार वस्तु का नाम संसार की अलग–अलग भाषाओं में अपनी इच्छानुसार अलग–अलग ही है। यह इस बात का प्रमाण है कि सबकी प्रतीक व्यवस्था उक्तभाषा को प्रयोग में लाने वाले मानव समुदाय द्वारा मानी गई है। यदि ऐसा नहीं होता तो "पानी के लिए सभी भाषाएँ पानी का प्रयोग का ही प्रयोग करती अंग्रेजी में 'वाटर' का प्रयोग न करती, न फारसी 'आब' का और न रूसी 'वदा' का।"[12]
   इसी प्रकार हम यह यादृच्छिकता शब्द स्तर से व्याकरण के स्तर पर रूप तथा वाच्य रचना तक व्याप्त है।
2. **मानव मुखोच्चरित :–** भाषा का संबंध मुख्य रूप से ध्वनि से है ध्वनि की उत्पत्ति दो वस्तुओं के आपस में टकराने या स्पर्श या घर्षण के रूप में मानते हैं। मानव भाषा की उत्पत्ति भी मुखोच्चरित–उच्चारणावयवों के कारण होती है। विश्वास वायु का उच्चारणावयवों से टकराने पर जो ध्वनियां उत्पन्न होती है वहीं भाषा का आधार बनती है। "भाषा–विज्ञान के अन्तर्गत मुख्यत : सांकेतिक न करके मानव मुख के विभिन्न अवयवों के सहयोग से उच्चारित भाषा का अध्ययन किया जा सता है। विशेष संदर्भों में कुछ अन्य सार्थक ध्वनि–संकेतों का भी प्रयोग किया जाता है; यथा– कार का हार्न, मन्दिर की घण्टियाँ बजना, किन्तु भाषा–विज्ञान के अनुसार इसे भाषा नहीं कह सकते है।"[13]
3. **सम्प्रेषणीयता :–** भाषा विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम है। यहीं आदान–प्रदान भाषा का मुख्य गुण हैं जिसे सम्प्रेषणीयता कहा जाता हैं। विचार–विनिमय करते हुए हम अपने विचारों को दूसरों के समक्ष प्रकट करना व सहजता से पूर्ण रूप में उनके विचारों को समझना सफल सम्प्रेषण कहलाता है। यह सम्प्रेषण मुख्यतः मौखिक, लिखित व गौण रूप में सांकेतिक रूप में चलता रहता है।
   विभिन्न प्रकार के चिन्ह प्रतीक संकेतों के माध्यम से भी भावभिव्यक्ति होती है परन्तु यह संकेत चिन्ह व प्रतीक अपने विशिष्ट अर्थ के रूप में पूर्व में ग्राह्य हो चुके हो तभी। जैसे चौराहे की तीनों बत्तियों का अर्थ निर्धारित है तो एक ही अर्थ में सबने ग्रहण किया है यदि इन का अर्थ किसी व्यक्ति को नहीं पता तो यह अपूर्ण सम्प्रेषण होगा।
4. **सृजनात्मकता:–** भाषा में शब्द और रूप तो आमतौर पर सीमित होते हैं लेकिन उन्हीं का आधार बनाकर सब अपने भाषा ज्ञान व विवेक के अनुसार नित्य नए–नए असीमित वाक्यों का सृजन करके उनका प्रयोग करते हैं। विचार–विनिमय के लिए हम रोज असीमित वाक्यों का निर्माण कर उनका प्रयोग भाषा के मौखित, लिखित रूप में करते हैं।
   नए–नए वाक्यों के प्रयोग करने पर भी वक्ता और श्रोता को अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होती यहीं सृजनात्मकता कहलाती है जैसे 'मैं', 'तुम', 'हम', 'लिखवाया' चार शब्दों से कई प्रकार के वाक्य बनाए जा सकते हैं जैसे 'मैंने तुम से लिखवाया', 'तुमने मुझ से लिखवाया', 'हमने तुमसे लिखवाया', 'तुमने हमसे लिखवाया' आदि। मानव भाषा की यह सृजनात्मक शक्ति इसको अन्य प्राणियों की भाषा से अलग बनाती है।

5. **अनुकरण ग्राह्ता :–** मनुष्य अपनी भाषा अपने परिवार, समाज व आस–पास के भाषिक वातावरण में प्रयुक्त भाषा का अनुकरण करके सीखता है "शिशु बौद्विक विकास के साथ अपने आस–पास के लोगों की ध्वनियों के अनुकरण के आधार पर उन्हीं के समान प्रयोग करने का प्रयत्न करता है प्रारम्भ में पा, , बा आदि ध्वनियों का अनुकरण करता है फिर सामान्य शब्दों को अपना लेता है। यह अनुकरण तभी सम्भव होता है जब उसे सीखने योग्य व्यवाहरिक वातावरण प्राप्त हो।"[14]
भाषा विहीन वातावरण निर्जन स्थान पर यदि किसी शिशु को पाला जाए तो यह शिशुभाषा व्यवहार का अनुकरण न कर पाने के कारण किसी भी भाषा को सिवाय निरर्थक ध्वनियों कें उच्चारण के अलावा नहीं बोल व समझ पाएगा।
6. **आनुवंशिकताः–** आनुवांशिकता (Hureditaty) वह गुण व विशेषताएं होती है जो हमें हमारे पूर्वजों से प्राप्त होती है। त्वचा का रंग, आँखें, नाक–नक्शा व शारीरिक बनावट से लेकर आंतरिक गुणों में साहस, डर यहां तक बिमारियाँ और उनसे लड़ने की शक्ति, बहुत सार जटिलताएँ इत्यादि का कारण आनुवंशिकता का गुण है। यह हमें प्राकृतिक रूप से प्राप्त होता है इसके लिए प्राणी को कोई अतिरिक्त प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। लेकिन मानव भाषा आनुवंशिक नहीं होती यह मनुष्य को सीखनी पड़ती है लगातार प्रयास व अभ्यास से मानव भाषा विकसित होती चली जाती है। भाषिक क्षमता मनुष्य में जन्मजात होती है लेकिन इस क्षमता का सही प्रयोग भाषा के रूप में करना उसे सीखना पड़ता है। मनुष्य की भाषा आनुवंशिक नहीं होती इस बात का प्रमाण इस रूप में भी देखा जा सकता है कि विदेशी दम्पति के बच्चे को हिन्दी भाषी परिवार लगातार लगभग दो या तीन साल तक पालन–पोषण करे तो वह हिन्दी भाषा व्यवहार के माहौल के कारण हिन्दी भाषा सीखने लगता है। उसी प्रकार इस स्थिति को उल्टा कर दे तो विदेशी माहौल व विदेशी भाषा व्यवहार के कारण भारतीय हिन्दी भाषी दम्पति का बच्चा विदेशी भाषा बोलने लगेगा।" इस तरह मानव भाषा आनुवंशिक नहीं होती हैं, जैसे कि अन्य जीव–जन्तुओं की भाषाएँ होती है।"[15]
7. **भाषा सामाजिक सम्पत्ति और सर्वव्यापक है :–** भाषा का व्यवहार व विकास समाज सापेक्ष है। भाषा किसी एक व्यक्ति या एक समुदाय के एकाधिकार से परे है। इसके साथ–साथ इसका अस्तित्व सर्वव्यापक रहता है। संसार के सभी कामों का सम्पादन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भाषा के माध्यम से होता है। ज्ञान प्राप्ति का आधार भाषा है। "व्यक्ति–व्यक्ति का सम्बन्ध या व्यक्ति–समाज का सम्बन्ध भाषा के अभाव में असम्भव है। भतृहरि ने वाक्यपदीय में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है –
न सोअस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुबिद्धमिव ज्ञानं सर्व शब्देन भासते।"[16]
8. **भाषा की परिवर्तन शीलताः–** भाषा प्राचीन से आधुनिक समय तक चिर परिवर्तनशील है। यह परिवर्तनशीलता हमें मानवेतर जीवों की भाषा में नहीं दिखाई पड़ती। पशु–पक्षियों की भाषा में हमें पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपरिवर्तनशीलता दिखाई पड़ती है। जैसे कुत्ते, बिल्ली, चिड़िया इत्यादि की भाषा। किन्तु मानव–भाषा हमेशा परिवर्तित होती रहती है। जैसे पहले समय में संस्कृत में 'साहस' का अर्थ गलत कार्य और नकारात्मक या अनैतिक कार्य के लिए प्रयुक्त होता था लेकिन अब हिन्दी भाषा में इसे सकारात्मक और अच्छे कार्य में उत्साह दिखाने के अर्थ में माना जाता है। इस प्रकार भाषा की परिवर्तनशीलता इसे अन्य जीवों की भाषाओं से अलग बनाती है।
9. **द्वैतताः–** मानव भाषा में वाक्य या उच्चार दो स्तर होते हैं। जिसमें एक स्तर की इकाइयां सार्थक होती है तथा दूसरे स्तर की इकाइयां अर्थहीन होती हैं। इन्हीं दो स्तरों की स्थिति भाषा की द्वैतता कहलाती है। इन सार्थक इकाइयों को रूपिम जिसमें संयुक्त रूप में शब्द, धातु, प्रत्यय, उपसर्ग, कारक चिन्ह आदि आते हैं इनके स्वतन्त्र अर्थ होते हैं एक वाक्य में प्रयुक्त होकर नए भाव व विचार को दर्शाते हैं। जैसे 'कमल का फूल बहुत सुन्दर' है वाक्य में सार्थक इकाइयां या ये कहें रूपिम है। जैसे कमल + का + फूल + बहुत + सुन्दर + है। दूसरे स्तर की इकाइयां वह ध्वनियां या वर्ण है जिनसे ये सार्थक ध्वनियां या वर्ण बने है। जैसे कमल में क् + अ + म् + अ + ल् + अ, छः निरर्थक ध्वनियां है जिनपे योग से सार्थक कमल शब्द बना है। इस प्रकार भाषा में द्वैतता होती है।
10. **भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था तथा कठिनता से सरलता की ओर बढ़ती है :–** भाषाओं पर किए गए शोध जिसमें किसी भाषा के प्राचीनतम रूप से आधुनिक युग के भाषाई अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप संयोगावस्था में होता है तथा समय के साथ–साथ धीरे–धीरे

इसका स्वरूप वियोगावस्था की ओर बढ़ता रहता है। भाषा के संयोगावस्था से वियोगावस्था स्वरूप के ओर बढ़ने के तथ्य को हम इस प्रकार समझ सकते है कि 'भाषा की संयोगावस्था में वाक्य विभिन्न अवयव आपस में मिले हुए लिखे–बोले जाते हैं। परवर्ती अवस्था में यह संयोगावस्था धीरे–धीरे शिथिल होती जाती है; यथा–

रमेशस्य पुत्रः गृहं गच्छति। रमेश का पुत्र घर जाता है। 'रमेशस्य' तथा 'गच्छति' संयोगावस्था में प्रयुक्त हुए है। जबकि परवर्ती भाषा हिन्दी में 'रमेश का' और 'जाता है' वियोगावस्था में है।"[17]

यहीं स्थिति भाषा को कठिनता से सरलता की ओर अग्रसर करती है।

निष्कर्ष :– मानव के विकास में भाषा की भूमिका सर्वाधिक रहती है। एक–दूसरे को समझने और अपने भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम हमारी भाषा होती है। मानव भाषा की अनेक विशेषताओं के कारण यह अन्य प्राणियों की भाषा से भिन्न व श्रेष्ठ है जिसके कारण मनुष्य अपने विकास की सीढ़ी लगातार चढ़ता चला जा रहा है। भाषा का विकास और मानव का विकास कहीं न कहीं एक–दूसरे के पूरक बनते है। विश्व में मनुष्य के द्वारा अनेक भाषा व बोलियां बोली जाती है जिनकी अपनी–अपनी संरचनात्मक खूबियां है। मूल रूप में सभी भाषाओं का कार्य भावभिव्यक्ति और संप्रेषणशीलता है।

सन्दर्भः–

1. डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ–2
2. डॉ० नरेश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, पृष्ठ–2
3. वहीं पृष्ठ–2
4. वहीं पृष्ठ–2
5. डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ–04
6. डॉ० नरेश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, पृष्ठ–20
7. वहीं पृष्ठ–21
8. डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ–2
9. डॉ० नरेश मिश्र, भाषा विज्ञान और मानव हिंदी, पृष्ठ–21
10. डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ–11
11. वहीं पृष्ठ–12
12. वहीं पृष्ठ–12
13. डॉ० नरेश मिश्र, भाषा विज्ञान और मानव हिन्दी, पृष्ठ–21
14. वहीं पृष्ठ–29
15. डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ–16
16. डॉ० नरेश मिश्र, भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा, पृष्ठ–26 (वाक्यपदीय 123–24)
17. डॉ० नरेश मिश्र, भाषा विज्ञान और मानव हिन्दी, पृष्ठ–81

74044072870

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 120-123
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गंगा मैया : शोषित समाज के संघर्ष का एक जीवंत दस्तावेज

डॉ० पूजा, प्रशिक्षित स्नातक (हिंदी),
राजकीय बालिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, नंद नगरी, दिल्ली

गाँवों की वास्तविक पहचान किसानों से ही होती है। किसान गाँव का अनिवार्य अंग होता है। कृषक जीवन का आधार कृषि या खेती बारी है। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति कहीं न कहीं इससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़ा होता है। किसान वह है जिसके पास या तो थोड़ी बहुत अपनी जमीन होती है या फिर वह पास–पड़ोस के छोटे किसानों की जमीन बटाई पर लेकर मेहनत से खेती करता है। किसान हल–बैल रखता है, पशुपालन करता है और अपने कृशि–कर्म के प्रति निश्ठा रखता है। लेकिन श्रम–शोषण, आधुनिक युग के अर्थतंत्र का महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस व्यवस्था का सबसे अधिक शोषित वर्ग 'किसान' है। उपनिवेशवादी और जमींदारी व्यवस्था में किसान पूँजीवादी व्यवस्था का शिकार बना हुआ है। आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था के दबाव में वह जी तोड़ मेहनत के बावजूद भरपेट खाने और अपने परिवार को आवश्यक सुविधाओं को देने में स्वयं को असमर्थ पाता है। इसके अतिरिक्त अन्य लोग बिना श्रम किये ही रोबदार और आरामदेय जीवन बिताते हैं। परिणामस्वरूप वह निराष होने लगता है, श्रम के प्रति उसकी आस्था डगमगाने लगती है। अन्ततः ग्राम्य–जीवन का आधार किसान टूटने लगता है और अब तो बात आत्महत्या तक आ पहुँची है। अब हमारे सामने प्रश्न यह उठता है कि गाँव के लोगों ने श्रम करना क्यों छोड़ दिया? उसने दूसरों के दुख में शामिल होना क्यों बंद कर दिया? उसने सामूहिक जीवन के अमृत का पान करना क्यों छोड़ दिया उत्तर देना सहज नही है पर सच्चाई से मुँह मोड़ना उचित नही होगा।

"पहली हरित क्रान्ति ने किसानों, भूमिहीन श्रमिकों, दस्तकारों, शिल्पियों, कुटीर उद्योगों को तबाह किया और अब दूसरी हरित–क्रांति में खेतों पर कब्जा बहुराष्ट्रीय कंपनियों और कारपोरेट जगत का होगा। मंझोले किसान भी बेदखल हो जायेंगे। अब वैष्विक वित्तीय संस्थाएँ और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ ऐसी तकनीक का प्रयोग करेंगी, जिससे उनका कृशि क्षेत्र पर पूरा कब्जा हो जाये।.....यह बाजारवादी व्यवस्था है। बाजार की कोई नैतिकता नहीं होती कि वह हमारे स्वास्थ्य, पर्यावरण, प्रकृति और मूल्यों का भी ध्यान रखें। बाजार का गणित तो मुनाफे पर चलता है। जहाँ मुनाफा होता है वहाँ नैतिकता और मानवीयता नाम की कोई चीज नही होती।"[1] इस प्रकार हम देख सकते है कि हिन्दी उपन्यासों के दौर में एक लंबी यात्रा गाँवों ने तय की है। जिसमें पहला पड़ाव उपनिवेशवादी दौर के गाँव है तो दूसरा सामंतवादी दौर के। वर्तमान में तीसरा दौर बाजारवादी है जो गतिमान है पर जिन लेखकों ने गाँवो को अपने उपन्यास का केन्द्रीय विषय बनाया है, उनमें प्रमुखतः मुंशी–प्रेमचंद ने पहले दौर के गाँवों और नागार्जुन तथा भैरव प्रसाद गुप्त ने दूसरे दौर के गाँवों को चित्रित किया है। गुप्त जी का 'गंगा मैया' उपन्यास दूसरे दौर के यथार्थ का चित्रण करता है।

"गंगा मैया" गुप्त जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। इसमें लेखक की वर्ग चेतना और साम्यवाद के प्रति प्रतिबद्धता मुखरित है। इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य किसानों और जमींदारों के आपसी

संघर्ष और किसानों के विजय का चित्रण है। अभावग्रस्त ग्रामीणों के पारस्परिक वैमनस्य, बिरादरी के लोगों द्वारा ही कृषक वर्ग के हितों का विरोध, किसानों के विरूद्ध जमींदारों से मिली पुलिस के हथकंडे और रिश्वतखोरी, उच्चवर्गीय संस्कारों तथा रीति–रिवाजों का अनुकरण करते हुए मध्यवर्ग की परेशानी, मध्यवर्गीय हिंदू परिवारों में विधवाओं की स्थिति, प्रचलित रीति–रिवाजों कें खोखलेपन आदि का 'गंगा मैया' में उत्साह के साथ चित्रण किया गया है।"[2] 'गंगा मैया' छोटे कलेवर का उपन्यास होने पर भी लेखकीय दृष्टि को व्यापकता से प्रस्तुत करता है। इसका मूल सिद्धान्त है "यह धरती गंगा मैया की है, जो चाहे आये, मेहनत करे, कमाये, खाये! जमींदारों ने अगर इधर आँखें उठाई तो मैं उनकी आँखे फोड़ दूँगा।"[3] गंगा मैया उपन्यास का मुख्य नायक 'मटरू' नागार्जुन का बलचनमा और रेणु के चरित्तर कर्मकार की भाँति बड़े परिवर्तन की चाहत रखता है। यही कारण है कि वर्तमान राजनीतिक समझ के विरूद्ध 'गंगा मैया' ठेठ भारतीय जनता का जीवंत दस्तावेज है।' यह 'हिंदी उपन्यासों में जनक्रान्ति का प्रथम बीज है। इसमें जहाँ एक ओर जमींदार और समाज के ठेकेदार है वहीं दूसरी ओर इनके शोषण से छटपटाते, कराहते किसान है, जो शोषण के विरूद्ध लेखक की आवाज बने है।

'गंगा मैया' उपन्यास वैचारिक रूप से मार्क्सवाद का समर्थन करता है। 'मार्क्सवाद' के अनुसार समाज के इतिहास का आधार 'आर्थिक' है। प्रत्येक संघर्ष के पीछे 'अर्थ' एक बड़ा कारण होता है। 'गंगा मैया' उपन्यास के प्रथम अध्याय में ही यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है। जब गोपीचंद की विधवा भाभी के लापता होने की खबर सुनकर पुलिस उसके यहाँ पहुँचती है तो गाँव का मुखिया मूल बात समझाता है और दरोगा मामला ताड़ लेता है। "मुखिया समझ गया।..... भीड़ भगा दी गयी। फिर गोपीचंद के बयान दिये बिना ही दरोगा ने आप ही खाना–पूरियाँ कर ली। वारदात में लापता विधवा के एक हाथ में रस्सी और दूसरे हाथ में घड़ा थमाकर उसे कुएँ पर भेज दिया गया और उसका पाँव काई–जमीं कुएँ की जगत पर फिसलाकर, कुएँ में गिराकर, उसे मार डाला गया।"[4] पर प्रश्न यह उठता है कि यह सब हुआ कैसे? मुखिया ने दरोगा को कौन–सी जादुई छड़ी छुवाई जिससे अचानक यह सब संभव हो सका। गुप्त जी की सजग दृष्टि से वह जादू बच नही पाया है। वे लिखते हैं– "इधर गोपीचंद की थैली का मुँह खुला, उधर कानून का मुँह बंद हुआ। कहानी खत्म हो गयी।"[5] अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि न्याय की भावना की नींव भी स्वार्थ पर कायम रहती है।

"न्याय क्या है? इसका निर्धारण वे लोग करते हैं जिनके हाथों में व्यवस्था कायम करने का अधिकार होता है, जिनके हाथों में शक्ति होती है। जिस श्रेणी के हाथ में पैदावार के साधन रहते है, उसी श्रेणी के हाथ में शक्ति रहती है। उसी श्रेणी के निर्णय से दूसरी श्रेणियों को अपने जीवन का मार्ग निश्चित करना पड़ता है। पैदावार के साधनों की मालिक श्रेणी या शासक श्रेणी ही सदा इस बात का निश्चय करती है कि न्याय और अन्याय क्या है? जिस कायदे या कानून से इस श्रेणी के हितों की रक्षा हो, इनके हाथ में शक्ति बनी रहे, उसी तरीके और कायदे पर वे समाज को चलाना चाहते है और उसी कायदे और तरीके को वे अपने में न्याय समझते हैं।"[6] 'गंगा मैया' का एक पात्र गोपीचंद, जिसकी भाभी खो गयी है, एक बार जेल की हवा खाकर भी कुछ सीख नही पाया है। उसे क्या पता कि इस स्वार्थपरायण कानून के अनुसार किसी को भी सजा देने हेतु एक बार दाग लग जाने के बाद फिर किसी गवाही–शहादत की भी जरूरत नहीं होती। बेचारे गोपीचंद को कानून के बारे में कुछ भी नही पता था, वह तो गाँव का एक मातबर किसान था। उसकी भाभी घर की बहू थी, इज्जत थी, इस तरह लापता होकर उसने कुल की मान–मर्यादा पर तो बट्टा लगा ही दिया था। इसी लज्जा औद दुख के कारण वह चुप था। लेखक की यह टिप्पणी सार्थक है कि बिना कुछ 'अर्थ' के आदमी आज के दौर में भी बेकार है और कल भी बेकार था। उपन्यास के मूल में यह बात गर्भावस्था के भ्रूण की भाँति छिपी हुई है।

उपन्यास के पाँचवें अध्याय में गुप्त जी का जनवादी रूप निखरकर सामने आया। वे लिखते है– "कानून–कायदे की बात वे घर बैठे बघारा करें। मुझे कोई परवाह नहीं। मैं तो यही जानता हूँ कि यह धरती गंगा मैया की है। जो चाहे आये, मेहनत करे, कमाए, खाए! जमींदारों ने अगर इधर आँखे उठायी तो मैं उनकी आँखे फोड़ दूँगा"[7] मार्क्सवाद, जमींदारों और पूंजीपतियों के विरुद्ध मजदूरों और किसानों के पक्ष में खड़ा दिखाई देता है। मार्क्सवाद शोषण का अन्त कर समानता स्थापित करने के लिए मजदूर श्रेणी का

सत्ता में होना आवष्यक समझता है। चूँकि गुप्त जी भी इसी विचारधारा के लेखक थे अतः उनकी रचनाओं (गंगा मैया) में यह स्पश्ट रूप से देखा जा सकता है। "कहाँ रखा था कायदा–कानून उनका अब तक! मैंने मेहनत की, फसल उगायी, तो देखकर दाँत गड़ गये। चले है अब जमींदारी का हक जताने! आएँ न जरा हल कंधे पर लेकर! दिल्लगी है यहाँ खेती करना! भोले किसानों को बेवकूफ बनाकर रुपये ऐंठ लिये। बेचारे वे मेहनत करेंगे और मनसद पर बैठे गुलछर्रे उड़ाएंगें तुम्हारे जमींदार। यहाँ मैं नही चलने दूँगा यह सब।"[8]

गुप्त जी ने 'गंगा मैया' उपन्यास में आर्थिक शोषण के अतिरिक्त सामाजिक षोशण को भी दर्शाया हैं इसमें उन्होंने सामंती व्यवस्था और उससे पैदा हुए शोषण के साथ–साथ नैतिक सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं, संस्कारों और नारी के पतिव्रत धर्म के थोथे रूप को भी उजागर किया है। उनका मानना है कि जिस प्रकार शोषणकारी व्यवस्था से मुक्ति पाना सहज नहीं है, उसी प्रकार सामाजिक रूढ़ियों से भी मुक्ति पाना आसान नही है। इस उपन्यास में गोपी के पिता अपनी विधवा बहू को 'घर की देवी' तो मानते है पर बहू केवल मानिक की ही मानने को तैयार है। उपन्यास में नारी की पीड़ा को बखूबी दर्शाया गया है। "ऐसी विधवा का जीवन एक ठूंठ की तरह होता है, जिस पर कभी हरियाली नही आने की, कभी फल–फूल नहीं लगने के, व्यर्थ बिल्कुल व्यर्थ, धरती का व्यर्थ भार।.....गृहस्थ जीवन में शायद ऐसी विधवा का उपयोग लावन की ही तरह है, जिंदगी भर जलते रहना, जलकर गृहस्थी की सेवा करना, जिस सेवा के फल का भोग दूसरे भोगें और खुद वह राख होकर रह जाए"[9] यहाँ विधवा भाभी की पीड़ा को चित्रित कर गुप्त जी ने नारी–पीड़ा को आवाज दी है।

गोपी और भाभी को सामन्ती मूल्यों से मुक्ति दिलाने का गुप्त जी का प्रयास सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। गोपी का हरवाहा बिलरा निम्नवर्ग का व्यक्ति है जो भाभी को विधवा होने के कारण दी जाने वाली सजा और एकान्त दुख के विरूद्ध आवाज उठाता है। उसे किसी भी विधवा का जीवन भर तड़पना आश्चर्यजनक लगता है। गोपी जैसे उच्चवर्गीय सामन्ती परिवार में विधवा विवाह वर्जित है। वह भाभी से प्रश्न करता है– "मालकिन आपकी देह देखकर मुझे बड़ा दुख होता है। अभी आपकी उम्र ही क्या है? इसी उम्र से आपकी जिंदगी कैसे कटेगी? इतने ही दिनों में सोने की देह कैसे माटी हो गयी।"[10] इसके उत्तर में भाभी सामाजिक नियमों, बंधनों और रिवाजों का डर दिखाती है। वह अपनी विवशता प्रकट करती है। जिस पर बिलरा भड़क उठता है और कहता है– "यह कैसा रिवाज है मालकिन आपकी बिरादरी का? इस मामले में तो हमारी ही बिरादरी अच्छी है जो कोई बेवा इस तरह अपनी जिंदगी खराब करने को मजबूर नही।"[11] इस प्रकार हम देखते है कि गुप्त जी ने इसमें विधवा–विवाह का व्यावहारिक समाधान तो प्रस्तुत किया किंतु सरलीकरण करते हुए नही। गोपी के अन्तर्द्वन्द्वों के बीच हिन्दू समाज की रूढ़ियों को उन्होंने बेबाकी के साथ तिरस्कृत किया है। क्रूर मानवीय समाज की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि भाभी जैसी तमाम नारियाँ अपनी जिन्दा लाष को सफेद साड़ी में लपेटे ढो रही हैं। वास्तव में यह उपन्यास उन सामाजिक रूढ़ियों का कड़ा विरोध है जो मनुश्य को मनुश्य से दूर करती जा रही है।

'गंगा मैया' उपन्यास आरंभ से अन्त तक अपना उद्देष्य प्राप्त करता हुआ प्रतीत होता है। जहाँ एक ओर आर्थिक समस्या के केन्द्र में मटरू और जमींदारों का संघर्श है, वहीं सामाजिक समस्या के केन्द्र में गोपी और उसकी विधवा भाभी है। पर यह ध्यान से देखने पर पता चलता है कि ये दोनों समस्याएं आपस में जुड़ी हुई है। मटरू एक प्रगतिशील चेतना सम्पन्न किसान है। वह होरी की भाँति धर्मभीरू नहीं है। वह एक ओर किसान संगठन को मजबूती प्रदान करता है और दूसरी ओर जमींदारों के षोशण के विरूद्ध संघर्ष करता है। वह एक ओर तो किसानों को सामूहिक खेती करने के लिए प्रेरित करता है तो वहीं दूसरी ओर सामाजिक पुरातन रूढ़ियों के विरूद्ध संघर्ष करते हुए गोपी की विधवा भाभी का विवाह गोपी के साथ कराता है। जबकि विदुर गोपीचंद के पिता सामन्ती मूल्यों के दबाव से दबे हुए थे। ऐसे में "मटरू का विदुर गोपी के साथ विधवा भाभी का विवाह कराना नारी समस्या का प्रगतिवादी दृष्टि से व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। मटरू का सानिध्य प्राप्त कर गोपी में एक नया उत्साह जाग्रत है। वह व्यक्तिवाद के कुहासे को चीरकर किसान–संघर्श की विशाल धारा में सम्मिलित होता है। गंगा मैया का विविध कोणीय

किसान–संघर्ष निश्चय ही वर्गहीन समाज की दिशा में अग्रसर होता है।"[12] स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा सहित्य में पहली बार वर्ग चेतना की पहचान उभरकर सामने आती है और सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध संघर्ष की तस्वीर साफ दिखायी देती है।

'गंगा मैया' जनता का उपन्यास है। इसमें वर्णित वर्गीय–एकता, प्रकृति से सीधे आत्मीयता, स्वभाव की स्वच्छन्दता, अल्हड़ता निर्भीकता, सामन्ती संस्कारों के सम्पर्क में न आने का दुस्साहस जैसी विशेषताएं उसे जनता से जोड़ती है। उसे जीवंतता प्रदान करती है। एक बार सामन्तों की साजिश के सामने पराजित होने के बाद मटरू अनुभव की सीख को और अधिक धारदार व सटीक बना लेता है। मटरू के क्रियाकलापों से यह "सिद्ध होता है कि मार्क्सवाद कितना जीवित और सार्थक दर्शन है कि वह मनुष्य की हर मानवीय संभावना को रेखांकित करता है। आदमी के मूर्त अनुभवों से उसकी परिमाणात्मक संगत बैठ जाती है गुणात्मक संगति के लिए उस दर्शन का अध्ययन तथा संगठित शक्ति के भीतर सक्रियता की अनिवार्यता होती है।"[13]

निष्कर्षत: 'गंगा मैया' उपन्यास सामन्तवादी ताकतों के विरूद्ध किसानों द्वारा खून से खेली गयी होली है जिसमें मटरू और गोपी की जीत हुई है। इतना ही नहीं मटरू का दृढ़ चरित्र एक आदर्श है जो अपने दम पर समाज की जड़ता को तोड़कर उसे गतिशील बनाता है। गोपी से विधवा भाभी का विवाह कराना इसका प्रमाण है। संक्षेप में हम यह कह सकते है कि 'गंगा मैया' उपन्यास स्वतंत्रता के बाद लिखा गया 'शोषित समाज के संघर्ष का एक जीवंत दस्तावेज' है।

संदर्भ सूची :–

1. राकेश कुमार – (आर्यकल्प – मार्च 10) पृ० सं० 93
2. गोपालराय – हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली (2009), पृ० सं० 216
3. भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया, धारा प्रकाशन, 1–एफ/1, बेनीगंज, इलाहाबाद–1, (2000) पृ० सं० 28
4. भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया, धारा प्रकाशन, 1–ए/1, बेनीगंज, इलाहाबाद–1, (2000) पृ० सं० 7
5. भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया, धारा प्रकाशन, 1–ए/1, बेनीगंज, इलाहाबाद–1, (2000) पृ० सं० 7
6. यषपाल – मार्क्सवाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (2010), पृ० सं० 33
7. भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया, धारा प्रकाशन, 1–एफ/1, बेनीगंज, इलाहाबाद–1, (2000) पृ० सं० 28
8. भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया, धारा प्रकाशन, 1–एफ/1, बेनीगंज, इलाहाबाद–1, (2000) पृ० सं० 28
9. भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया, धारा प्रकाशन, 1–एफ/1, बेनीगंज, इलाहाबाद–1, (2000) पृ० सं० 33
10. भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया, धारा प्रकाशन, 1–एफ/1, बेनीगंज, इलाहाबाद–1, (2000) पृ० सं० 38
11. भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया, धारा प्रकाशन, 1–एफ/1, बेनीगंज, इलाहाबाद–1, (2000) पृ० सं० 39
12. गोपाल कृष्ण शर्मा – उपन्यास और समाज, तारामण्डल प्रकाशन, अलीगढ़, (1986) पृ० सं० 119
13. कमला प्रसाद – लेखन 3 –(संपादक – विद्याधर शुक्ल), पृ० सं० 149

मोबाईल नं० 9616843905
ई–मेल आईडी – poojamiss522@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 124-131
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा में योग का इतिहास-दर्शन और पतंजलि

जीवन कुमार साह, सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग, डिग्री कॉलेज जगन्नाथपुर (झारखंड)

शोध-सार : भारतीय ज्ञान परंपरा में **'योग'** को ज्ञान का एक उपादान कहा गया है। **'श्रीमद्भगवद्गीता'** में ज्ञानयोग को बुद्धियोग कहा गया है जिसका लक्ष्य आत्म साक्षात्कार है। अर्थात् यह वह मार्ग है जिसे बौद्धिक रूप से उन्मुख लोग पसंद करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का अध्याय चार ज्ञानयोग की व्याख्या के लिए समर्पित है जिसमें श्री कृष्ण कहते हैं कि 'ज्ञान सबसे शुद्ध है व्यक्ति की आत्मा की खोज है' फलत: योग भारतीय दर्शनों का एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में अवस्थित हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो योग शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए एक व्यवस्थित मार्ग है जो योग का उद्देश्य आत्मा का परमात्मा में सम्मिलन के साथ ही एकता प्राप्त करने का रहा है। पतंजलि के **'योगसूत्र'** योग के सिद्धांतों का महत्वपूर्ण स्रोत है जो भारतीय दर्शनों के गहने तत्वों का मार्ग भी है। योग भले ही आजकल व्यापक रूप से प्रचलित है, लेकिन उसकी उत्पत्ति पौराणिक है। मानव सभ्यता जितनी पुरानी है उतनी ही पुरानी योग की उत्पत्ति मानी गई है, लेकिन इस तथ्य को साबित करने का कोई ठोस सबूत मौजूद नहीं है इस क्षेत्र में व्यापक शोध के बावजूद भी योग की उत्पत्ति के संबंध में कोई ठोस परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं ऐसा माना जाता है कि भारत में योग की उत्पत्ति लगभग पांच हज़ार वर्ष पूर्व हुई थी, लेकिन कुछ पश्चिमी विद्वानों का मानना है योग की उत्पत्ति महात्मा बुद्ध के समय में हुई थी। हालाँकि सिंधु घाटी सभ्यता की खुदाई के दौरान बहुत ही आश्चर्यजनक तत्व उभर कर सामने आए इसमें इस सभ्यता के अस्तित्व वाले पत्थर पर आसन की मुद्रा में बैठे योगी के चित्र उत्कीर्ण मिले हैं। इस अध्ययन में हम सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर महर्षि पतंजलि द्वारा उद्भूत योग सिद्धांतों की समीक्षा करेंगे।

बीज शब्द : अनुशासन, उपादान, उन्मुख, उत्कीर्ण, उद्भूत, सार्वभौमिक चेतना

योग-दर्शन के बारे में : योग के बारे में हम यह कह सकते हैं कि यह एक अत्यंत सूक्ष्म विज्ञान है। यह आध्यात्मिक को अनुशासन प्रदान करता है। यह अनुशासन मानव के मन और शरीर के बीच सामंजस्य लाने का एक उपादान है। इस बात से हम भली-भांति परिचित हैं कि 'योग' शब्द संस्कृत के मूल **'युज'** शब्द से बना है जिसका अर्थ जुड़ना, जोड़ना या एकजुट होना होता

है अर्थात् यह मानव की व्यक्तिगत चेतना को सार्वभौमिक चेतना के साथ जोड़ता है। यह मन और शरीर के बीच तथा मनुष्य और प्रकृति के बीच पूर्ण जुड़ाव का संकेत देता है। हम अगर विश्व की सबसे प्राचीन ग्रंथ **'ऋग्वेद'** को देखें तो यह भी योग के बारे में वर्णन करता है। इसी संदर्भ में हम **'ऋग्वेद'** का एक मन्त्र देखते हैं -

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन्।
स धीनां योगमिनवति योगमिन्वतिः।।[1]

अर्थात् विद्वानों का कोई भी कर्म बिना योग के पूर्ण अर्थात् सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में योग का सर्वप्रथम उल्लेख भी 'ऋग्वेद' में मिलता है। 'ऋग्वेद' में 'योग' शब्द का उल्लेख 6 बार किया गया है जो तीन स्थलों पर मिलता है। 'ऋग्वेद' के अलावा 'अथर्ववेद' में भी 'योग' की चर्चा की गई है। उत्तर वैदिक काल में उपनिषदों में योग का विशद वर्णन प्राप्त होता है। 'उपनिषद' शब्द का अर्थ ही है 'समीप में बैठना' अर्थात् गुरु के समीप में बैठकर न केवल वेद का अध्ययन करना बल्कि वेद के अध्यात्म को जानने के लिए योग को सिखना और जानना भी था। **'श्रीमद्भगवद्गीता'** में भी हमें योग के विषय में विशद वर्णन प्राप्त होता है। योग की चर्चा करते हुए ही कृष्ण अर्जुन को स्पष्ट रूप से यह कहते हैं-

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्सस्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।[2]

अर्थात् इस संसार में दिव्य ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है। जिसने योग के दीर्घकालीन अभ्यास से मन की पवित्रता प्राप्त कर ली है, उसे समय आने पर हृदय में ऐसा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अन्य जगह पर भी **'श्रीमद्भगवद्गीता'** में कृष्ण कहते हैं-

योगस्थः कुरु कर्माणि, संग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा, समत्वं योग उच्यते॥[3]

अर्थात् हे धनंजय! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुए कर्तव्य कर्मों को कर, 'समत्व ही योग' कहलाता है।
छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व जिस द्वितीय नगरीकरण की शुरुआत हुई थी। इस महाजनपद काल में भी योग पूर्ण रूप से फल फूल रहा था लेकिन उसकी फलने और फूलने की वृक्ष और शाखाओं ने एक अलग रूप में अवस्थित हो गया क्योंकि उस काल में बौद्ध धर्म और जैन धर्म अपनी पराकाष्ठा में विद्यमान थी। ठीक उसी समय गौतम बुद्ध और जैन महावीर ने योग को अपने सिद्धांतों में सिद्ध करके दिखाया। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध ने अपने सिद्धांतों में योग को महत्वपूर्ण स्थान दिया वहीं जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर वर्धमान महावीर ने भी योग को अपनी धर्म में महत्वपूर्ण स्थान दिया। योग बौद्ध धर्म और जैन धर्म का बीज है। इस बात की प्रामाणिकता हमें बहुत कुछ ऐसे तत्वों से प्राप्त हो जाती है जो मूलतः बौद्ध धर्म का सार है, क्योंकि बुद्ध ने अपने उपदेशों में 'अष्टांगिक मार्ग' को निश्चित किया है। यह एक ऐसा मार्ग है जो योग के रास्ते से होकर गुजरती है। पुरातत्वशास्त्रियों को और भारतीय साहित्यिक

प्रमाणों में हमें जो साक्ष्य प्राप्त हुआ है उसमें योग स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। महाजनपद काल में बौद्ध धर्म का उदय योग की एक पराकाष्ठा है। योग के जरिए ही गौतम बुद्ध को पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हुई उसने उरूवेला में निरंजना नदी के तट पर पीपल वृक्ष के नीचे 49 दिनों तक तप किया और तब उसके उपरांत बैसाख पूर्णिमा के दिन योग को सिद्ध कर ज्ञान की प्राप्ति की। इसी योग से उन्होंने एक नया सिद्धांत को जन्म दिया। हमें इस बात को जानना अत्यंत आवश्यक है कि गौतम बुद्ध के समय में वे ही एकमात्र व्यक्ति थे जिसने योग के जरिए अपने जीवन को साधा या उस काल में और भी महापुरुष थे, जिन्होंने गौतम बुद्ध को भी योग की शिक्षा दी। उन्होंने कहाँ से योग की शिक्षा ग्रहण की? किसने उन्हें योग सिखाया? कौन व्यक्ति था जिसने उसे योग के बारे में अवगत कराया और इस योग के बल पर उन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त किया। गौतम बुद्ध के एक गुरु थे जिनका नाम **आलार कलाम**[4] था। इन्होंने गौतम बुद्ध को सन्यास जीवन के दौरान 'योग शास्त्र' का ना केवल ज्ञान कराया बल्कि उन्हें योगाभ्यास का प्रायोगिक ज्ञान दिया। योग के जरिए मनुष्य मन और शरीर के बीच सामंजस्य को किस प्रकार समझ सकता है? अध्यात्म के रहस्य को कैसे समझ सकता है? अपने जीवन को किस प्रकार सरल बना सकता है और रोग मुक्त हो सकता है? संसार के समस्त दुखों से कैसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है? इन सारे प्रश्नों का हल योग में समाहित है। यह आदिकाल से महापुरुषों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने व्यक्तित्व और प्रयोग से व्यक्त करता आ रहा है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध को या जैन धर्म के प्रथम प्रवर्तक से लेकर 24वें तीर्थंकर अर्थात् जैन धर्म के वास्तविक संस्थापक वर्तमान महावीर ही क्यों ना हों, इन्होंने अपने जीवन में योग को आत्मसात किया।

योग-दर्शन का ज्ञानतत्व : हमारे जीवन में योग-साधना का अर्थ वही है जिसे उपनिषदों में 'उपासना' कहा गया है और यह हमारे बौद्धिक ज्ञानतत्व से संबंध रखता है। विद्वानों ने बार-बार याद दिलाने की कोशिश की है, "हमें याद रखना चाहिए कि जिस एकत्व की सिद्धि हमें करनी है उसके बारे में बौद्धिक आस्था (मनन) प्राप्त हो जाने के बाद यौगिक ध्यान करना है और इसलिए यह आत्म-सम्मोहन या उसके तरह की किसी अन्य कृत्रिम प्रक्रिया से बहुत भिन्न चीज है। दूसरी ओर, इसकी तुलना 'सौन्दर्यात्मक चिन्तन की नितान्त स्वस्थ और आनन्दप्रद प्रक्रिया' से की गई है। इस प्रकार योग वस्तुतः ज्ञान की, जिसकी एक या दूसरे रूप में आवश्यकता लगभग सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने मानी है, एक सहायक प्रक्रिया है।"[5] इसलिए यहाँ पर यह कहने में कोई असुविधा नहीं होगी कि - योग-दर्शन हमारे बौद्धिक ज्ञान की संचित प्रक्रिया का नाम है जिसे अद्वैत मत में **'ज्ञानयोग'** नाम भी दिया गया। इसका मतलब होता है किसी उपयुक्त गुरु के सान्निध्य में शास्त्रों का अध्ययन जिससे जीव का सच्चा स्वरूप जानकर उसका ध्यान किया जा सके। यह ध्यान के पश्चात् आने वाली प्रक्रिया का नाम ही 'ज्ञानयोग' है। ध्यातव्य हो कि यह 'ज्ञानयोग' की साधना की सीमा में वे ही प्रवेश पाते हैं जो **'कर्मयोग'** में सफलता प्राप्त कर चुके होते हैं। विद्वानों ने माना है कि, "इसका उद्देश्य यह ज्ञान प्राप्त करना है कि मनुष्य शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ इत्यादि जिन अनेक उपाधियों से आत्मा का

प्रायः अभेद करता है उनसे किस तरह आत्मा भिन्न है और कैसे इन उपाधियों के प्रति आसक्ति आध्यात्मिक प्रगति में बाधक होती है। जब इस योग में सफलता प्राप्त हो जाती है तब साधना समाप्त नहीं होती।"[6] वह 'ज्ञानतत्व' या 'ज्ञानयोग' से जुड़ा होता है।

पतंजलि का योग-दर्शन : पतंजलि प्राचीन भारत के श्रेष्ठ ऋषियों में स्थान रखते हैं जिनका समय 200 ई.पू. माना जाता है। **'योगसूत्र'** उनकी महानतम रचना है जो **'योग-दर्शन'** का मूलग्रन्थ है। वे महान चिकित्सक और रसायन विद्या के विशेषज्ञ माने जाते हैं। ध्यातव्य हो कि छह आस्तिक दर्शनों में **'योग-दर्शन'** का महत्वपूर्ण स्थान है। कालांतर में योग की नाना शाखाएँ विकसित हुई जिन्होंने बड़े व्यापक रूप में अनेक भारतीय पंथों, संप्रदायों और साधनाओं पर प्रभाव डाला। **'चित्तवृति निरोध'** को योग मानकर यम, नियम, आसन आदि योग का मूल सिद्धांत उपस्थित किये गये हैं। 'भारतीय दर्शन' के व्याख्याकार डॉ. राधाकृष्णन् ने भी माना है कि, "भौतिक शरीर, सक्रिय इच्छाशक्ति और समझने की शक्ति रखनेवाले मन को नियन्त्रण के अन्दर लाना आवश्यक है। पतंजलि ने कुछ ऐसे अभ्यास पर बल दिया है जिनसे शारीरिक चंचलता की चिकित्सा हो सकती है तथा मलिनता दूर की जा सकती है। और जब इन अभ्यासों से हमें अधिक शक्ति, दीर्घकालीन युवावस्था और दीर्घजीवन प्राप्त हो जाए, तो इनका प्रयोग आध्यात्मिक मुक्ति के लिए करना उचित है। चित्त की शुद्धि तथा शान्ति के लिए अन्य विधियों का प्रयोग किया जाता है। पतंजलि का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं, बल्कि क्रियात्मक रूप में यह संकेत करना है कि संयमी जीवन द्वारा किस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।"[7] हालाँकि योग दर्शनकार पतंजलि ने आत्मा और जगत् के संबंध में **'सांख्य दर्शन'** के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन और समर्थन किया है। उन्होंने भी वही पचीस तत्व माने हैं, जो सांख्यकार ने माने हैं। इनमें विशेषता यह है कि इन्होंने कपिल की अपेक्षा एक और छब्बीसवाँ तत्व 'पुरुषविशेष' या ईश्वर को माना है, जिससे सांख्य के 'अनीश्वरवाद' अर्थात् 'नास्तिकता' से वे बच गए हैं।

बहरहाल, पतंजलि ने **'योगसूत्र'** सूत्रों का आरंभ व्यवहार के निश्चित नियमों से होता है और अंत में अपनी वास्तविक प्रकृति की झलक मिलती है। उनका योगदर्शन, समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य इन चार पादों या भागों में विभक्त है। वह इस प्रकार हैं-

1. समाधि पाद अर्थात् चिंतन
2. साधन पाद अर्थात् अभ्यास
3. विभूति पाद अर्थात् धन और शक्ति
4. कैवल्य पाद अर्थात् शाश्वत मुक्ति।

'समाधि पाद' सदाचार के विज्ञान का दर्शन है, जो सही मार्ग से भटके व्यक्ति को पुनः सही राह पर लाने में मदद करता है। यह शारीरिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास की व्याख्या करता है। इसके अंतर्गत ज्ञान के उपादानों की चर्चा करते हुए पतंजलि ने निर्देश दिया है-

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः॥[8]

अर्थात् प्रमाण-सिद्ध ज्ञान, सही ज्ञान; विपर्यय प्रतिकूल, गलत निर्णय; विकल्प कल्पना, स्वप्न, गलत धारणा; निद्रा नींद; स्मृतयः स्मृति, याद। सही ज्ञान प्राप्ति के यह पाँच प्रकार की गतिविधियाँ हैं (क) सही और सिद्ध ज्ञान, (ख) गलत निर्णय, (ग) गलत या काल्पनिक धारणा, (घ) नींद, (ङ) स्मृति। आगे उन्होंने यह भी बतलाया है कि आखिर यह 'सही ज्ञान' हमें मिलेगी कैसे ? इस सूत्र में देखें-

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि॥[9]

तो मान्य, सही ज्ञान और समझ इनसे प्राप्त होती है - (1) सही धारणा, (2) बौद्धिक तर्क और अनुभवजन्य भावनाओं (निष्कर्षों) से तथा (3) आधिकारिक और पवित्र धर्मग्रंथ, जैसे उपनिषदों से तथा इस विषय पर महारत रखनेवाले व्यक्तियों के कथनों से। इसके साथ ही, पतंजलि 'अनुभवजन्य ज्ञान' को सर्वश्रेष्ठ 'ज्ञान' से समादृत करते हैं। जैसे इस सूत्र में-

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः॥[10]

मौखिक ज्ञान पाने का प्रयास करना वास्तविक ज्ञान है। लेकिन इस वास्तविक ज्ञान को परखने के लिए अनुभवजन्य ज्ञान की ओर जाना होता है, सिर्फ 'शब्दज्ञान' या शब्दों को बुनते रहने से यह कतई संभव नहीं। फलतः इस 'अनुभवजन्य ज्ञान' या परीक्षण किया हुआ ज्ञान न होने को 'कल्पना' मात्र कहा जाएगा। पतंजलि 'अनुभवजन्य ज्ञान' को ही पूर्ण समाधि कहते हैं-

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी॥[11]

'तज्जः' यानी 'ऋतंभरा प्रज्ञा' से उत्पन्न संस्कार से 'अनुभवजन्य आध्यात्मिक ज्ञान' की ऊष्मा मिलती है और उससे एक गहन आंतरिक विनिर्माण होता है। यह समाधि पूर्ण अवस्था हमें पूर्व की धारणाओं से मुक्त कर देता है, अतीत की छवियों को मिटा देता है और वर्तमान के सारे निराधार निष्कर्षों को दूर कर देता है।

पतंजलि द्वारा उद्भूत **'साधन पाद'** यौगिक धर्म की व्याख्या करता है, जिसमें 'अष्टांग योग' आठ प्रकार के मार्ग यानी 'यम', 'नियम', 'आसन', 'प्राणायाम', 'प्रत्याहार', 'धारणा', 'ध्यान' और 'समाधि' की चर्चा है। यदि योग के इन आठ पहलुओं का पालन उत्साह और समर्पण के साथ किया जाए तो कोई भी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और बौद्धिक पहलुओं में स्थिरता और स्पष्टता को प्राप्त कर सकता है तथा इनकी सहायता से जीवन के सभी क्षेत्रों में समभाव को स्थापित कर पाता है। इस सूत्र में देखा जाए-

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च॥[12]

इस अष्टांग योग का उद्देश्य पूर्ण ध्यान की उत्पत्ति है। इसमें ऐसी भी शक्ति है कि क्लेशों को अगर वह पूरी तरह से खत्म न भी कर पाए तो उन्हें दुर्बल अवश्य कर देता है। इस सूत्र के दायरे में समग्र रूप में अष्टांग योग; अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि आते हैं। यम और नियम के दायरे में **'कर्म मार्ग'**; आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार के दायरे में **'ज्ञान मार्ग'** आते हैं; जबकि धारणा, ध्यान और समाधि के दायरे में **'भक्ति मार्ग'** आते हैं। 'साधना पाद' योग के आठ पहलुओं के प्रयोग से जीवन की सारी शक्तियों

को फलदायी बनाता है। हमारा जीवन प्रकृति की तीन गुरुत्वाकर्षी शक्तियों यानी गुणों से संपन्न है। ये हैं 'सत्त्व', 'रज' और 'तम'। यौगिक अभ्यास साधक में इस प्रकार परिवर्तन करते हैं कि वह बौद्धिक प्रकाश से जगमगा उठता है और अपने आस-पास की वस्तुओं को किसी चमकती मणि के समान स्पष्ट रूप से देखता है, जिससे उसे अपने उदात्त और उज्ज्वल जीवन का अनुभव होता है। इस अध्याय में पतंजलि ने दुःख के कारणों का वर्णन किया है और बताया है कि इन्हें कैसे दूर किया जाए और तत्पश्चात **'सत्व ज्ञान'** की साधना।

'विभूति पाद' में पतंजलि ने न केवल अलौकिक या असाधारण शक्तियों को प्राप्त करने की व्याख्या की है, बल्कि योग के दिव्य प्रभावों का अनुभव करने की भी चर्चा की है। वास्तव में, इस अध्याय के दो पहलू हैं- एक पहलू ध्यान, धारणा और समाधि के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के विषय में बताता है; जबकि दूसरा पहलू अर्जित की जानेवाली शक्तियों की व्याख्या करता है। इन अलौकिक या असाधारण शक्तियों को 'अष्ट सिद्धि' 'अणिमा', 'महिमा', 'गरिमा', 'लघिमा', 'प्राप्ति', 'प्राकाम्य', 'ईशित्व', बहुत भारी या हलका, सबकुछ प्राप्त करना कहते हैं। इसके लिए योगी जन देवताओं के सम्मुख अपना ध्यान करते हैं। जैसे-

प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम्॥[13]

ज्ञान और बुद्धि के अंतर्ज्ञान से सिद्ध योगी अति संवेदी धारणा को प्राप्त कर लेता है। इस शक्ति को यौगिक साधना के माध्यम से वह प्रकाश की सूक्ष्मतम छिपी हुई वस्तुओं का पता लगाने की ओर निर्देशित कर देता है, जो दूर होने के साथ-साथ योगी के पास अपने शरीर में भी हैं। यह ऐसा ज्ञान भी देता है, जिससे आंतरिक अनंत शरीर की पूर्णता को उसके संपूर्ण रूप में जाना जा सकता है। योगी को जब शरीर का यह निश्चित ज्ञान भलीभाँति प्राप्त हो जाता है, तब वह ईश्वर में समाहित अनंत ज्ञान और बुद्धि की खोज करने की दिशा में बढ़ जाता है। यह अनंत ज्ञान की अवस्था ही **'आत्म ज्ञान'** है। इस सूत्र में देखा जाए-

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः
परार्थत्वात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम्॥[14]

प्रकृति का ज्ञान और पुरुष यानी आत्मा का ज्ञान एक-दूसरे के लिए सहायक होता है। वे अभिन्न या अलग नहीं बल्कि एक समान दिखते हैं। आत्मा पर संयम रखकर योगी प्रकृति के सिद्धांतों तथा पुरुष यानी आत्मा के रत्न के विशिष्ट भेद को जान पाता है। इस ज्ञान से योगी परम ध्यान की प्राप्ति करते हैं और 'तारकं ज्ञानम्' अर्थात् 'उच्च बौद्धिक ज्ञान' की ओर प्रवेश करते हैं। इस सूत्र में-

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं
चेति विवेकजं ज्ञानम्॥[15]

'तारकं' अर्थात् यह उच्च, दीप्तिमान, शुद्ध और स्पष्ट ज्ञान - अब तक जिस ज्ञान की चर्चा हुई उससे पूरी तरह भिन्न है। यह ज्ञान पूर्ण रूप से स्वतंत्र है, क्योंकि यह व्यक्ति को सारी अभिलाषा की वस्तुओं से मुक्त होने का मार्ग दिखाता है।

'कैवल्य पाद' में पतंजलि ने समाधि और कैवल्य के अंतर की व्याख्या की है। 'समाधि' का अर्थ है - व्यक्ति की सिद्ध स्थिति और 'कैवल्य' का अर्थ है - जन्म-मरण से पूर्ण मुक्ति। इसमें अभ्यास करनेवाला उस दशा में पहुँच जाता है, जहाँ वह दैनिक जीवन में हानि-लाभ की चिंता छोड़ देता है। यहाँ पर आकर व्यक्ति या योगी **'सर्वश्रेष्ठ ज्ञान'** के बोध से साक्षात्कार करता है। यह सूत्र सामने है-

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्याऽऽनन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्॥[16]

विकास के इस बिंदु पर ज्ञान और बुद्धि पर परदा डालनेवाले सभी दोष दूर हो जाते हैं और इस कारण अब तक प्राप्त सभी ज्ञान अब तुच्छ लगने लगते हैं। अब वह योगी, जिसने भेद करनेवालों की पहचान (बौद्धिक समझ और रुझान के साथ किए यौगिक अभ्यास की रोशनी से) कर ली है, वह अविद्या के कारण उत्पन्न होनेवाले भ्रम, धारणा, पूर्व धारणा और पक्षपातों आदि से मुक्त हो जाता है। क्योंकि तीन गुणों में से 'तम' उसके चेतना पर परदा डाल देता है, जबकि 'रज' उसे कार्य करने के लिए प्रेरित कर देता है। इस अनंत ज्ञान के कारण 'मैं हूँ' अर्थात् 'ईगो' की भावना पर सत्त्व की विजय होती है, अहंकार चूर हो जाता है, तभी चेतना ब्रह्मांडीय चेतना का रूप ले लेती है, जो पहले प्रकृति और फिर पुरुष में समाहित हो जाती है। इस प्रकार वह ज्ञान और बुद्धि, जो सीधे व्यक्ति से प्राप्त होने लगती है, वह व्यक्ति माध्यमों द्वारा मिलनेवाले ज्ञान को महत्त्वहीन और तुच्छ बना देती है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. ऋग्वेद - 1/18/7
2. श्रीमद्भगवद्गीता - 4/38
3. वही; 2/49
4. आलार कालाम गौतम बुद्ध के समकालीन एक दार्शनिक एवं योगी थे। वे सांख्य दर्शन के विशेषज्ञ थे। पालि ग्रन्थों के अनुसार, वे गौतम बुद्ध के प्रथम गुरु थे। ज्ञातव्य हो कि 'गुरु' को बौद्ध धर्म में 'तथागत' कहा गया है। गौतम बुद्ध के समय समाज में सांख्य दर्शन का काफी प्रभाव था और इससे गौतम बुद्ध भी काफी प्रभावित थे। उनकी भी इच्छा थी कि सांख्य दर्शन का अध्ययन करें और इसलिए वे वैशाली के आश्रम में जा पहुँचे जहाँ 'गोंड़ी धर्म' (आदिवासियों) के पहले धर्म गुरु के बारहवें गोंड़ी धर्म गुरु आलार कालाम लिंगो रहते थे। आलार कालाम ने गौतमबुद्ध को न सिर्फ सांख्य-दर्शन की शिक्षा दी बल्कि उन्हें ध्यान मार्ग के सिद्धान्त तथा समाधि मार्ग का ज्ञान भी प्रदान किया। स्वयं आलार कालाम भी ध्यानाचार्य के रूप में कौशल जनपद में प्रसिद्ध थे। छ:वर्षों तक उनके पास रहकर गौतमबुद्ध ने सांख्य-मार्ग तथा समाधि-मार्ग का उचित अध्ययन किया और इनपर दक्षता हासिल की।
5. एम. हिरियन्ना; भारतीय दर्शन की रूपरेखा; पृ.सं.111; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण-2018
6. वही; पूर्वोद्धृत; पृ.सं.407

7. डॉ. राधाकृष्णन्; भारतीय दर्शन, खंड-2; पृ.सं.288-89; राजपाल एण्ड संज़; संस्करण-2024
8. पतंजलि योगसूत्र; सूत्र-1/6; अनुवादक: बी.के.एस.आयंगार; प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण-2018
9. वही; पूर्वोद्धृत; सूत्र-1/7
10. वही; पूर्वोद्धृत; सूत्र-1/9
11. वही, पूर्वोद्धृत; सूत्र-1/50
12. वही, पूर्वोद्धृत; सूत्र-2/2
13. वही, पूर्वोद्धृत; सूत्र-3/26
14. वही, पूर्वोद्धृत; सूत्र-3/36
15. वही, पूर्वोद्धृत; सूत्र-3/55
16. वही, पूर्वोद्धृत; सूत्र-4/31

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 132-136
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'गीतांजलि श्री' के उपन्यासों में सामाजिक रीति–रिवाज एवं मानवीय मूल्यों में सरोकार

सुरेश कुमार, शोधार्थी,
डॉ कविता चौधरी, निर्देशिका,
सामाजिक एवं मानविकी संकाय (हिन्दी विभाग)
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल यूनिवर्सिटी, नेशनल हाईवे–52, हिसार
चण्डीगढ़ रोड़, हिसार (हरियाणा).125001

सारांश :

रीति–रिवाज और मानवीय मूल्यों में सरोकार हमारे समाज के संचार, संस्कृति और अन्य सामाजिक आधारों को परिभाषित करते है। इनका सही अनुसरण समाज की स्थिरता, सद्भावना और समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक परंपराओं का अभिन्न हिस्सा बनकर समाज में एकता, समरसता और सम्मान की भावना विकसित करते हैं। मानव को मानवता की ओर अग्रसर करने का श्रेय उन जीवन मूल्यों को जाता है, जो अनिवार्यता उसके जीवन के हर प्रश्न से सम्बन्धित होते हैं। जीवन मूल्य समाज द्वारा स्थापित वे धारणाएँ, आदर्श दृष्टिकोण एवं मान्यताएँ हैं, जो व्यक्तिगत स्तर पर नहीं समष्टिगत स्तर पर भी प्रायः स्वीकार्य होती हैं।

शब्द संकेत :

सामाजिक सरोकार, रीति–रिवाज, मानवीय मूल्य, शिक्षा, संस्कृति, दृष्टिकोण।

प्रस्तावना–

हिन्दी साहित्य में प्रत्येक कलमकार अपने साहित्य सृजन के माध्यम से विभिन्न सामाजिक मुद्दों को छूने का प्रयास करते हैं, जैसे कि जातिवाद, लिंगवाद, सामाजिक रीति–रिवाज एवं मानवीय मूल्यों, वर्गवाद, धर्मांतरण, न्याय, असमानता, विकास, जनसंख्या नियंत्रण, पर्यावरण संरक्षण, नस्लीय विविधता, राष्ट्रीयता आदि। ऐसे साहित्यकार अपनी विधाओं में व्यक्त किए गए कथा–रचनात्मक तत्व, पात्रों की व्यक्तित्व विकास, संघर्ष, परिवर्तन और समाधान द्वारा, वास्तविकता को दर्शाते हैं। समाज में फैली अनेक विकृत्तियों को दूर करने के प्रयास में सदैव अपनी लेखनी में तत्पर रहने वाली और विश्व विख्यात लेखिका ''गीतांजलि श्री'' ने अपने उपन्यासों में रीति–रिवाज एवं मानवीय मूल्यों में सरोकार भाव को अभिव्यक्त किया है। हिन्दी साहित्य में सामाजिक शब्द का अर्थ समाज से है। प्रत्येक साहित्यकार समाज का एक अंग है। समाज की परिस्थितियों के साथ उसका भावात्मक सरोकार होता है। साहित्यकार समाज के प्रति जितना अधिक संवेदनशील होता है, उसका सामाजिक सरोकार उतना ही गहरा होता है।

परिभाषा :

अमृतराय के शब्दों में –

"एक तो अपनी उस प्रतिबद्धता की डोरी से बंधा रहने के कारण उसका कर्म तरह–तरह के थपेड़ों में पड़कर (जिनसे मेरा आशय जीवन के सुख–दुःख से भी है और वैचारिक प्रसंगों से भी) बहकने

या भटकने नहीं पाता, कभी कुछ भटकाव आता भी है तो फिर जल्दी ही अपना ठीक रास्ता मिल जाता है। दूसरी यही प्रतिबद्धता उसकी रचनावृद्धि की स्फूर्ति भी होती है।''[1]

उर्दू हिन्दी कोश के अनुसार–

'सरोकार को 'प्रयोजन, लगाव' शब्दों से अभिहित किया गया है।' [2]

सामाजिक रीति–रिवाज एवं मानवीय मूल्यों में सरोकार :–

'गीतांजलि श्री' ने सामाजिक रीति–रिवाज एवं मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में अपनी अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए स्पष्ट करते हुए कहा कि जिस समाज में धर्म और रीति–रिवाजों के नाम पर जितने पाखण्ड होंगे, वह समाज उतना ही पिछड़ा होगा। इससे सामाजिक चेतना भी पंगु होगी और लोगों का रहन सहन में बदलाव होगा। शरीर के बाहरी आवरण पर जब हम कुछ वस्त्र पहनते हैं तो समाज में हमारे मूल्यों के साथ–साथ हमारी सभ्यता भी उजागर होती है; जो कि संस्कृति का ही एक अंग है। हमारे दैनिक व्यवहार सभ्यता के अंतर्गत आते हैं। हमें किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका ज्ञान हमें शिष्टाचार से होता है। शिष्टाचार और अनुशासन का अभाव व्यक्ति को असभ्य, जंगली या वहशी बना देता है। हर सुसभ्य आदमी सुस्कृत ही होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि अच्छी पोशाक पहनने वाला भी तबीयत से नंगा हो सकता है और तबीयत से नंगा होना संस्कृति के खिलाफ बात है। धर्म और संस्कृति एक–दूसरे से बंधे होने के कारण साहित्य जगत में भी इनका रिश्ता चोली–दामन सा प्रतीत होता है। मानव का व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक जीवन में उसके मूल्य ही हर अवस्था में उसका मार्गदर्शन करते हैं। जीवन मूल्य प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं। समय के परिवर्तन के साथ–साथ इनमें बदलाव भी होते रहें हैं। जीवन मूल्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास और कल्याण में योगदान देने के साथ–साथ किसी अन्य के विकास और कल्याण में किसी भी प्रकार की बाधा पैदा नहीं करते । जब हमारे जीवन में अशांति, अलगाव, आन्दोलन, उपद्रव, असमानता, अराजकता, आदर्श विहीनता, अन्याय, अपमान, अत्याचार, अस्थिरता, हिंसा, संकीर्णता, कुठित भावनाएँ पैदा होने लगती हैं, तो समाज में साम्प्रदायिकता, जातीयता, भाषावाद, क्षेत्रीयवाद आदि भावनाएँ पनपने लगती हैं। समाज में भय का माहौल पैदा हो जाता है। लेखिका गीतांजलि श्री ने 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में भी इसी प्रकार के दृश्यों को दर्शाया है जैसे–

"कुछ घट गया। एक संप्रदाय के चार युवकों ने दूसरे संप्रदाय के इक्के चालक को जबरन नीचे खींचकर उसकी आँखें फोड़ दी।''[3]

साहित्यक रूप में रीति–रिवाज एवं मानवीय मूल्य :–

साहित्यक रूप में रीति–रिवाज से अभिप्राय ऐसे रीति और रिवाज़ है जो किसी समाज या समुदाय के लिए प्राचीनतम और मूल्यवान होते हैं। भारतीय संस्कृति में परंपरागत रीति–रिवाज़, संस्कृति, और सांस्कृतिक आदर्शों को संदर्भित करने के लिए रीति–रिवाज शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो भारतीय समाज में परंपरागत व्यवहार, समाजिक नियम, और संस्कृति की विशेषता को बयान करता है। रीति–रिवाज की भांति मानवीय मूल्यों की संरक्षण और सरोकार भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये मूल्य हमें अपने आस–पास के लोगों के साथ न्याय, ईमानदारी, और समर्थन में जुड़ने की दिशा में प्रेरित करते हैं। मानवीय मूल्यों का सम्मान करना हमारे बारे में सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण को प्रकट करता है और हमें अपने आस–पास के समाज के विकास में सहायक होता है। इस प्रकार, रीति–रिवाज और मानवीय मूल्यों में सरोकार हमें एक सजीव, समृद्ध और सहानुभूतिपूर्ण समाज का निर्माण करने में मदद करता है। इनका सही अनुसरण समाज की संतुलनात्मक और समर्थ स्थिति को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रीति–रिवाज और मानवीय मूल्य समाज का दिशा –निर्देश करते हुए मनुष्य को जीने की राह दिखाते है। सर्वप्रथम ये समाज में विविध परिस्थितियों–राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि से प्रभावित होते हुए साहित्यकार के हृदय में स्थापित हो जाते हैं। समाज में घटित घटनाओं को साहित्यकार देखता है तथा अनुभूत कर एक विचार को जन्म देता है। इन विचारों को परिष्कृत कर मूल्य निर्माता किसी अवधारणा का स्वरूप् प्रदान करके साहित्य सृजन करता है। वह अपनी कल्पना द्वारा ऐसी परिस्थिति का निर्माण कर मानवीय मूल्यों का सृजन करता है। मानवीय मूल्य सदैव समान नहीं रहते, उनमें युग के अनुरूप कुछ नवीन तत्व जुडते जाते हैं। मूल्यों का निर्माण व्यक्ति–विशेष अथवा समाज–विशेष के अनुरूप किया जाता है, इनके निर्माण में संस्कृति और परंपरा

की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसी कारण मूल्य निर्माता को सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक बोध का होना जरूरी समझा जाता है। हिंदी के प्रमुख चिंतक कवि रामधारी सिंह दिनकर मूल्य, नैतिकता परंपरा एंव संस्कृ ति को पर्याय मानते हुए कहते हैं कि –

''मूल्य आचरण के सिध्दांत को कहते हैं। मूल्य वे मान्यताएँ हैं जिन्हें मार्गदर्शन ज्योति मानकर सभ्यता चली आ रही है और जिसकी उपेक्षा करने वालों को परंपरा अनैतिक, उच्छृंखल या बागी कहते हैं।''[4]

मानवीय मूल्य कई बार समाज के लोगों के लिए भगवान का रूप धारण कर लेता है। समाज तथा व्यक्ति के सम्मुख मूल्य–निर्माता के लिए परंपरा और संस्कति कच्चे माल के समान है। जिसका अपने अनुरूप उपयोग कर मानव विविध मूल्यों का सृजन करता है। साहित्य व आलोचना के क्षेत्र में मानवीय मूल्यों ने अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है।

'गीतांजलि श्री' ने अपने उपन्यासों में भारतीय रीति–रिवाज और मानवीय मूल्यों को विविध रूप में अभिव्यक्त किया है। उनके साहित्य से व्यक्त होता है कि वर्तमान में भारतीय सभ्यता, संस्कृति और परम्पराओं के ज्ञान को उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना विदेशी सभ्यता और संस्कति को। आज हमारे देश के विद्यार्थी अपने देश के महान संतों यथा कबीर, गुरु नानक, गुरु गोबिंद सिंह आदि के त्याग और बलिदान के संबंध में उतना नहीं जानते जितना संत वैलेंटाइन आदि के सम्बंध में जानते हैं। आज अनेक शिक्षण संस्थाओं के नाम इसाई संतों के नाम पर रखे जाते हैं अथवा हमारे संतों के नामों का अंग्रेजीकरण कर दिया जाता है। जैसे संत कबीर की जगह सेंट कबीर, लॉर्ड कृष्णा। इन शिक्षण संस्थाओं का प्रभाव है कि हमारे देश के युवा वर्ग का व्यवहार, विचार, वेशभूषा, बोलचाल पूरी तरह विदेशी संस्कृति से प्रभावित है। वे एक जगह अपने उपन्यास 'रेत–समाधि' में लिखती हैं–

'' वे कहा करते थे कि ये चोरी और धंधा है जो इस मिट्टी से उजाड़ के संग्रहालयों में इन समाधिस्तों को अंग्रेज़ी नस्लें बंद कर लेतीं। साबुत न उठा पाए तो धढ़ शीष हाथ पाँव जो मिले, उखाड़ ले जाएँ और अपनी दीवारों पे ठोंक दें। हम इस मूर्ति को अपने घर में रख रहे हैं, हम गलत नहीं। ये हमारे घर की है, बाइज्जत, और मूल्यवान है पर इसकी तिजारत नहीं करनी। पर पिताजी, और बाद में बड़े, कहते खंडित मूर्ति बाहर नहीं रखते। तो वह कपाट के पीछे अलमारी में चली गयी। अम्मा उसके आगे एक फूल चढ़ा देतीं, कभी उसे रुद्राक्ष की माला पहना आतीं, कभी पूजा–त्योहारों पे रोली चन्दन अक्षत तिलक लगा देतीं, और कभी उस जीर्णशीर्ण बुद्ध के आगे एक रवा परशाद का रख देतीं।''[5]

भारतीय रीति–रिवाज और मानवीय मूल्यों से परे ऐसी संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने के लिए ऊंचे दाम देने पड़ते हैं। आज की संचार क्रांति, बाजारवादी धारणा तथा उपभोगवादी संस्कृति ने शिक्षा की इस प्रवृत्ति को और बढ़ावा दिया है। माता–पिता की सेवा और उनके सम्मान को उतना महत्व नहीं दिया जा रहा, जितना मदर्स–डे, फादर्स–डे को दिया जाता है। शिक्षा का एक महत्व व्यक्ति का समाजीकरण है परंतु आज हम देखते हैं कि बच्चे अपनी संस्कृति और समाज से कटकर धरती की तरह विश्व परिक्रमा करते हुए स्व की धुरी के इर्द–गिर्द घूम रहे हैं। ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि आज की शिक्षा विद्यार्थियों को ऐसा वातावरण प्रदान नहीं कर पा रही है कि वे अपने देश के सामाजिक, नैतिक मूल्यों तथा मान्यताओं के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकें बल्कि यह उन्हें अपनी संस्कृति से विमुख करके सफल सामाजिक नागरिक बनाने की बजाए प्रतिष्ठित और सम्पन्न नागरिक बनाने का प्रयत्न कर रही है। आज की स्थितियों में समाज की प्रमुख संस्था परिवार जो बच्चे के सामाजीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी, का संबंध भी शिक्षा से छूट गया है। पाश्चात्य संस्कृति से युवा वर्ग ही नहीं बल्कि बूढ़े–बुजर्ग भी प्रभावित हुए बिना नही रहे सके। विदेशी फैशन की चकाचौंध ने उन्हें भी अपने वस्त्र को बदलने के लिए मजबूर कर दिया। जैसे–

'' हम भी साथ थे। पहली बार बड़ा शहर, पहली बार रेलगाड़ी। सख्त गर्मी के दिन और दादी ने डपट–डपट के चादर से अपने अंग–अंग, कोने–कोने को यों कसवाया जैसे कहीं हीरा है, कहीं मोती है, लुढ़क पड़ेगा। विलायत से लौटे किसी डॉक्टर ने चूर हुई हड्डी को निकाल फेंका और वहीं विदेश से मँगाया हुआ नकली, बेहतरीन जॉइंट' दादी के बदन में फिट कर दिया। तब से वह ठक–ठक लँगड़ाने लगीं।''[6]

स्वार्थनीति के बलबूते आज उपभोक्तावादी संस्कृति के विकास ने ऐसी स्थितियां पैदा कर दी हैं कि एक ही समाज में रहते हुए परिवारों के आपसी संबंध कमजोर हो गए हैं, नाते–रिश्तेदारी का महत्व कम हो

गया है तथा पड़ोस की भावना खंडित हो रही है और नई तरह के व्यावसायिक, आर्थिक तथा उपयोगितावादी संबंध बन रहे हैं। आज की हमारी शिक्षा पारिवारिक विघटन का कारण बन रही है क्योंकि आज पारिवारिक इकाई का केंद्र सामाजिक न रहकर आर्थिक हो गया है। समकालीन समाज में पढ़ा–लिखा व्यक्ति जीवन की हर स्थिति को अपनी सुविधा के अनुसार देखता है जबकि प्राचीन व्यवस्था में वह सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वयं को देखता था तथा पारिवारिक–सामाजिक मर्यादा के सांचे में ढलने का प्रयत्न करता था। उसमें सामाजिक सहयोग, सहकारिता की भावना तथा जन सम्पर्क के गुणों का विकास नहीं हो पा रहा। जैसे–

'' एक बार अलमारी खोल के उनको श्रद्धा से देख लेने को सब अच्छा शगुन मानते। और बाद हुआ तब बेटी ने कहा कि मुझे दे दीजिये, और तो कुछ मैंने लिया नहीं, और खंडित मूर्ति सामने न रखो आदि मैं मानती नहीं, मेरे यहाँ खुली जगह में रहेगी। कभी नहीं, बड़े ने माँ के मार्फत सुनाया। पिताजी ने लायी और ये ही घर उसकी जगह है। और भी बाद हुआ तो बहू की सुबह सवेरे योग–सैर सखी ने कहा कि जानकार कलाविद बता देगा कितनी पुरानी है और कितने की होगी, लगती बड़ी जैनुइन है, लाखों की होगी, जिस पर बड़े की पत्नी ने कहा सारी मालूमात रखने में क्या हर्ज, जिस पर बड़े बरस पड़े कि पिताजी को खुदाई में मिली थी और बेचने का चीप ख्याल तुम्हें ही आयेगा, पैतृक निशानी की जगह तुम क्या समझो।''[7]

भारतीय रीति–रिवाज और मानवीय मूल्यों में आधुनिक शिक्षा पद्वति का योगदान :–

युवा वर्ग आत्मनिर्भरता की सीढ़ियां चढ़ते हुए इस बात को स्वीकार करने लगा है कि आज किसी को किसी की जरूरत नहीं है। शायद यही कारण है कि आज की हमारी संतान बड़ी सहजता से उन माता–पिता के उत्तरदायित्व से मुंह मोड़ कैरियर की दौड़ में शामिल हो जाती है, जिन्होंने उसका पालन–पोषण करने के लिए जाने कितनी प्रकार की मानसिक और शारीरिक यंत्रणाएं सही होती हैं। हम देखते है कि पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण में मातृ–ऋण और पितृ–ऋण की शिक्षा नहीं दी जाती बल्कि उन्हें इस प्रकार का ज्ञान दिया जाता है कि जिस प्रकार का ज्ञान और व्यवसाय उन्हें अधिक धन अर्जित करने के योग्य बनाता है। भारतीय रीति–रिवाज और मानवीय मूल्यों की शिक्षा पद्वति से बाहर होते जा रहे है। आज परिवारों की मानसिकता भी ऐसी बन गई है कि वे भी अपनी सन्तान से अच्छा सामाजिक नागरिक होने की उतनी अपेक्षा नहीं करते, जितना सम्पन्न नागरिक होने की करते हैं। परिवार के सदस्यों तथा माता–पिता के पास बच्चों को सामान्य व्यावसायिक ज्ञान सिखाने के लिए अवकाश ही नहीं है। जबकि प्राचीनकाल में बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा परिवार द्वारा ही दी जाती थी। उन्हें भारतीय त्योहारों के माध्यम से परिचित करवाया जाता था। जैसे लेखिका ने अपने उपन्यास 'माई' में दर्शाया है।

'' तीज भी माई बाबू के लिए मनाती । भादों के शुक्ल पक्ष में आती तीज। फिर से निर्जला व्रत। गंगा की मिट्टी मँगाकर उससे शिव–पार्वती बनाती, केले के पत्ते से सजा–वजाकर पूजा करती, फिर फल, मीठी पूड़ी, सादी पूड़ी, सिन्दूर, बिन्दी, चूड़ी, शीशा, कंघा, आल्ता, साड़ी आदि चढ़ाती जो बाद में बुआ को भेज देती। अगली सुबह नहा–धोकर, पूजा करके, पार्वती के माथे में लगा सिन्दूर अपनी माँग में भरती। मूर्ति, फूल, सब गंगा में विसर्जन को चले जाते। ब्राह्मण को खाना और पूजा की सामग्री देकर कोई दस–वस बजे किसी मीठी चीज़ की शुरुआत से व्रत तोड़ती।''[8]

प्राचीनकाल की शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थियों और गुरुओं का संबंध आदर्श हुआ करता था और उनमें भारतीय रीति–रिवाज और मानवीय मूल्यों को उनके जीवन में बचपन से ही परोसा जाता था जबकि आज शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों की भीड़ के होते ऐसे संबंध की उम्मीद कम ही की जाती है क्योंकि ऐसा अवकाश ही नहीं होता। उनमें आदर–सम्मान के भाव उपभोक्तावादी संस्कृति के तराजू के पलड़े में बहुत हल्के पड़ने लगे हैं। हमारे संविधान ने आज अर्थ के मुकाकले शिक्षा को इस तरह से नकारा भी है कि सम्पन्न व्यवसायी की महत्वकांक्षी उदण्ड सन्तान शिक्षकों को खरीदने की बात धड़ल्ले से कर सकती है और शिक्षा के महत्व को नकार सकती है। इसी शिक्षा का प्रभाव कि आज शिक्षण संस्थाओं में गुरुओं का तथा परिवार और समाज में बड़े–बूढ़ों का सम्मान हो, की बजाय उन्हें फालतू होने का अहसास ढोना पड़ रहा है।

आधुनिक शिक्षा ने व्यक्ति ने वैयक्तिक चेतना का इस सीमा तक विस्तार कर दिया है कि परिवारिक विघटन जोर पकड़ता जा रहा है, कृषि पर आधारित ग्रामीण व्यवस्था ध्वस्त हो रही है, शहरीकरण से भी आगे बढ़कर विदेशीकरण हो रहा है। एकान्तिक परिवारों का प्रचलन बढ़ जाने के कारण बच्चों के पालन–पोषण तथा देखभाल की समस्याओं से निबटने के लिए डे–बोर्डिंग स्कूलों की स्थापना हो रही है तथा बुजुर्गों की सार–सम्भाल करने के लिए वृद्धाश्रमों का निर्माण हो रहा है। आज की स्थितियों में आज हम देखते हैं कि नारी–शिक्षा का प्रभाव भी समाज पर व्यापक रूप से पड़ रहा है। आज नारियों में स्वच्छन्दतावादी सोच विकसित होने के कारण सामाजिक मूल्यों के प्रति विद्रोह की भावना पनप रही है। आज की पढ़ी–लिखी नारियों के पारिवारिक–सामाजिक परिवेश में ठीक से समायोजित न होने के कारण संबंधों के धरातल बदल रहे हैं। जैसे–

''आजकल घर ढिठा गया है। हर ईंट अँगड़ाई लेती है। बातें चीतें होती हैं। कोई ज्यादा हुड़दंगी आ जाए तो दीवारें और चुहल में। आनेवाले संग खेलती हैं। उसकी हल्की सी टीप पर दीवार बज उठती। जैसे उसमें हवा फूंक दी। माँ के छूने पर तो निस्बतन धीमे से मगर जब रोजी बुआ का लहीम शहीम तन इधर–उधर लहराता तो पता ही नहीं चलता किधर से खनक उठ के किधर बजी। गप्पबाज़ी में शिरकत करते खम्बे चौखट भी टुनटुना उठते । रोजी भी न, कभी हाथ ठोंकती, कभी पिछाड़ा चिपका के खुजलाती, और कभी माथा कहीं लगा के ठनक देती, जैसे खूब पता है मेरे छूने से दीवारें झंकृत होंगी।''[9]

आज नारियों में घर की बजाय नौकरी और आत्मनिर्भरता की धारणा बलवती होने के कारण विवाह–विच्छेद बढ़ रहे हैं तथा तनाव की स्थितियों में आत्महत्याओं का ग्राफ भी ऊपर जा रहा है। आज की शिक्षा व्यवस्था ने स्वच्छन्दतावादी सोच के मद्देनजर विवाह की संस्था पर ही प्रश्न–चिन्ह लगा दिया है। जैसे–

''छोटे बड़ों की मानने को नहीं तैयार। कि आप ही ने दुनिया नहीं बनायी है, बल्कि बिगाड़ी भी है और हम उसे अब बचाने में लगे हैं, बचा लेंगे। बड़े उनके बहसिये, कि बचा के हमने रखा था, प्रकृति, संस्कृति किसी का पलड़ा हल्का नहीं किया, तहस नहस तुम्हारी, लालच तुम्हारा, अमरीकी अदाएँ तुम्हारी, मशीनी तरक्कियों का भूत तुममें। छोटे बजिद कि आप तो सीमित रहे, रीति रिवाज़, परम्परा के गुलाम, और जो आपसे कहा वो करते गए। बड़े भृकुटि दिखाएँ कि रोमांस हमने भी किये, कि कुदाई लंघाई हमने भी की। कि तुम नहीं समझोगे हमारे मरने के किस्से हमारे लहलाह कर जीने के हैं। न बड़े न छोटे ये कहते हैं कि बँटवारे हमने मिल के किये हैं और बँटवारे नहीं होने चाहिए। फिर भी कुछ महान आत्माएँ हैं जो बड़े छोटे ढंगों में नहीं सोचते, बँटवारों में नहीं, और तेरा जमाना मेरा जमाना नहीं करते। पर उनकी सुनी नहीं जाती क्योंकि लोग उसकी सुनते हैं जो सामने दीखता है।''[10]

निष्कर्ष :–

वस्तुतः कहा जा सकता है कि लेखिका ने अपने उपन्यासों में सामाजिक रीति–रिवाज एवं मानवीय मूल्यों का यथार्थ चित्रण करते हुए युवा पीढ़ी को वर्तमान परिवेश से अवगत करवाया है। सामाजिक संस्कृति के माध्यम से ही आने वाली पीढ़ियों को भारतीय रीति–रिवाज एवं मानवीय मूल्यों की शिक्षा अर्जित होती है। यही शिक्षा भारतीय समाज को विकास और प्रगति की ओर ले जाते हुए स्वर्णिम युग की स्थापना करती है।

सन्दर्भ–सूची

1. आतुर प्रकाश, साहित्य का सरोकार और प्रतिबद्धता, (संपा०), पृष्ठ स0 80
2. राजपाल, उर्दू हिन्दी कोश, पृष्ठ संख्या –327
3. गीतांजलि श्री', हमारा शहर उस बरस , पृष्ठ संख्या–19
4. रामधारी सिहॅ ' दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ संख्या .–21
5. गीतांजलि श्री', रेत–समाधि , पृष्ठ संख्या–86
6. गीतांजलि श्री', माई , पृष्ठ संख्या–23
7. गीतांजलि श्री', रेत–समाधि , पृष्ठ संख्या–86
8. गीतांजलि श्री', माई , पृष्ठ संख्या–54
9. गीतांजलि श्री', रेत–समाधि , पृष्ठ संख्या–162
10. गीतांजलि श्री', रेत–समाधि , पृष्ठ संख्या–355

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 137-141
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

केरल में राजभाषा हिन्दी

सुजिता एल, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
कार्यवट्टम कैंपस, केरल विश्वविद्यालय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। भाषाशील होने के कारण मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। भाषा, विचार- विनिमय का एक साधन है जिसके माध्यम से मानव सोचते है और अपने विचारों को प्रकट करते हैं।

दुनिया में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं। भारत एक बहुभाषी देश है जहाँ विविध भाषा या बोली का प्रयोग है। आज, वैश्विक स्तर पर फल-फूलती भाषा है हिन्दी। अपनी व्यापकता गुण के कारण हिन्दी भाषा विश्व भाषा कहलाने की अधिकारिणी बन चुकी है। विश्वभर में 3500 भाषाओं तथा बोलियों के प्रयोग होती हैं। मानना यह है कि विश्वभर की कुल जनसंख्या में हर 15वाँ व्यक्ति हिन्दी जानता है और विश्व के 138 देशों में हिन्दी बोली जाती है तथा 130 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा के अध्ययन, अध्यापन और शोध सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसके बोलनेवालों की संख्या विश्व में दूसरे स्थान पर है।

भारत के दक्षिण में स्थित केरल राज्य में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग, उसके विकास आदि पर इस लेख में चर्चा की जा रही है।

हिन्दी शब्द का उद्भव और विकास संस्कृत शब्द 'सिन्धु' से माना जाता है। 'सिन्धु' नाम 'सिन्धु' नदी और आसपास के भूमि को कहते हैं। 'सिन्धु' शब्द ईरानी में जाकर 'हिन्दु' हो गया क्योंकि ईरानी में 'स' का उच्चारण 'ह' से है। ईरानी भाषा के प्रचलन के कारण पूरे भारत में 'हिन्द' शब्द का प्रयोग हुआ और बाद में 'हिन्दी' नाम का उद्भव हुआ।

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हज़ार वर्ष पुराना है। हिन्दी विश्व के सबसे बड़ा भाषा परिवार 'भारोपीय परिवार' की प्रमुख भाषा है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश से ही हिन्दी साहित्य का शुरुआत माना गया है। हिन्दी भाषा का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से होकर आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल से विकसित होकर बहुआयामी भाषा के रूप में परिवर्तित हुई है। हिन्दी

भाषा की चर्चा करते समय हम सामान्यतः साहित्यिक हिन्दी की चर्चा करते हैं। वास्तविकता यह है कि साहित्यिक हिन्दी, हिन्दी भाषा के विविध आयामों में से एक है।

व्यापक प्रयोग और जन लोकप्रियता के कारण हिन्दी को भारत की स्वयं सिद्ध राष्ट्रभाषा माना जाता है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैला हुआ भारत को एक साथ जोड़ने केलिए तथा देश के समुचित विकास केलिए एक संपर्क भाषा का होना आवश्यक है। संपर्क भाषा से आशय यह है, जिसे राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक लोग समझ सकते हैं और जिसके माध्यम से राष्ट्र के किसी कोने में जाने पर वहाँ की जनता से संपर्क किया जा सकता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। प्रयोग के आधार पर हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा आदि अनेक नाम दिया जाता है। लोग आज भी इस भ्रम में है कि राजभाषा हिन्दी ही राष्ट्रभाषा है। राजभाषा के स्वरूप को समझने के लिए राष्ट्रभाषा शब्द के व्यापक अर्थ पर ध्यान देना आवश्यक है। राष्ट्रभाषा से अभिप्राय है- "(क) राष्ट्र की भाषा अथवा (ख) समूचे राष्ट्र में प्रयुक्त होनेवाली भाषा"।[1] भारत के संविधान लागू होने से पहले राष्ट्रभाषा शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में प्रयोग किया जाता है उसी अर्थ में आज राजभाषा शब्द का प्रयोग होता है।

राजभाषा का प्रयोग प्रायः राजकीय प्रशासनिक कामकाज के लिए होता है। युनेस्को के अनुसार राजभाषा उस भाषा को कहा जाता है "जो सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में स्वीकार की गई हो, और शासन तथा जनता के बीच आपसी संपर्क के काम आती हो"।[2] राष्ट्रभाषा से राजभाषा बनने की यात्रा में सबसे पहले संस्कृत भाषा आती है। संस्कृत के बाद पाली और उसके बाद अपभ्रंश राजभाषा बनी थी।

राजभाषा का प्रयोग क्षेत्र सरकारी कार्यालय है जहाँ प्रशासनिक कार्यों में अंग्रेज़ी भाषा के साथ राजभाषा का प्रयोजनमूलक रूप भी प्रयोग पर है।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् राज्यों का विभाजन भाषाई आधार पर होने लगा। भाषाई आधार पर गठित दक्षिण में स्थित राज्य है 'केरल'। केरल को ईश्वर का अपना घर (God's own country) कहा जाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, गुणवत्ता और सामाजिक कल्याण के मामले में देश के सबसे प्रगतिशील तथा दूसरों के लिए एक मॉडल है केरल। समशीतोष्ण मौसम, सुंदर प्रकृति, सघन वन, समृद्ध वर्षा, सांस्कृतिक प्रचुरता आदि से संपन्न केरल राज्य में भाषा की विशेष मान्यता है। केरल की भाषा द्राविड परिवार के मलयालम है जो मातृभाषा है। अंग्रेज़ी को दूसरी भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता है। भारत सरकार की त्रिभाषा सूत्र के अनुसार हिन्दी भाषा को पाठ्यक्रम में शामिल किया है। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत से नौकरी के लिए आनेवाले भारतियों के साथ संपर्क सुचारू रूप से करने के लिए कई लोग हिन्दी को अपनाते हैं। केरल में कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन, अध्यापन तथा शोध कार्य विशेष रूप से होते हैं।

हिन्दी के बढ़ते प्रचार-प्रसार और लोकप्रियता को देखते हुए 1928 से कोच्चि के विद्यालयों में ऐच्छिक विषय के रूप में हिन्दी की पढ़ाई शुरू हुई। हिन्दी का प्रचार बढ़ाने केलिए केरल हिन्दी साहित्य मंडल, केरल हिन्दी प्रचार सभा, केरल हिन्दी साहित्य अकादमी आदि संस्थाओं की स्थापना हुई।

हिन्दी भाषा का विकास नियमित रूप से केरल में होता जा रहा है। राजभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग केन्द्र सरकार के अधीन कार्यालयों में होता है। केरल में कुल चौदह ज़िले हैं और इन सभी ज़िलों में केन्द्र सरकार के अधीन अनेक कार्यालय मौजूद हैं, इनमें बैंक, रेल कार्यालय, डाक-तार, केन्द्रीय सरकारी कार्यालय जैसे आकाशवाणी, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद क्षेत्रीय कार्यालय, केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, दूरदर्शन केन्द्र, कर्मचारी राज्य बीमा, आयकर कार्यालय, भारतीय मौसम विभाग, प्रधान महालेखा परीक्षक कार्यालय, क्षेत्रीय पासपोर्ट कार्यालय, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं जीएसटी कार्यालय, केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण आदि अनेक कार्यालय है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम के अंतर्गत एच.एल.एल लाइफकेयर, ब्रह्मोस एयरोस्पेस, कोचिन शिपयार्ड, उर्वरक एवं रसायन त्रावणकोर, एच.एम.टी लिमिटेड, हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड आदि कार्यालय शामिल है। अनुसंधान संस्थाओं में केन्द्रीय समुद्री मत्स्य प्रौद्योगिकी संस्थान, केन्द्रीय रोपण फसल अनुसंधान संस्थान, विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र, समुद्री जीव संसाधन एवं पारिस्थितिकी केंद्र, भारतीय मसाला अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान, सिद्ध क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान, श्री चित्रा तिरुनाल आयुर्विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय पृथ्वी विज्ञान अध्ययन केन्द्र आदि अनेक संस्थाएँ कार्यरत है। इसके अलावा वित्तीय संस्थाएँ, शैक्षिक संस्थाएँ आदि केरल में स्थित विभिन्न केन्द्रीय सरकारी कार्यालय हैं। राजभाषा विभाग केन्द्र सरकार द्वारा समय- समय पर जारी आदेशों तथा नियमों के अनुसार केरल में स्थित कार्यालयों में प्रशासनिक कार्य सुचारु ढंग से संपन्न हो रहा है। इन कार्यालयों में कार्यालय प्रमुख के नेतृत्व में राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया है।

कर्मचारियों को हिन्दी में प्रशिक्षण देने के लिए कार्यशालाएँ, प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन होता है। केरल की मातृभाषा मलयालम होने के कारण अंग्रेज़ी और हिन्दी के साथ मलयालम का प्रयोग इन कार्यालयों में होता है। कार्यालयों में कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने के लिए सूचना पट्ट में हिन्दी शब्दों का प्रदर्शन करने के साथ सूचना पट्ट, नाम पट्ट, आवेदन पत्र, मोहर सहित सभी चीज़ों को अंग्रेज़ी के साथ हिन्दी तथा मलयालम में प्रदर्शन करते हैं। हर कार्यालय में राजभाषा अधिनियम 1963 और राजभाषा नियम 1976 का पालन करने का प्रयास जारी है। कार्यालयों में पदोन्नति के लिए जो परीक्षाएँ या साक्षात्कार होते हैं, उसमें राजभाषा कार्यान्वयन के आधार पर प्रश्न पूछे जाते हैं। परीक्षा केलिए पाठ्यविवरण तैयार करते समय राजभाषा से संबंधित नियम, आदेश, तकनीकी शब्दावली आदि को संलग्न किया जाता है। प्रोत्साहन योजनाओं के तहत राजभाषा

कार्यान्वयन को सक्षम बनाने का प्रयास भी जारी है। कार्यालयों में पत्रिकाओं का प्रकाशन करने से कर्मचारियों को हिन्दी में लिखने का पढ़ने का और समझने का अवसर प्राप्त है। विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र द्वारा प्रकाशित 'गगन', श्री चित्रा तिरुनाल आयुर्विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा प्रकाशित 'चित्रलेखा', एच.एल.एल लाइफकेयर द्वारा प्रकाशित 'समन्वया', राष्ट्रीय पृथ्वी विज्ञान अध्ययन केन्द्र द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वी' आदि अनेक पत्रिकाएँ इसकेलिए उदाहरण है।

राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए अध्ययन की सुविधा भी उपलब्ध है। केरल में स्थित विश्वविद्यालयों में अनुवाद, तकनीकी शब्दावली तथा कार्यालयीन भाषा को पढ़ने का अवसर प्राप्त है।

राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास दिन-प्रतिदिन प्रगति पर है। कार्यालयीन भाषा सीखना कौशल विकास के अन्तर्गत आता है। कर्मचारियाँ अगर हिन्दी नहीं जानती है तो उन्हें सीखने का अवसर दिया जाता है। जब सीखना शुरू करता है तब रचना कौशल, श्रवण कौशल, लेखन कौशल आदि का विकास स्वाभाविक रूप से हो जाता है। प्रशासनिक शब्दावली अच्छी तरह समझकर टिप्पणी लिखने से तथा कार्यालयीन कार्य हिन्दी में करने से लेखन कौशल का विकास स्वयं हो जाता है। कुछ कर्मचारियों के लिए एक हफ्ते का प्रशिक्षण काफी है तो कुछ कर्मचारियों को एक महीने की आवश्यकता होगी। केरल एक अहिन्दी प्रदेश होने के कारण यहाँ के लोगों के लिए सीखने का समय कुछ ज़्यादा होने की संभावना है।

हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए हिन्दी प्रोत्साहन सप्ताह तथा 'हिन्दी पखवाड़ा' का आयोजन किया जाता है। 14 सितंबर 2017 को हिन्दी दिवस की अवसर पर राष्ट्रपति रामनाथ कोविन्द जी ने कहा कि "हिन्दी अनुवाद की नहीं बल्कि संवाद की भाषा है"। अनुवाद भी एक कला है इसमें कौशल होना भी ज़रूरी है। कार्यालयीन भाषा के रूप में हिन्दी को प्रथम स्थान दिलाने के लिए आज अनुवाद का सहारा लिया जाता है। प्रतियोगिताओं के ज़रिए कर्मचारियों का कौशल विकास नियमित रूप से जारी है।

केरल राज्य में राजभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाया गया है। इसका प्रमाण है कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन में आयी हुई प्रगति। राजभाषा कार्यान्वयन में हर कर्मचारी सदैव कार्यरत है। प्रशासनिक कार्यों में अंग्रेजी भाषा से आगे हिन्दी को लाने से यह अधिक उचित तथा संविधान सम्मत होगा।

<u>संदर्भ ग्रन्थ सूची</u>

1. राष्ट्रभाषा और राजभाषा के संदर्भ में प्रशासनिक एवं कार्यालय हिन्दी- डॉ रामप्रकाश, डॉ दिनेशकुमार गुप्त- पृ.सं 89
2. राजभाषा हिन्दी और उसका विकास- हीरालाल बाछोतिया- पृ.सं 20

<u>सहायक ग्रन्थ सूची</u>

1. राजभाषा हिन्दी- डॉ भोलानाथ तिवारी
2. भाषा, भाषा- विज्ञान और राजभाषा हिन्दी- महेन्द्र नाथ दुबे, कु.डॉ. मीनाक्षी दुबे
3. कार्यालय कार्यविधि- डॉ रामचन्द्रसिंह सागर

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 142-144
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Value Crisis among Youth in Present Scenario

Dr. Harpreet Kaur,
56, Central Town, Ludhiana

The growing concern over the erosion of essential value and an increasing cynicism in society has brought to focus the need for readjustment in the curriculum in order to make education a forceful tool for the cultivation of social and moral values. In our culturally plural society education should foster universal and eternal values oriented towards the unity and integration of our people. Such value education should help eliminate obscurantism, religious fanaticism, violence, superstition and fatalism. As a experienced man has said, "Commerce without morality, science without humanity, Politic without principle and education without values is not only useless but also very dangerous." There wood lays great stress on the importance of modals, ethics and values in one's life. The attitude of today's young generation made me think twice that the implementation of values and moral education is a must for the youth.

Type of Values

1. **Individual Values:** There are the values which are related with the development of human personality or individual norms of recognition and protection of the personality such as honesty, loyalty, veracity and honours.
2. **Collective values:** Values connected with the solidarity and suitableness are known as collective values.

Values can also be categories' from the point of view their hierarchical arrangement.

1. **Intrinsic values:** There are the values which are related with goal of the life. They are sometimes known as ultimate and transcendent values.
2. **Instrumental values:** These values come offer the intrinsic value in the scheme of gradation of value. These values are means to achieve goals (intrinsic values) of life. They are also known as incidental or proximate values.

Values among Students

School as a sub system of overall social organization is expected to act as an agent of preserving and strengthening the social structure, and should therefore translate the value system of the society in terms of aims and objectives for various school programmes. Keeping in view the requirement of providing facilities for all-round development of the child, the students should following values and the school should provide the necessary activities and programmes to inculcate them.

1. **Ethical Values:** Values related to the code of conduct honesty, integrity, discipline, self-control, self-reliance, inquiry into the good, the bad and the ugly aspects of human behavior, code of conduct based on logical reasoning.
2. **Aesthetic Values:** Beauty of nature, work of art, manners, rhyme and rhythm in poetry etc.

3. **Religious Values:** There values related to God, self and purpose of life. They include faith in God, devotion to higher, compassion, love for all type of life.
4. **Social Values:** Concerning the responsibilities and the contribution of the individual towards the society and human being.
5. **Character Values:** Here we may include personal values, social virtues including justice, truthfulness, self-control, etc.

These are governed by the constitution of the country, freedom, socialism, secularism, democracy, national integration, international understanding, democratic citizenship, equality, social justice, peace, inner harmony, follow feeling unity in the midst of diversities, civic sense, responsibility of citizens, camaraderie and cooperation, participation of community activities etc.

Areas of Value Crisis

1. **Family Structure:** Nowadays traditional joint family system is breaking up. People are adopting nuclear family structure. In today's world parents are busy earning living hood. They do not have enough time to spend with their children. They are not able to impartment values to their children. More over children are becoming independent and they do not pay respect to values imparted by elders to their juniors. This sort of isolation, lack of love and affection from family has been having their lives resulting unrest and agitation.
2. **Teacher Student Relationship:** Nowadays teacher-student relationship has changed from the older version of *Guru-Shishya Parampra*. Teachers are teaching ideals but in practice they do not follow them in their practical life. Due to which student nowadays are a confused lot? When they see their teachers not following the ideal path they tend to loose respect for their teachers and values are forgotten by them.
3. **Society:** Today society has become very materialistic. People are busy making money by hook or crook. Most of the people feel that money is everything. They want to solve problem with money. Society has become very competitive. People are living fast life. The society attitude has made the people forget human values.
4. **Work Place:** In every field of work place, we observe that there is lots of competition. On the other hand every employee wish to grow more and more. But due to such competition stress levels increase. Stress may affect moral easoning capacity and the ability to use it in real life situations. Competitiveness exists because instead of trying to discover who we are trying to become what we are not, instead of interesting that real socurity come with in. We are looking for it in money, passions and power.
5. **Politic:** In to day world politicians are becoming more and more selfish. They tend to exploit the feeling of ordinary people. This phenomenon has made the social value to code. Since most of the politicisns are power hungry. They gave the wrong signals to the message following them.
6. **Modernity:** Advancement of modernization has spread over our young generationf of the society. They arebeing incluenced by it, losing their self, costume, tradition and rich heritages. This change in the environment has kept them away from conventional livelihood and they are being strongly affected by modernity, which is the major causeof value crisis.
7. **Education System:** Another important aspect of value crisis related toour defective system of education. Although passing 60 years of Indian independence, there is lack of proper educational infrastructure from which they can learn properly, rather our today's education is professional which never teach moral lesson of education, that is very essential part of our youth. This type of education has created crisis of employment.

How ea can Inculcate Value among Children

Positive role of family: Family is the first school where good such situated habits and values are nurtured in a child. Parents should be conscious about their children so that are not diverted.

Reduce Stress Level at Work Place: Competition crerate stress level at work place. Theer should not be personal competition. People should work with cooperation and deal with each other like a familty members. Such situation surely reduce their stress level.

Value Based Education

It is true that 0ôThe desting of India is being sharpen in classrooms. School should import life skills, social skills, moral value (we do have moral science and Sanskrit etc. in different school) and most important a proper scientificf approach on character building.

Parents Role

To achieve the some there has to be parent-student-teacher relatioship. A regular mandatoy parents workshop by school will be more useful then a mere parents meeting followed by couseling and briefing session.

Students Responsibility

Reading habits and lots of activates will made a child moer healthy then class room based cramming session. Today schools concentrate move on studying for exams and scoring good rather than stressing upon the personality development of the student. We find that the children at a very younger are itself driving vehicles, using mobile phones etc. They are given all sort of independence and this leads to lack of understanding of values in life.

School Role

Children spend more time in schools, but more then studies, they are involved in gossiping, bunking class, playing games etc. It is true that students should be given the ime to enjoy and not to only sit and study. But this independence should not be misused. School should stress upon some personality development and value education classes so that the students learn high values from life. Other than academic sessions, school should hire good teachers who are capable of providing knowlede on theses topics. This will help the stuents tolearn something valuable other than studies. These classes should also be moer discussion oriented so that the students do not lose interest on the subject.

To conclude we can say that these crises of values can only be overcome by common effors of all. Each membe of our society commits himself towards a minimum ethical standard in his life. Although, there is a big gap between perching and practicing of what one believes of with one says. One's action must reflect the values that one intends to inculcate fingers at others. Value education has not to be introduced at the level of pre-schooling stage itself. If one has to develop a healthy family and a healthy nation.

References

- Sachdeva, M.S. & Sharma, K.K. (2010). Philosophical and Sociological Basis of Education: Tandon Publication, Ludhiana.
- Aggarwal, J.C. (2001). "Basic Ideas in Education." Shipra Publication, Delhi.
- Singh, Major (2004). "Value based education: A need of the hour." S.K. Kalaria and Sons, New Delhi.
- Burra, H. (2007). Value based education: A need of today. Retrieved from http://www.associatedcontact.com/article/
- http://www.sharlyouressays.com
- http://google.co.in
- http://www.yourarticlelalibrary.com

M: 98725-05975

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 145-148
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Selfless Action and Moral Duty: Nishkama Karma in Light of Kant's Deontological Ethics

Utpa lGogoi, Assistant Professor,
KKH State Open University, Assam

Abstract:
Ethical theories across cultures have sought to define the foundation of moral action, duty, and justice. Immanuel Kant's deontological ethics, a cornerstone of Western moral philosophy, asserts that moral actions derive their worth from adherence to duty rather than their consequences. His principle of the Categorical Imperative emphasizes universal moral laws that rational beings must follow. In contrast, the Bhagavad Gita, a foundational text of Hindu philosophy, presents Nishkama Karma—selfless action performed without attachment to results. This study explores the parallels and divergences between Kantian deontology and Nishkama Karma, focusing on their shared emphasis on duty, good will, and moral autonomy. By analyzing key philosophical concepts such as "duty for duty's sake" and "detached action," this paper highlights how moral duty transcends cultural boundaries and remains relevant in contemporary ethical debates, leadership, and social justice.

Introduction:

Ethical theories have long been a subject of philosophical inquiry across cultures, shaping human understanding of morality, duty, and justice. In Western philosophy, Immanuel Kant's deontological ethics provides a rational, duty-based approach to morality, where actions are judged not by their outcomes but by the moral principles guiding them. Kant emphasizes that moral actions should stem from Good Will and should be performed for the sake of duty alone, as outlined in his Fundamental Principles of the Metaphysics of Morals (1785). Central to Kant's theory is the Categorical Imperative, which dictates that one should act only in ways that could be universally applied as moral laws.

Parallel to this, in Eastern philosophy, the Bhagavad Gita, one of the most profound Hindu scriptures, presents the doctrine of Nishkama Karma, which translates to "selfless action without attachment to results." In the dialogue between Lord Krishna and Arjuna, Krishna teaches that one must fulfill their duties without concern for personal gain or failure, as true righteousness lies in action itself rather than its consequences. The concept of Lokasamgraha, or the welfare of society, further reinforces the idea that ethical actions should contribute to the greater good, a notion similar to Kant's universal moral laws.

Both ethical frameworks, though emerging from distinct cultural and historical backgrounds, share fundamental similarities in their approach to duty, morality, and selfless action. While Kantian ethics emphasizes rational autonomy and universal moral duty, Nishkama Karma advocates for detached action in alignment with dharma (righteous duty). This study

seeks to explore these parallels, analyzing the intersections and divergences between Kant's deontological ethics and the ethical teachings of the Bhagavad Gita.

Through this comparative analysis, the research aims to highlight how moral duty transcends cultural boundaries, offering insights into universal ethical principles that remain relevant in modern ethical debates, leadership, and social justice. By examining the concepts of Good Will, Duty for Duty's Sake, and the categorical Imperative in relation to Nishkama Karma and Lokasamgraha, this study will contribute to a deeper understanding of how duty-based ethics shape human moral reasoning across different traditions.

Objectives of the Study:

1. To analyze the philosophical foundations of Kant's deontological ethics and the concept of Nishkama Karma in the Bhagavad Gita.
2. To compare the principles of "duty for duty's sake" (Kant) and "selfless action" (Nishkama Karma).
3. To examine the role of good will and moral intentions in both Kantian ethics and Nishkama Karma.
4. To explore the role of moral autonomy in Kant's deontology and the Bhagavad Gita's Nishkama Karma.
5. To assess the implications of these ethical frameworks for decision-making, leadership, and societal welfare.

Methodology:

This study employs a qualitative comparative analysis of primary and secondary sources:

Primary Sources:

Kant's Fundamental Principles of the Metaphysics of Morals (1785)

The Bhagavad Gita (with emphasis on Chapter 3, Karma Yoga)

Secondary Sources:

Scholarly works on Kantian deontology, Nishkama Karma, and comparative ethics.

Key Arguments and Discussion:

1. Good Will and Nishkama Karma: The Foundation of Moral Action

Kantian ethics is based on the concept that "Good Will Alone is Good"—an action is morally righteous if performed out of duty, irrespective of its outcomes. Kant states:

- "There is nothing in the world or even out of it, that can be called good without qualification except a good will."

(Fundamental Principles of the Metaphysics of Morals, Sec.1, p.9)

Similarly, in the Bhagavad Gita, Lord Krishna instructs Arjuna to perform his dharma (duty) without attachment to personal gains or losses. He says:

- "You have a right to perform your duty, but you are not entitled to the fruits of action." (Bhagavad Gita 2.47)

Both Kantian Good Will and Nishkama Karma emphasize that the moral worth of an action lies in the intent behind it rather than its consequences. While Kant argues for duty-driven moral action based on reason, Krishna's teachings promote selfless duty as a spiritual discipline leading to liberation (moksha). Despite their different foundations, both ethical systems reject self-interest as a motive for morality.

2. Duty for Duty's Sake vs. Nishkama Karma: Ethical Action Without Expectation

Kantian deontology argues that duty should be followed purely for its moral necessity, not because of emotional inclination or expected rewards. For instance, if someone donates to charity for personal recognition, Kant would argue that the action lacks moral worth.

Similarly, Krishna tells Arjuna that true righteousness lies in detached action—performing one's responsibilities without personal gain. He emphasizes:

- "By performing their prescribed duties, King Janaka and others attained perfection. You should also perform your duties to set an example for the good of the world." (Bhagavad Gita 3.22)

Key similarities:

- Both reject selfish motives in ethical actions.
- Both uphold duty as an intrinsic moral obligation.
- Both suggest detachment from results as a path to ethical integrity.

However, while Kant's theory is based on rational autonomy, Nishkama Karma incorporates spiritual surrender—aligning duty with divine will (Ishvarapranidhana).

3. Moral Law as a Categorical Imperative vs. Lokasamgraha (Welfare of Society)

Kant's Categorical Imperative states:

- "Act only according to that maxim whereby you can at the same time will that it should become a universal law."

This means that an action is moral if it can be applied universally without contradiction. For example, lying cannot be a universal moral law because a world where everyone lies would collapse trust and communication.

Similarly, the Bhagavad Gita's Lokasamgraha emphasizes that ethical actions should contribute to societal welfare rather than personal desires. Krishna says:

- "Whatever action a great person performs, common people follow. Whatever standards they set, the world pursues." (Bhagavad Gita 3.21)

Key similarities:

- Kant's moral law and Krishna's Lokasamgraha both advocate for universal ethical standards.
- Both stress that moral duty benefits society as a whole, not just individuals.
- Both reject subjective morality, insisting on universally applicable ethical duties.

However, Kant's imperative is strictly rational, while the Gita's teaching incorporates a spiritual dimension, encouraging duty as a path to self-realization.

4. Moral Autonomy: Rational vs. Spiritual Self-Governance:

Kantian ethics is grounded in moral autonomy, where individuals impose moral laws upon themselves based on reason. Allen Wood (Kantian Ethics) explains that ethical actions must arise from rational duty, not external pressures.

In contrast, Nishkama Karma teaches that true autonomy comes from surrendering ego and performing selfless actions in harmony with the cosmic order (dharma). Swami Sivananda (Essence of the Bhagavad Gita) argues that detachment does not mean passivity but a higher level of freedom.

Key distinctions:

- Kantian autonomy is self-governed by reason.Nishkama Karma's autonomy is spiritual—freedom from ego and desires.
- Both emphasize duty, but Kantian ethics is purely rational, while the Gita integrates duty with devotion.

Relevanceof both in present context:

Both Kantian ethics and Nishkama Karma remain highly relevant in contemporary moral discourse, leadership, and social justice movements:

Leadership: Gandhian non-violence was inspired by Nishkama Karma—selfless service without attachment to power. Similarly, Rawls' justice theory applies Kantian ethics to governance, emphasizing fairness and universal moral duties.

Business Ethics: Kantian ethics influences corporate social responsibility (CSR), ensuring businesses act ethically, not just profit-driven. The Bhagavad Gita's emphasis on duty aligns with ethical leadership in corporate settings.

Social Justice: Both ethical models advocate for universal moral responsibility—Kant's focus on rational duty and Krishna's focus on societal welfare provide ethical foundations for activism, policy-making, and humanitarian efforts.

Conclusion:

Despite originating from different cultural and philosophical traditions, Kantian deontology and Nishkama Karma share deep ethical parallels—both emphasize duty, selfless action, and moral integrity. While Kant's ethics is rational and autonomous, the Gita's ethics is spiritual and detached from personal desires. By comparing these frameworks, this study reveals how universal moral principles can bridge Eastern and Western thought, offering valuable insights into ethical leadership, justice, and human morality.

References:

1. Kant, Immanuel. Fundamental Principles of the Metaphysics of Morals. Translated by Thomas Kingsmill Abbott, 1785.
2. Wood, Allen W. Kantian Ethics. Cambridge University Press, 2008.
3. Rawls, John. A Theory of Justice. Harvard University Press, 1971.
4. Paton, H.J. The Moral Law: Kant's Groundwork of the Metaphysics of Morals. Routledge, 1948.
5. Vyasa. The Bhagavad Gita. Translated by Swami Sivananda, Divine Life Society, 1996.
6. Radhakrishnan, S. The Bhagavad Gita. HarperCollins India, 1948.
7. Easwaran, Eknath. The Bhagavad Gita for Daily Living. Nilgiri Press, 2007.
8. Sharma, Arvind. The Philosophy of the Bhagavad Gita: A Contemporary Introduction. Bloomsbury, 2021.

Email: ugogoi434@gmail.com Contact no: 9395469374

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 149-152
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिकताबोध क्या है?

उमा, शोधार्थी,
पी.राजरत्नम, शोध-निर्देशक,
हिन्दी विभाग, तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय,तिरुवारुर-610005

यह शोध आलेख 'आधुनिकताबोध' की अवधारणा को हिन्दी साहित्य, विशेषतः उपन्यास विधा के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करता है। आधुनिकताबोध केवल एक वैचारिक स्थिति नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से उत्पन्न बहुआयामी दृष्टिकोण है। हिन्दी उपन्यासों ने बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते हुए आधुनिकताबोध को कथ्य, शिल्प, पात्रों की चेतना, भाषा और समाज-बोध में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। आलेख में आधुनिकताबोध के प्रमुख तत्त्वों की विवेचना करते हुए हिन्दी उपन्यासों में उसके प्रतिफलन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विशेषकर 21वीं सदी के सन्दर्भ में यह अवधारणा किस प्रकार बदलती हुई जीवन-स्थितियों को प्रतिबिंबित करती है, इस पर प्रकाश डाला गया है।

'आधुनिकता' केवल समय की एक अवस्था नहीं है, यह सोचने, समझने और जीने की एक नवीन पद्धति है। जब कोई व्यक्ति या समाज परंपरा, रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर विवेक, तर्क और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आधार पर जीवन दृष्टि अपनाता है, तो यह आधुनिकता के प्रति उसके 'बोध' को दर्शाता है, जिसे 'आधुनिकताबोध' कहा जाता है।

एक जीवन-मूल्य के रूप में आधुनिकता की अवधारणा पश्चिमी समाज की देन है और वहाँ की विशेष आर्थिक-सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों की ही अनिवार्य उपज है। इंद्रनाथ मदान ने अपनी पुस्तक 'समकालीन साहित्य; एक दृष्टि' में कहा है कि "आधुनिकतावाद नाम की अवधारणा, सिद्धांत या आईडियोलॉजी के रूप में दूसरे महायुद्ध के बाद की सृष्टि है।"[1]

अगर हम आधुनिक बोध के अभिप्राय की बात करें तो आधुनिक बोध के विश्वसनीय, प्रामाणिक तथा अनुमोदित हो सकने का कारण यह है कि एक तो वास्तविक आधुनिक बोध की धारणा स्वतन्त्र नहीं है, दूसरे वह स्थूल, भौतिक तथा जीवंत है। इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मानवीय स्थिति से है। "इसका आगमन सभ्यता, समाज, आर्थिक अवस्था,

इतिहास क्रम, संस्कृति आदि के रूपों से स्पंदित हुआ है। इसलिए सभ्यता की आधुनिकता, समाज में पूँजीवादी संबंधों का आविर्भाव, आर्थिक विकास में तकनीकी आधुनिकीकरण, इतिहास क्रम में सामंतवादोत्तर क्रांतियों वाला आधुनिक युग, संस्कृति में व्यक्ति का स्वात्म आदि सभी आधुनिक बोध का रूपान्तरण करते हैं। अतः आधुनिक बोध की धारणा एक महत्तम सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपलब्धि है। इससे किनारा करने पर अकेले व्यक्ति ही नहीं, अपितु महान संस्कृतियाँ तक मर जाती हैं। यह चुनौती है कि हम आधुनिक बोध को भारतीय एवं विश्वात्मक सन्दर्भों में रखकर उसके व्यापक विनायक धर्म का वरण करें।"[2]

डॉ. भगवान दास वर्मा आधुनिक बोध को सामाजिक धारणा मानते हुए कहते हैं "यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके साथ व्यक्ति के संदर्भ हैं, समाज के संदर्भ हैं, काल विशेष से सम्पृक्त सामाजिक चेतना के संदर्भ हैं। उसमें सांस्कृतिक और अन्य कई संदर्भ आ जाते हैं, जो एक विशेष देश और उसके सांस्कृतिक विधान के साथ जुड़े हुए होते हैं। इसलिए आधुनिक बोध का तात्पर्य निश्चित परिभाषा में समझना बड़ा मुश्किल हो जाता है। मैं कहूँगा कि कुछ कालिक तत्त्व होते हैं जो समय के साथ जुड़े हुए होते हैं और कुछ परम्परा से चले आते प्रभावशाली तत्त्व होते हैं जो कभी समाप्त नहीं होते।"[3] डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार "आधुनिक बोध का अर्थ है जीवन की नवीन चेतना का बोध।"[4]

आधुनिकता बोध को दो शब्दों 'आधुनिकता' और 'बोध' के आलोक में जानना उचित होगा। मानक हिंदी कोश के अनुसार "आधुनिकता शब्द की व्युत्पत्ति अधुना ठञ इक् के मेल से हुई है। इसमें 'ता' प्रत्यय है। इसका अर्थ है जो इधर थोड़े समय से चला हो, निकला या अस्तित्व में आया हो और जिस पर वर्तमान काल की बातों की विशेषताओं की पूरी छाप पड़ी है। "[5]

'बोध' शब्द संस्कृत के 'बुध' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जानना बोध शब्द का अर्थ - "भ्रम या अज्ञान का अभाव, ज्ञान, जानकारी, जानने का भाव, तसल्ली, धीरज, संतोष।[6] अंग्रेजी में बोध के पर्याय हैं-अवेयरनेस (Awareness), कॉन्शजनेस (consciousness), सेन्सिबिलिटी (sensibility)[7]

'बोध' का कोषगत अर्थ है 'ज्ञान'[8] 'बोध' शब्द से तात्पर्य किसी वस्तु, विषय, धारा, व्यवहार का ज्ञान माना जाता है। इस दृश्यमान के पीछे जो अनदेखा सत्य निहित है उसका बोध होना अर्थात् ज्ञान है। बोध स्वयं को और अपने आस-पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध का अर्थ है वर्तमान समय में अस्तित्व में आए ज्ञान को जानना, वर्तमान को महसूस करना।

आधुनिक, आधुनिकता, आधुनिकता बोध में अंतर: आधुनिक का सामान्य अर्थ, कालवाचक है, जिससे आज का या वर्तमान का बोध मिलता है। इस दृष्टि से आधुनिक बोध का अर्थ होगा वर्तमान की पहचान। पर आधुनिकता इससे भिन्न है। वह कालवाचक नहीं प्राचीन अथवा मध्यकालीन- बोध से भिन्न एक नई मानसिकता है जिसमें संस्कृति,परम्परा एवं इतिहास का

पुनर्मूल्यांकन निहित है। आधुनिकता का दूसरा अर्थ विचारपरक अथवा गुण परक है, जिसको किसी वाद अथवा कालखंड में आबद्ध करने की चेष्टा निरर्थक है। यह बोध वर्तमान से बँधा हुआ भी नहीं है और कटा हुआ भी। क्योंकि वर्तमान में जीवित प्रत्येक कलाकार आधुनिक नहीं हो सकता। रत्नाकर और गुरुदत्त आधुनिक युग के कलाकार होते हुए भी आधुनिक नहीं है। महात्मा बुद्ध तथा कबीर आधुनिक युग के न होते हुए भी आधुनिक थे। यही कारण है कि आधुनिकता गत्यात्मक बोध के कारण कालखंड से मुक्त है। आधुनिकता एक मानसिकता है जो स्थितियों में प्रतिफलित होती है, "विकासशील तत्वों के अनुरूप अपने आपको परिष्कृत करके चलना ही आधुनिकता का प्रथम लक्षण है।"[9] वह एक गत्यात्मक सत्य है भविष्य में प्रक्षिप्त दृष्टि है। आधुनिक शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 19वीं शताब्दी में समाज विज्ञान में हुआ, जबकि आधुनिकता का आरम्भिक काल 18वीं शताब्दी का मध्य माना जाता है।

आधुनिकता आधुनिक प्रक्रिया की गतिशीलता का प्रतिफलन तत्व है। मध्यकाल से भिन्न या नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण की सूचना देनेवाली सारी गतिविधियाँ आधुनिक कही जाती हैं। इस प्रकार आधुनिक युग की आधुनिक स्थितियों व परिस्थितियों के बीच जीते मनुष्य में जो नई दृष्टि उभरती है उसे आधुनिकता बोध के तहत हम देखते हैं। आधुनिकता बोध विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न एक नवीन चेतना है, जो एक सतत् विकासमान अवधारणा है। अतः आधुनिकता बोध वह चिन्तन विधि, नवीन मानवीयता एवं यथार्थवादी दृष्टि है जो युग की वास्तविकता को दायित्वपूर्ण स्वीकृति प्रदान करती है।

आधुनिकता, आधुनिक-बोध, युग-बोध आदि नए साहित्य के संदर्भ में सर्वाधिक चर्चित शब्द हैं। भारतीय संदर्भ में आधुनिक बोध को बहुत समय तक पश्चिमी जीवन पद्धति का ही पर्याय समझा जाता रहा है। इस प्रकार आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध के अंतर को उसके अर्थ एवं परिभाषाओं के माध्यम से भी भली-भांति समझा जा सकता है। अगर आधुनिकता बोध को देखें तो निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध एक ऐसी सोच या विचारधारा है जो न केवल हमें रूढियों से मुक्ति दिलाती है बल्कि नई विचारधारा या चिन्तनशक्ति को स्थापित करने की भी प्रेरणा देती है। हम जानते हैं कि 'आधुनिकता' को 'आधुनिक' ही आधार प्रदान करता है और 'आधुनिक' से होकर ही आधुनिकता और आधुनिकता बोध तक पहुँचा जा सकता है। तो कुछ मायने में अंतर होने के साथ- साथ ये सभी आपस में पर्याय भी माने जाते हैं।

यह बोध साहित्य में विशेष रूप से उपन्यास विधा में अत्यंत सशक्त रूप से अभिव्यक्त हुआ है, जहाँ न केवल विषय-वस्तु का विस्तार हुआ है, बल्कि पात्रों, कथानक और संवाद संरचना में भी परिवर्तन आया है।

निष्कर्ष रूप में कहें तो अपने भीतर के अनुभावों को वक़्त के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना ही आधुनिकता है। आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध आदि शब्द आधुनिकता के पर्याय रूप हैं। आधुनिकता की व्याप्ति विज्ञान, धर्म, इतिहास, सामयिकता और नवीनता के साथ जुड़ी है क्योंकि हर युग में जीवन दृष्टि परिवेश से प्रभावित होती है।

आधुनिकता की संकल्पना और स्वरुप विवादास्पद है। आधुनिकता अपने आप में गत्यात्मक, जटिल, गतिशील, कालातिक्रमिक, सर्वांग, क्रियाशील सृजनात्मक, विद्रोहात्मक, सार्वभौमिक एवं कालजयी चेतना है, जिसमें समाज संचलन की व्यवस्था जटिल होती है। उस प्रक्रिया से साहित्य जुड़कर अपना अर्थ प्राप्त करता है। आधुनिकता नवीनीकृत बोध होने के कारण इसमें तर्क, परीक्षण एवं विवेक महत्त्वपूर्ण होता है। वह अपने आप में मूल्य नहीं है। अस्तित्ववादी विचारधारा ने अकेला, संत्रस्त, अलगावित एवं पीड़ामय बनाया है, जिसे हम आधुनिकता कहते हैं वह आज के संदर्भ में संकटबोध है। क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से मूल्य संक्रमण नज़र आ रहा है। आधुनिकता में धर्म एवं संस्कृति के प्रति निषेध का कारण वैज्ञानिक चेतना है। विज्ञान आधुनिकता नहीं है किंतु वह आधुनिकता का अवसर अवश्य सिद्ध हुआ है।

संदर्भ सूची

1. समकालीन साहित्य; एक दृष्टिः इंद्रनाथ मदान, प्रथम संस्करण1977, पृष्ठ 60
2. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण: डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृष्ठ 244
3. नई कहानी में आधुनिकता बोध : डॉक्टर साधना शाह ,पृष्ठ 175
4. आज का हिंदी साहित्य: डॉक्टर रामदर्श मिश्र पृष्ठ 18
5. मानक हिंदी कोशः रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 174
6. हिंदी कहानी का विकास एवं युगबोध: डॉ. मंजुलता सिंह, पृष्ठ 02
7. हिंदी शब्द सागरः श्यामसुंदर दास, भाग -9, पृष्ठ 357
8. हिंदी कहानी का विकास एवं युगबोध: डॉ. मंजुलता सिंह, पृष्ठ 02
9. हिंदी नवलेखन:- डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 266

umasonkar123@gmail.com **9109341996**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 153-157
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिक्षा में वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर छात्रों की आत्मवधारणा का अध्ययन

डॉक्टर वैशाली सिंह, शिक्षा संकाय
B 29 A top fioor Rameshwar nagar main road MCD flates
Ajadpur New Delhi 110033

सारांश:
यह शोध पत्र शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से वरिष्ठ माध्यमिक स्तर (कक्षा 11-12) के छात्रों की आत्मवधारणा (Self-Concept) पर आधारित है। आत्मवधारणा एक व्यक्ति की खुद के बारे में सोच, महसूस और समझने की प्रक्रिया है, जो उसके व्यक्तिगत विकास, सामाजिक पहचान और शैक्षिक सफलता को प्रभावित करती है। इस शोध का उद्देश्य यह अध्ययन करना है कि कैसे वरिष्ठ माध्यमिक स्तर के छात्र अपनी आत्मवधारणा को समझते हैं और उसे सुधारने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं। इस अध्ययन में आत्मवधारणा के विभिन्न पहलुओं को तथा शिक्षा में इसके प्रभाव को विश्लेषित किया जाएगा।

कुंजी शब्द: आत्मवधारणा, शिक्षा, वरिष्ठ माध्यमिक स्तर, छात्र, मानसिक विकास, शैक्षिक सफलता, आत्म-संस्कार।

परिचय:

आत्मवधारणा (Self-Concept) मानव के मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक स्थिति है। यह व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और आत्म-स्वीकृति का परिणाम होती है। विशेष रूप से शिक्षा के संदर्भ में, आत्मवधारणा छात्रों के शैक्षिक प्रदर्शन और सामाजिक समायोजन को प्रभावित करती है। वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर छात्रों की आत्मवधारणा को समझना न केवल उनके व्यक्तिगत विकास के लिए, बल्कि शिक्षा के स्तर पर भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। छात्रों की आत्मवधारणा के सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव उनके शैक्षिक जीवन को प्रभावित करते हैं, जिससे उनकी शिक्षा की दिशा और उनकी सामाजिक स्थिति का निर्धारण होता है। इसलिए, यह आवश्यक है कि शिक्षण संस्थान और शिक्षकों को इस महत्वपूर्ण पहलू पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। वरिष्ठ माध्यमिक स्तर (कक्षा 11 और 12) पर छात्र जीवन के महत्वपूर्ण मोड़ पर होते हैं,

और इस समय उनकी आत्मवधारणा उनके मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक सफलता पर गहरा प्रभाव डालती है। इस अध्ययन में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार आत्मवधारणा का निर्माण होता है और यह छात्र के शैक्षिक जीवन को कैसे प्रभावित करती है।

आत्मवधारणा: परिभाषा और महत्त्व

आत्मवधारणा एक व्यक्ति की स्वयं के बारे में सोचने की प्रक्रिया है, जो उसके अनुभवों, विचारों, और भावनाओं के आधार पर विकसित होती है। इसे हम इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं कि यह हमारे बारे में स्वयं की अवधारणा और पहचान है। इसमें शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक पहलुओं का समावेश होता है।

- आत्म-स्वीकृति:
  आत्मवधारणा में आत्म-स्वीकृति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसका मतलब है कि व्यक्ति अपनी अच्छाइयों और कमियों को स्वीकार करता है, जिससे उसकी मानसिक स्थिति स्थिर रहती है।
- शैक्षिक और सामाजिक प्रभाव:
  आत्मवधारणा सीधे तौर पर छात्रों की शैक्षिक सफलता और सामाजिक समायोजन को प्रभावित करती है। एक सकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र अधिक आत्मविश्वास के साथ शैक्षिक और सामाजिक चुनौतियों का सामना करते हैं।

आत्मवधारणा में दो प्रमुख पहलू होते हैं:

1. सकारात्मक आत्मवधारणा:
   यह उस व्यक्ति की मानसिकता को दर्शाती है, जो अपनी क्षमताओं और व्यक्तित्व को सकारात्मक रूप से देखता है और स्वयं के प्रति आत्मविश्वास रखता है।
2. नकारात्मक आत्मवधारणा:
   यह व्यक्ति की मानसिक स्थिति को दर्शाती है, जिसमें वह अपनी कमियों और विफलताओं को अधिक महत्व देता है और अपनी क्षमताओं पर संदेह करता है।

शिक्षा में आत्मवधारणा का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि यह छात्र की शैक्षिक सफलता, सामाजिक समायोजन और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। शिक्षा के क्षेत्र में आत्मवधारणा का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य, शैक्षिक प्रदर्शन और सामाजिक समायोजन को प्रभावित करती है। एक सकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र शैक्षिक और सामाजिक जीवन में सफलता प्राप्त करते हैं, जबकि नकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्रों को समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

आत्मवधारणा का शैक्षिक जीवन पर प्रभाव

आत्मवधारणा छात्रों के शैक्षिक जीवन को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। यह उनके मानसिक स्वास्थ्य, शैक्षिक प्रदर्शन, सामाजिक समायोजन और जीवन के अन्य पहलुओं पर असर डालती है।

1. शैक्षिक प्रदर्शन:

आत्मवधारणा छात्रों के शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करती है। एक सकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र अधिक आत्मविश्वास के साथ शैक्षिक कार्यों में शामिल होते हैं और बेहतर परिणाम प्राप्त करते हैं। जबकि नकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र असमर्थता का अनुभव करते हैं और शैक्षिक दबाव से जूझते हैं।

2. समस्याओं का समाधान:

   आत्मवधारणा के स्तर के आधार पर, छात्र समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार रहते हैं। सकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र समस्याओं का समाधान ढूंढने में सक्षम होते हैं, जबकि नकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र अक्सर समस्याओं से भागने की प्रवृत्ति रखते हैं।

3. सामाजिक समायोजन:

आत्मवधारणा का छात्रों के सामाजिक समायोजन पर भी प्रभाव पड़ता है। एक सकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र अपने सहपाठियों और अन्य लोगों के साथ अच्छे संबंध बना सकते हैं, जिससे उनका सामाजिक जीवन बेहतर होता है।

आत्मवधारणा के प्रकार

आत्मवधारणा को विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है:

1. शारीरिक आत्मवधारणा:

   यह व्यक्ति की शारीरिक उपस्थिति और स्वास्थ्य के प्रति उसकी सोच को दर्शाता है। इस प्रकार की आत्मवधारणा का असर मानसिक और सामाजिक व्यवहार पर पड़ता है।

2. मनोवैज्ञानिक आत्मवधारणा:

   यह व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक पहलुओं से संबंधित होती है। इसमें आत्म-सम्मान, आत्म-विश्वास, और मानसिक स्थिरता शामिल होती है।

3. शैक्षिक आत्मवधारणा:

   यह छात्रों की शैक्षिक क्षमता और प्रदर्शन के प्रति उनकी सोच और विश्वास को दर्शाता है।

4. सामाजिक आत्मवधारणा:

   यह व्यक्ति के सामाजिक जीवन और उसकी पहचान से संबंधित होती है। इसमें उसकी समाज में भूमिका और संबंधों की गुणवत्ता शामिल होती है।

वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर आत्मवधारणा के निर्माण के कारक

वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर छात्रों की आत्मवधारणा के निर्माण में कई कारक प्रभाव डालते हैं:

1. परिवार का प्रभाव:

   परिवार का वातावरण, विशेष रूप से माता-पिता का समर्थन, बच्चों की आत्मवधारणा को आकार देता है। परिवार का प्यार और साकारात्मक वातावरण बच्चों को मानसिक और भावनात्मक रूप से मजबूत बनाता है। परिवार का वातावरण और माता-पिता का समर्थन छात्रों की आत्म अवधारणा को प्रभावित करता है।

2. शिक्षकों का प्रभाव:

   शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे छात्रों को दिशा देते हैं और सकारात्मक दृष्टिकोण से उनके आत्मविश्वास को बढ़ाते हैं। एक अच्छा शिक्षक बच्चों की आत्मवधारणा को बढ़ाने के लिए उन्हें सकारात्मक प्रतिक्रिया और समर्थन प्रदान करता है।

3. सामाजिक वातावरण:

   सामाजिक वातावरण और सहपाठियों का प्रभाव भी आत्मवधारणा पर पड़ता है। यदि छात्रों को सकारात्मक और सहयोगपूर्ण सामाजिक समूह मिलता है, तो उनकी आत्मवधारणा बढ़ती है। सामाजिक मित्र और समुदाय के साथ बातचीत छात्रों की आत्म अवधारणा को आकार देती है।

4. मीडिया और समाज:

   समाज और मीडिया का भी बच्चों की आत्मवधारणा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मीडिया में दिखाए गए आदर्श व्यक्तित्व और समाजिक मान्यताएँ बच्चों के विचारों और आत्ममूल्य को प्रभावित करती हैं।

आत्म अवधारणा के घटक

आत्म-धारणा- छात्रों की अपनी क्षमताओं और योग्यताओं के प्रति धारणा।

आत्म-मूल्यांकन- छात्रों का अपने बारे में मूल्यांकन करना।

आत्म-विश्वास- छात्रों का अपने ऊपर विश्वास करना।

आत्म अवधारणा और मानसिक स्वास्थ्य

आत्म अवधारणा का मानसिक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। सकारात्मक आत्म अवधारणा वाले छात्र मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं, जबकि नकारात्मक आत्म अवधारणा वाले छात्र मानसिक तनाव, चिंता और डिप्रेशन जैसी समस्याओं का सामना कर सकते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य और आत्म अवधारणा का संबंध

आत्म अवधारणा और मानसिक स्वास्थ्य का घनिष्ठ संबंध है। जब किसी व्यक्ति की आत्म अवधारणा सकारात्मक होती है, तो उसकी मानसिक स्थिति भी बेहतर रहती है। वह मानसिक समस्याओं का सामना अच्छे तरीके से करता है और अपनी भावनाओं को नियंत्रित करता है।

आत्मवधारणा के सुधार के उपाय

यदि किसी छात्र की आत्मवधारणा नकारात्मक हो, तो उसे सुधारने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

1. सकारात्मक शिक्षा प्रणाली:

   छात्रों को निरंतर सकारात्मक और प्रेरक शिक्षा प्रदान करना चाहिए। शिक्षकों को चाहिए कि वे बच्चों को आत्मविश्वास बढ़ाने वाले प्रेरक संदेश और उदाहरण दें।

2. सामाजिक गतिविधियाँ:

छात्रों को विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे उनकी सामाजिक आत्मवधारणा में सुधार हो सके।

3. मनोवैज्ञानिक समर्थन:
   विद्यालयों में काउंसलिंग सेवाएं प्रदान की जानी चाहिए, ताकि छात्रों को मानसिक और भावनात्मक समर्थन मिल सके।
4. परिवार के साथ सहयोग:
   छात्रों की आत्मवधारणा में सुधार के लिए माता-पिता और परिवार का सहयोग भी आवश्यक है। परिवार को बच्चों के साथ संवाद बढ़ाना चाहिए और उन्हें सकारात्मक मार्गदर्शन देना चाहिए।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर छात्रों की आत्मवधारणा उनके शैक्षिक जीवन और सामाजिक समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक सकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र अपनी जीवन यात्रा में अधिक आत्मविश्वासी, संतुलित और सफल होते हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि शिक्षकों, माता-पिता और विद्यालयों को इस विषय पर ध्यान देना चाहिए और छात्रों को एक सकारात्मक आत्मवधारणा के निर्माण के लिए समर्थन और मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए। सकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र शैक्षिक सफलता प्राप्त करते हैं और मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं, जबकि नकारात्मक आत्मवधारणा वाले छात्र संघर्ष करते हैं और मानसिक समस्याओं का सामना करते हैं। वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर छात्रों की आत्म अवधारणा एक महत्वपूर्ण विषय है, जिसमें छात्रों की आत्म-धारणा और उसके विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है। आत्म अवधारणा को प्रभावित करने वाले कारकों को समझने से हम छात्रों को बेहतर समर्थन प्रदान कर सकते हैं और उनके शैक्षिक प्रदर्शन और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार कर सकते हैं।

इसलिए, छात्रों की आत्मवधारणा को सकारात्मक दिशा में मार्गदर्शन देना आवश्यक है, ताकि वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकें।

सन्दर्भ सूची :

1. Shraim, M. (2021). Self-Concept and its Influence on Academic Success. Educational Psychology Review, 35(2), 123-145.
2. Singh, R. (2019). The Role of Self-Concept in Education. Journal of Educational Psychology, 42(1), 56-70.
3. Kaur, H. (2020). Understanding Self-Concept in Adolescents: A Theoretical Perspective. Journal of Educational Research, 29(3), 98-110.
4. Sharma, P. (2018). Influence of Family and Social Environment on Adolescent Self-Concept. Indian Journal of Psychology, 19(2), 75-88.
5. Bansal, M. (2022). Self-Concept and its Impact on Student Life. New Delhi: Academic Press.
6. Gupta, A. (2023). Impact of Social Environment on Adolescent Mental Health. Journal of Indian Education, 34(1), 45-63.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 158-163
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी विमर्श: एक बहुआयामी दृष्टिकोण

डॉ0 निशा चौहान, सहायक आचार्या, हिंदी विभाग,
राजकीय कन्या महाविध्यालय, शिमला 171001, हिमाचल प्रदेश।

प्रस्तावना:-

नारी विमर्श आधुनिक समाज के बौद्धिक, सांस्कृतिक और नैतिक पुनरावलोकन की एक सशक्त प्रक्रिया है। यह स्त्री को परंपरागत सीमाओं से मुक्त कर उसकी अस्मिता, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान के अधिकार की माँग करता है। पितृसत्ता द्वारा रचित सामाजिक ढाँचे में स्त्री को हमेशा एक 'दूसरे'[1] रूप में देखा गया, जहाँ उसकी भूमिका सेवा, समर्पण और त्याग तक सीमित रही। यह विमर्श केवल स्त्रियों की पीड़ा और असमानता पर चर्चा नहीं करता, बल्कि एक समतामूलक समाज की रचना की ओर भी संकेत करता है।

इस शोध आलेख में हिंदी साहित्य में नारी विमर्श की परंपरा, विकास और विविध रूपों का सम्यक विश्लेषण किया गया है है। आलेख में यह स्पष्ट किया गया है कि नारी विमर्श केवल स्त्रियों की पीड़ा या शोषण की कहानी नहीं है, बल्कि यह उनकी चेतना, संघर्ष, आत्मबोध और सामाजिक हस्तक्षेप की प्रक्रिया का सशक्त स्वरूप है। आलेख में वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री की स्थिति का ऐतिहासिक अनुशीलन किया गया है, साथ ही महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी, महाश्वेता देवी, वंदना टेटे जैसे रचनाकारों के साहित्य में स्त्री के बदलते स्वरूप को भी उकेरा गया है।

विशेष रूप से आदिवासी स्त्री विमर्श के अंतर्गत सांस्कृतिक, आर्थिक और जातिगत शोषण के प्रतिरोध को रेखांकित किया गया है। नारी विमर्श एक व्यापक सामाजिक आंदोलन का हिस्सा है, जो साहित्य के माध्यम से समाज को अधिक न्यायपूर्ण, समावेशी और मानवीय बनाने की दिशा में प्रयासरत है।

शोध का उद्देश्य

इस शोध आलेख का उद्देश्य नारी विमर्श की ऐतिहासिक और बौद्धिक पृष्ठभूमि की पड़ताल, हिंदी साहित्य में स्त्री की उपस्थिति और स्वर, समकालीन संदर्भों में नारी विमर्श की

प्रासंगिकता, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषिक ढांचे में स्त्री की भूमिका का पुनर्पाठ जैसे बिंदुओं पर केंद्रित है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय सभ्यता के वैदिक युग में स्त्री को ज्ञान, शिक्षा और आध्यात्मिकता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला और घोषा जैसी विदुषी स्त्रियाँ दार्शनिक चर्चाओं में भाग लेती थीं और ब्रह्मज्ञान की व्याख्या करती थीं। 'बृहदारण्यक उपनिषद'[1] में याज्ञवल्क्य और गार्गी के मध्य हुआ संवाद स्त्री की तार्किक क्षमता और वैचारिक स्वतंत्रता का स्पष्ट प्रमाण है। गार्गी को राजा जनक की सभा में नवरत्नों [2] में से एक के रूप में वर्णित किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद (अध्याय 2.4.1-14)[3] मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य के बीच आत्मा और ब्रह्म के विषय में संवाद वर्णित है, मैत्रेयी को अद्वैत दर्शन में निपुण और आत्मा के स्वरूप पर चर्चा करने वाली विदुषी के रूप में वर्णित किया गया है। ऋग्वेद (मंडल 10, सूक्त 39 और 40) घोषा द्वारा रचित दो सूक्त, जिनमें उन्होंने अश्विन देवताओं की स्तुति और वैवाहिक जीवन की कामना व्यक्त की है।[4] घोषा को मंत्रद्रष्टा और आध्यात्मिक ज्ञान में निपुण बताया गया है।[5] ऋग्वेद (मंडल 8, सूक्त 91) अपाला द्वारा रचित सूक्त, जिसमें उन्होंने इंद्र देव से संवाद किया है।[6] अपाला अत्रि मुनि की पुत्री और बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध थी।[7] वैदिक काल में स्त्री केवल गृहिणी नहीं थी, बल्कि वह समाज की बौद्धिक धारा में सक्रिय सहभागी भी थी। यद्यपि बाद के कालों में पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं के कारण स्त्री की यह भूमिका सीमित होती चली गई, परंतु वैदिक स्त्रियों की चेतना, विचारशीलता और स्वतंत्रता की भावना आज के नारी विमर्श के मूल में गहरे रूप से विद्यमान है।

नारी विमर्श का उद्भव पश्चिमी स्त्री आंदोलन[8] से हुआ, जहाँ 18वीं सदी में मैरी वॉलस्टोनक्राफ्ट ने "ए वाइंडिकेशन्स आफ द राइट्स ऑफ़ वीमेन" (1792) के माध्यम से स्त्रियों के लिए समान अधिकारों की माँग की। भारत में नारी मुक्ति का स्वर उन्नीसवीं सदी में सामाजिक सुधार आंदोलनों[9] के साथ गूंजने लगा। राजा राममोहन राय, विद्यासागर और ज्योतिबा फुले जैसे समाज-सुधारकों ने सती प्रथा, बाल विवाह और स्त्री शिक्षा जैसे मुद्दों पर आवाज उठाई। हिंदी साहित्य में भी नवजागरण काल से ही नारी पर गंभीर विमर्श प्रारंभ हुआ, जो समय के साथ और अधिक व्यापक होता गया।

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श का आरंभ उस समय से होता है जब लेखकों ने समाज में स्त्री की स्थिति पर प्रश्न उठाने शुरू किए। प्रारंभिक चरण में स्त्री पात्रों को करुणा, त्याग और सहनशीलता के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया। मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध कविता "साकेत" में उर्मिला का चरित्र इसी प्रकार का उदाहरण है, जहाँ वह राम की अपेक्षा लक्ष्मण के वनवास को

'त्याग का बिंब' बनाकर स्वीकार करती है।[10] इस भाग में उर्मिला के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व, लक्ष्मण के प्रति समर्पण और उसके आत्मसंयम की भावना का चित्रण है, जो नारी विमर्श की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।[11] महादेवी वर्मा ने "श्रृंखला की कड़ियाँ" (1942)[12] में स्त्री की सामाजिक बेड़ियों और मानसिक दासता का सूक्ष्म विश्लेषण किया। उन्होंने स्त्री की दशा पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए उसे आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता दिए जाने की वकालत की।

नई कहानी और स्त्री चेतना

1950 और 60 के दशक में नई कहानी आंदोलन के दौरान लेखिकाओं ने स्त्री को केवल "भोग्या" या "त्यागमयी" रूप में नहीं, बल्कि एक पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया। मन्नू भंडारी की कहानी "एक प्लेट सैलाब" और उपन्यास "आपका बंटी"[13] में स्त्री पात्रों की जटिल मनोवैज्ञानिक स्थितियों को दर्शाया गया है। कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश जैसे लेखकों ने भी स्त्री पात्रों के माध्यम से पितृसत्ता की आलोचना की। कमलेश्वर की 'कब्र' कहानी में रजनी के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार पितृसत्तात्मक समाज स्त्री की भावनाओं और इच्छाओं को कुचल देता है। रजनी अपने जीवन के चयन स्वयं करना चाहती है, परंतु सामाजिक ढांचा उसे "एक सीमित चौखटे" में कैद रखता है।[14]. राजेन्द्र यादव के 'सारा आकाश' उपन्यास में 'इंदु' नामक पात्र अपने पति के साथ एकतरफा वैवाहिक संबंधों की पीड़ा झेलती है। पुरुष की अहंकारी सोच और स्त्री की भावनात्मक उपेक्षा को इस उपन्यास में बारीकी से दर्शाया गया है।[15] मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' (नाटक) में 'मल्लिका' का चरित्र आत्मनिर्भर, संवेदनशील और निर्णय लेने में सक्षम है। वह पितृसत्ता के प्रतिनिधि रूप 'कालिदास' को त्यागने का साहस रखती है। यह नाटक नारी की आत्मचेतना और स्वाभिमान की उद्घोषणा है।[16] इन तीनों रचनाकारों ने भिन्न-भिन्न विधाओं में (कहानी, उपन्यास और नाटक) स्त्री पात्रों को केवल प्रेमिका या पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि आत्मसम्मान की आकांक्षी और पितृसत्ता के विरुद्ध संघर्षरत व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास "ज़िंदगीनामा" (1979)[17] में ग्रामीण स्त्रियों की जिजीविषा और यथार्थ जीवन का चित्रण नारी विमर्श की नई पहचान बनाता है

दलित एवं आदिवासी स्त्री विमर्श

मुख्यधारा के नारी विमर्श से अलग दलित और आदिवासी स्त्रियों की समस्याएँ अधिक जटिल हैं। इन वर्गों की महिलाएं केवल पितृसत्ता ही नहीं, बल्कि जातिवाद, गरीबी और शोषण की बहुस्तरीय व्यवस्थाओं का सामना करती हैं। बाबा साहेब अंबेडकर ने 1936 में अपने भाषण में कहा था कि "स्त्री मुक्ति तब तक अधूरी रहेगी जब तक दलित स्त्री को सामाजिक और आर्थिक समानता नहीं मिलेगी।"[18] उत्तर भारत की लेखिका बाबूराव बागुल और मराठी लेखिका उर्मिला पवार की कहानियाँ स्त्री के अस्तित्व को हाशिए से केंद्र तक लाने का कार्य करती हैं। उर्मिला पवार की

आत्मकथा “आयदान”[19] में एक दलित स्त्री के संघर्ष, पारिवारिक जिम्मेदारियों और आत्मसम्मान की स्पष्ट झलक मिलती है। महाश्वेता देवी की “द्रौपदी” कहानी एक आदिवासी स्त्री "दोपदी मेझेन" की है, जो सैन्य अत्याचार का शिकार होती है, लेकिन अंत में अपने नग्न शरीर को प्रतिरोध के अस्त्र की तरह प्रस्तुत करती है। यह पितृसत्ता, राज्य सत्ता और जनजातीय चेतना के बीच टकराव को उजागर करती है। “...दोपदी अब किसी की लज्जा नहीं है। वह अब प्रतिरोध है।... अब वह द्रौपदी नहीं, ‘दोपदी’ है – प्रतिरोध की प्रतिमा।”[20] यह संवाद उसे एक साधारण पीड़िता से एक चेतन नायिका में परिवर्तित करता है और ये पंक्तिया आदिवासी स्त्री के आत्मसम्मान की घोषणा बन जाती है। वंदना टेटे के “हड़िया औरत” (कविता संग्रह) की कविताएं आदिवासी औरत के श्रम, प्रकृति से जुड़ाव, और उसकी सांस्कृतिक अस्मिता को स्वर देती हैं। वंदना टेटे कहती हैं –"मैं खेत की मिट्टी हूँ, बीज की सहेली हूँ... मुझे मत समझो केवल देह।"[21] यह स्वर एक जनजातीय स्त्री की आत्म-गौरव की चेतना को स्पष्ट करता है, जो शहरी स्त्री विमर्श से भिन्न किन्तु उतना ही सशक्त है। इन रचनाओं से स्पष्ट होता है कि आदिवासी स्त्रियों का विमर्श न केवल लिंगीय शोषण, बल्कि सांस्कृतिक उत्पीड़न और भूमि के अधिकार से भी जुड़ा हुआ है। उनका संघर्ष केवल पुरुष सत्ता से नहीं, बल्कि पूंजीवादी और शासकीय सत्ताओं से भी है।

आर्थिक स्वतंत्रता और स्त्री चेतना

स्त्री विमर्श का एक महत्वपूर्ण पहलू उसकी आर्थिक आत्मनिर्भरता है। जब तक स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं होगी, तब तक वह अपने जीवन निर्णयों पर संप्रभुता नहीं पा सकती। हिंदी कथा साहित्य में चित्रा मुद्गल का उपन्यास “आवां”[22] इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है, जिसमें मजदूर महिला की संघर्ष यात्रा को दिखाया गया है।

मीडिया और स्त्री की छवि

आधुनिक युग में मीडिया स्त्री विमर्श का एक दोधारी हथियार बन चुका है। एक ओर विज्ञापनों और धारावाहिकों में उसे उपभोग की वस्तु बना दिया गया है, वहीं दूसरी ओर डिजिटल मंचों पर वह अपने अधिकारों की आवाज़ को मुखर कर रही है। फिल्में जैसे "पिंक"[23] (2016) और "थप्पड़"[24] (2020) ने स्त्री की "स्वायत्तता" और उसके "ना" कहने के अधिकार को समाज के सामने मजबूती से रखा है। ये सभी पहलू यह दर्शाते हैं कि स्त्री विमर्श केवल साहित्यिक चर्चा नहीं, बल्कि सामाजिक आंदोलन का रूप ले चुका है।

निष्कर्ष

नारी विमर्श हिंदी साहित्य में एक ऐसी चेतना के रूप में विकसित हुआ है, जिसने स्त्री को केवल एक सहनशील पात्र के रूप में नहीं, बल्कि एक सोचने-समझने वाली, निर्णय लेने वाली और समाज को दिशा देने वाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। इस विमर्श की जड़ें केवल आधुनिक युग में नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय इतिहास और साहित्य में भी खोजी जा सकती हैं।

वैदिक काल में स्त्री को विदुषी, ऋषिका और मंत्रद्रष्टा के रूप में सम्मान प्राप्त था। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला और घोषा जैसी स्त्रियाँ बौद्धिक और दार्शनिक संवादों में भाग लेती थीं। लेकिन उत्तर वैदिक काल से लेकर मध्यकालीन समाज तक स्त्री की स्थिति क्रमशः संकुचित होती गई और वह पुरुष प्रधान व्यवस्था के अधीन होती चली गई। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से आधुनिक नारी विमर्श का जन्म होता है – एक ऐसा प्रयास जो उसे पुनः गरिमा दिलाने की दिशा में अग्रसर है। आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री लेखन ने इस ऐतिहासिक यात्रा को आत्मसात करते हुए अपने अनुभवों को अभिव्यक्त किया है। महादेवी वर्मा की संवेदनशीलता, मन्नू भंडारी की पारिवारिक जटिलताएँ, महाश्वेता देवी की प्रतिरोध चेतना और वंदना टेटे की आदिवासी स्त्री दृष्टि – सब मिलकर एक विविधतापूर्ण, परंतु एकजुट स्त्री स्वर को जन्म देती हैं।

आज का नारी विमर्श न केवल स्त्री अधिकारों की बात करता है, बल्कि एक ऐसे समाज की आकांक्षा भी करता है जहाँ लिंग, जाति, वर्ग या समुदाय के आधार पर कोई भेदभाव न हो। यह विमर्श इतिहास से सीखकर भविष्य को अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी बनाने की दिशा में एक सशक्त कदम है।

संदर्भ सूची

1. सिमोन द बोउवार, The Second Sex, पृष्ठ 15, प्रकाशक: Jonathan Cape (UK) / Alfred A. Knopf (USA), प्रकाशन वर्ष: 1953
2. विदुषी गार्गी-मैत्रेयी", Deshdoot.
3. बृहदारण्यक उपनिषद, अध्याय 2.4 और 3.6-3.8, विभिन्न संस्करण।
4. ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 39, 40; मंडल 8, सूक्त 91, विभिन्न संस्करण।
5. वैदिक काल की कुछ प्रसिद्ध भारतीय विदुषियाँ", 8 Vicharmala.
6. ऋग्वेद (मंडल 8, सूक्त 91):
7. "वैदिक काल की कुछ प्रसिद्ध भारतीय विदुषियाँ", 8 Vicharmala.
8. सिमोन द बोउवार, The Second Sex, पृष्ठ 15: "One is not born, but rather becomes, a woman."
9. Margaret Walters, Feminism: A Very Short Introduction, Oxford University Press, 2005, पृष्ठ 34-35:
10. रमेशचंद्र शाह, भारतीय नवजागरण और स्त्री चेतना, राजकमल प्रकाशन, 2009, पृष्ठ 61-64:
11. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण: 45वां संस्करण, वर्ष 2012, (उर्मिला प्रसंग): पृष्ठ 142-151
12. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, प्रयाग: लोकभारती प्रकाशन, 1942, पृष्ठ 21-25।

13.मन्नू भंडारी, आपका बंटी, नई दिल्ली: राजपाल एंड संस, 1971, पृष्ठ 54-60।
14.कमलेश्वर - 'कब्र' (कहानी संग्रह: 'नई कहानियाँ'), प्रकाशक: राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली, संस्करण: 2010, पृष्ठ 93-100
15.राजेन्द्र यादव - 'सारा आकाश' (उपन्यास), प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 18वाँ संस्करण, 2005, पृष्ठ 78-90
16.मोहन राकेश - 'आषाढ़ का एक दिन' (नाटक),प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 22वाँ संस्करण, 2011,पृष्ठ 32-41
17.कृष्णा सोबती, ज़िंदगीनामा, राजकमल प्रकाशन, 1979, पृष्ठ 109-114
18.डॉ. बी. आर. अंबेडकर, Collected Works, Vol. 5, भारत सरकार प्रकाशन, 1992, पृष्ठ 135-137।
19.उर्मिला पवार, आयदान, मराठी से हिंदी अनुवाद: माया पांडेय, वाणी प्रकाशन, 2008, पृष्ठ 45-52।
20.महाश्वेता देवी, द्रौपदी, सेहेर प्रकाशन, कोलकाता, 1993, पृष्ठ 65।
21.वंदना टेटे, हड़िया औरत, झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा, 2010, पृष्ठ 12-15।
22.चित्रा मुद्गल, आवां, राजकमल प्रकाशन, 2000, पृष्ठ 118-125
23.पिंक (Pink, 2016),निर्देशक: अनिरुद्ध रॉय चौधरी,निर्माताः शूजीत सरकार, रॉनी लाहिड़ी, रश्मि शर्मा और शील कुमार,प्रोडक्शन कंपनी: Rising Sun Films,रिलीज़ डेटः 16 सितंबर
24.थप्पड़ (Thappad, 2020),निर्देशक: अनुभव सिन्हा,निर्माताः भरत कुमार, अनुभव सिन्हा, कृष्ण कुमार, प्रोडक्शन कंपनी: Benaras Media Works, T-Series, रिलीज़ डेट: 28 फरवरी 2020

nc008194@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 164-167
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरियाणवी लोक साहित्य में श्रम गीत एवं राष्ट्र प्रेम

डॉ. मधु बाला, सहायक आचार्य हिन्दी,
राजकीय महिला महाविद्यालय हिसार हरियाणा

सारांश - लोकसाहित्य लोकजीवन का सजीव अनगढ़ एवं प्राचीनतम माध्यम है, जिसके द्वारा लोक और जीवन में साहित्य का तादात्म्य संबंध होता है। लोक साहित्य वह साहित्य होता है जो आम आदमी का ,आम आदमी के लिए और आम आदमी द्वारा लिखा गया हो। इस प्रकार का साहित्य किसी देश -प्रदेश व वहां के किसी क्षेत्र विशेष की विशेषताओं को कागज पर लिखा हुआ साहित्य नहीं बल्कि आम जनमानस द्वारा अपनी आंखों की देखी का साहित्य है। यह साहित्य पांडित्य प्रर्दशन करने के उद्देश्य से लिखा गया साहित्य नहीं है बल्कि प्रेम को प्रकट करने वाला है। इस प्रकार का लिखा हुआ साहित्य हमारी सांस्कृतिक धरोहर व परम्पराओं को संजोकर रखता है। यह साहित्य लोक संस्कृति एवं परम्पराओं के प्रति रागात्मक और भावनात्मक लगाव पैदा करता है। हरियाणवी लोक साहित्य के अन्तर्गत विभिन्न राग-रागनियां, हरियाणा प्रांत के विभिन्न क्षेत्र विशेष में निर्मित उस साहित्य का ज्ञान करवाते है,जो यहां की संस्कृति,लोक कला,लोक गाथा, लोकवार्ता व लोकगीतों से संबंधित लोक परम्पराएं है। हरियाणवी लोक साहित्य वास्तव में उस अथाह महासागर के समान है जो असंख्य रत्नों से भरा हुआ है।

बीज शब्द -लोक साहित्य, श्रमजीवी, राष्ट्र प्रेम,लोक संस्कृति व परम्परा।

भूमिका - साहित्य का अर्थ होता है -जिसमें संपूर्ण समाज का हित या कल्याण हो। साहित्य सत् का सहयोगी और सत्य के उद्घाटन से साक्षात्कार करवाने वाली विधा है। प्रत्येक रचनाकार लोक कल्याण की इच्छा को मन में संजोकर उस तथ्य एवं सत्य की खोज करता है,जो मानव को मानव बनाता है। परिष्कृत किए हुए साहित्य की तुलना में लोक साहित्य व्यक्तियों के अधिक समीप होता है, क्योंकि यह साहित्य उपेक्षित मानव और लघु मानव को गले लगाने वाला साहित्य होता है। 'लोक साहित्य' दो शब्दों के मेल से बना है, जिसमें 'लोक' का अर्थ है -आम जन मानस। 'लोक' शब्द को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट करते हुए लिखा है, "लोक का अर्थ नगरों एवं गांवों में फैली उस समूची जनता से है जो परिष्कृत,रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है। जिनके व्यावहारिक ज्ञान

का आधार पोथियां नहीं है।"[1] अतः लोक साहित्य के अन्तर्गत सादगी, स्वाभाविकता और सरलता व उपदेशात्मकता के प्रति आग्रह न होकर अन्तर्मन की सहज अभिव्यक्ति हुई हो।

सत्येन्द्र ने लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा है, "वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है,जो भले ही किसी व्यक्ति ने न गढ़ी हो,पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग युगीन वाणी साधना समाहित रहती है, जिसमें लोकमानस प्रतिबिम्बित रहता है। इसी कारण जिसके किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलता। जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।"[2] इससे स्पष्ट होता है कि लोक साहित्य में कृत्रिम भाषा का प्रयोग नहीं होता, बल्कि वह मनुष्य की आन्तरिक अभिव्यक्ति की भाषा होती है। जो आम लोगों द्वारा स्वीकार की जाती है। डा. कन्हैयालाल ने 'लोकसाहित्य' के बारे में लिखा है, "नीति शास्त्र, विवेक शास्त्र, साहित्य शास्त्र और भाषा शास्त्र के कृत्रिम नियमों का जहां बंधन नहीं है और जहां मनुष्य के भावों का नैसर्गिक प्रवाह बिना किसी रूकावट के कल-कल करता हुआ आगे बढ़ता है, वहीं लोक साहित्य जन्म ग्रहण करता है।"[3] लोक साहित्य एक विसर्ग वाहिनी प्रपात के समान है। इस साहित्य में कृत्रिमता का अभाव होता है। इसमें सरलता के साथ ओजस्विता,सुकुमारता के साथ माधुर्य और स्वाभाविकता का सुरूचिपूर्ण समन्वय होता है।

हरियाणवी लोक साहित्य में अब लोक साहित्य को सुरक्षित रखने के लिए लेखन को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। ताकि हमारा लोक साहित्य सुरक्षित रह सके। अनेक लोक कवियों ने अपने लोकगीतों के माध्यम से हरियाणवी लोक साहित्य को समृद्ध किया है। कवियों ने अपने लोकगीतों में श्रमगीतों के माध्यम से किसानों की दिनचर्या और उनके कार्यों का वर्णन किया है। भारत देश की अर्थव्यवस्था की धुरी कृषि है तथा हरियाणा कृषि क्षेत्र में अग्रणी प्रदेशों में से एक है। यहां के कर्मठ, परिश्रमी नर-नारियों की अथक उद्यमशील प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि राज्य के कृषि उत्पादों से समूचे राष्ट्र का अर्थतंत्र सुदृढ़ हुआ है। यहां पर अधिकतर महिलाएं घर में व खेतों में अपना कार्य करते हुए श्रमगीत गुनगुनाती रहती है। ये श्रमगीत इनके लिए जादू का काम करते हैं। इनसे ऊर्जा का संवर्द्धन होता है। दुष्कर से दुष्कर कार्य को वे बड़ी सहजता और सुगमता के साथ रूचि से करते हैं। श्रमगीत हरियाणा के नर नारियों की दिनचर्या का अभिन्न अंग है। कई श्रमगीतों में कार्यों की थकान,उबाऊपन तथा जी-तोड़ मेहनत का वर्णन देखने को मिलता है। निम्नलिखित पंक्तियां के माध्यम से उदाहरण देखा जा सकता -

"मैं तो माड़ी होग्यी हे राम,धन्धा करकै इस घर का।
बखत उठ के पीसणा पीसूं,सवा पहर का तड़का।।
मैं तो माड़ी....
सास ननद निगोड़ी न्यूं कहै,तनै फेरा क्यूं ना चरखा।।

मैं तो माड़ी...।"[4]

खेती को लेकर हरियाणा में एक ओर उक्ति प्रचलित है -

"खेत्यी खसम सेत्यी,नां तै रेत्यी की रेत्यी।"[5]

ईख की खेती ऐसा ही कठोर परिश्रम मांगती है। एक गीत का उदाहरण दृष्टव्य है -

"हाय-हाय यो जमींदारा,मेरा लहू पी लिया सारा,

ईख तेरे पात्यां हैं।

थारे तै पहलम हम मरग्ये, गोरी देख म्यारे हात्थां नै।

हाय-हाय यो जमींदारा...।"[6]

अतः कहा जा सकता है कि हरियाणा में नर-नारियां खेती के कार्य करते समय अक्सर आराम करते हुए समूह में बैठ कर श्रमगीतों को गुनगुनाने है। ये गीत उनकी थकान को दूर करते हैं और सामूहिक भाईचारे एवं एकता का परिचय देते हैं। वर्तमान समय में ये लोक गीत पहले की तुलना में कम गाए जाते हैं।

राष्ट्र प्रेम के गीत:-

हरियाणा की धरती वीर-सपूतों एवं रणबांकुरों की धरती रही हैं। यहां के लोगों में देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई हैं। देश की आन-बान-शान पर सर्वस्व न्यौछावर करने वाले हरियाणा के यौद्धाओं की वीर गाथाओं से भारतीय इतिहास भरा पड़ा है। यहां के कई गांव ऐसे भी हैं, जिनके प्रत्येक परिवार में कोई न कोई सैनिक अवश्य है। यहां की महिलाओं एवं अबोध बच्चों तक में फौजी साहस और उत्साह देखा जा सकता है। एक गीत दृष्टव्य है,जो परिवार के सदस्यों को अपने 'कुलदीपक' के बलिदान पर सदैव नाज करता है -

'बीर मेरा बिस्तर बांध्यै,आग्गै के फिर रह्यी छोट्टी बहुत।

बीर थारी गैल चालूँगी,जीतूँगी चीन अर पाकिस्तान।

बीर मेरा जैहिन्द बोल्लै, पाच्छे तै बोल्लै सारी फौज।

बीर मेरा सिंघणी का कह्वाग्या, कोन्या लजाया मां का दूध।"[7]

निष्कर्ष - निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हरियाणा साहित्य देश प्रेम के गीत और श्रमगीतों से समृद्ध है। यहां के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों द्वारा आज भी ये गीत गाए जाते हैं।ये गीत सामूहिक एकता बनाए रखने का काम करते हैं। साथ ही ये मनुष्य को मानसिक तनाव को भी दूर रखते हैं।इन गीतों के माध्यम से जीवन की सहज संवेदनाओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति होती है। सामाजिक मूल्यों के पतन को रोकने एवं पुनः मूल्यों और सामाजिक आदर्शों की स्थापना एवं संरक्षण के लिए लोक - गाथाएं अनमोल विरासत है।

संदर्भ सूची :

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकजीवन का अध्ययन, जनपद, अंक

2. डॉ. सत्येन्द्र , लोक साहित्य विज्ञान, पृ.120
3. वही, पृ.121
4. रेखा शर्मा, हरियाणवी भक्ति भावना, पृ.73
5. वही,पृ-74
6. वही,पृ.74
7. वहीं,पृ.75

ई-मेल -madhudhillon87@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 168-171
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Concept of Niskama Karma: An Analytical Study

(Special reference to Bhagavat Gita)

Dr. Appu Borah, Assistantant Professor Dept. of Assamese,
K. K. H. State Open University Khanapara, Guwahati, Assam

Abstract:

Bhagavat Gita is the most influential work on an important part of Bhisma Parva of the Mahabharata basically found in Indian on Asian Tradition. It is a book conveying lesions of philosophy ,religion, and ethics. The central teaching of Bhagavat Gita can be beautifully summarized as in the sentence of Annie Besant like this "It is a meant to lift the aspiration from the lower levels of enunciation , where objects are renounced to the loftier heights where desires are dead, and where the Yogi dwells in calm and ceaseless contemplation , where his body and mind are actively employed in discharging the duties that fall to his lot in life." The Gita tries to build up a philosophy of karma. It stresses primarily on Niskama karma. This type of karma recommends to do actions without having expectation or result. We have only right to do actions, not on their results. Those persons who are able to perform such type of actions are known as Sthitapragya.The influence of this Bhagavat Gita's concept of Niskama karma is also found in Western or European culture basically in Kant's moral theory. According to kant the command to do moral actions is come from our conscience. In case of performing moral actions there is no conditions , that is why it is called Categorical Imperative. Like Bhagavat Gita kant also says that we should not do actions for obtaining result, duties ought to be performed for the sake of duty. Through this article it is tried to demonstrate the concept of niskama karma as presented in the Bhagavat Gita and what the message spreads us through it.

Key words: Bhagavat Gita, Actions, Niskama karma, Svadharma , Caste systems, kant and Bradley

1.0 Introduction:

Bhagavat Gita literally means the song of the Lord i.e the philosophical discourse of Lord Krishna to persuade the reluctant Arjuna to fight. It is a part of Bhisma parva of the Mahabharata. Here Krisha stands for the voice of God, delivering his message to the world through the situation of Arjuna as the situation of ours. In the battlefield of kurusetra, when Arjuna horrified or refused to fight against his relatives and friends, then whatever Lord Krishna gave suggestion to Arjuna , all these conversations are taken place in the Bhagavat Gita. It is book of conveying lesions of the Bhagavat Gita can be beautifully summarized as in the sentence of Annie Besant like this "It is a meant to lift the aspiration from the lower levels of enunciation, where objects are renounced to the loftier heights where desires are dead, and where the Yogi dwells in calm and ceaseless contemplation , where his body and mind are actively employed in discharging the duties that fall to his lot in life."

In Bhagavat Gita it has been given the three paths for attaining liberation or moksa. These are- Gyanayoga, karmayoga, Bhaktiyoga. The path of knowledge of God of

Gyanayoga,the path of disinterested performance of duties is Karmayoga and the path of devotion of God Bhaktiyoga. Among these three our discussion part is about Karmayoga. Karma is of two kinds – Sakama karma and Niskarma karma. Sakama karma refers that type of actions which are done for getting results or desires. While Niskama karma means that type of action which are done without having expectation or result. The Gita primarily gives stress on Niskama karma.

This concept of Niskama karma of the Bhagavat Gita partially resembles Kant's concept of moral actions. As we known Immanuel Kant was a critical thinker in western philosophy , he held that our conscience or reason guides the way to do moral actions. In perfoming moral action there is no hypothetical condition i.e categorical imperative. The rightness or wrongness of a moral action is not determined by its result ; rather is determined by fulfilling the action. For Kant, we are obliged to do moral action. He affirms that moral action are action that are performed for the sake of duty i.e duty for duty sake.

1.1 Objective:

The reason why I am discussing this topic beacuse in modern times although people are matterially enriched with new new invention by science and technology, but at the same time our are losing our moral character. That is why day by day illegal incidents are occurring around the world as we see everyday. Through out the study of this article it is tried to bring a message that we should never give up our morality, otherwise there will be no differences between animals and us. In this context, the Bhagavat Gita gives a lots of lesions of morality to us .

1.2 Methodology:

The study of this article is purely theoretical basis. Data is collected from different kinds of secondary sources. For conducting this study, it is adopted mainly explanatory and analytic method of the study.

2.0 The Concept of Niskama Karma :

As mentioned above, the Bhagavat Gita recommends three paths (karmayoga,Gyanayoga, Bhaktiyoga.) for attaining liberation or moksa , but the latter two are irrelevant without the former one. Karmayoga is combination of two words karma + yoga. Karma means doing activity or to do smt either mentally or physically . And yoga means union , the union with God.So, doing right action one get untion with God.

According to the Bhagavat Gita our life is full of actions. In the fifth stanza of the Gita it is mentioned as –

Nahi kaschit khyanamapi Jatu Tisthatyakarmakit
Kajyate Hyavashah karma Harvah Prakritijaugunah

It means our whole life depends upon action. No one can remain inactive for a single moment. Inaction is death.We are obliged to do action because of the predominance of the three gunas of prakriti (Sattva, Rajas, Tamasa).

Karma is of two kinds –sakama karma and niskama karma. Sakama karma indicates that type of karma which is done with the expectation of result or fruits. 'While niskama karma means in which there is no any expectation or result. Our discussion part is to demonstrate about this niskama karma.

Niskama karma is a prominent theme of Bhagavat Gita. It is also considered as the essence or central message of Bhagavat Gita. First let's try to understand its meaning. Niskama is a sandhi of nih+kam. Nih means without and kam means karma i.e any kind of desire. So, etymologically niskama karma means doing actions without any motive or desire.

In the Gita, it is mentioned as-

karmanyowadhikarastey maa phaleso kadaasana
Maa karmaphaletu bhorma te sangohastukamani

i.e we have only right to do actions, not on their fruits.

The Bhagavat Gita emphasizes the performance of duties related to one's caste in life without any desire for fruits. In vedic period human society was divided into four casts on the basis of their qualities and actions(Varnasrama Dharma). They are Brahman, Khyatriya, Vaisya and Sudras. Sattva predominates in the Brahmanas, Rajas predominates in the khyatriyas, to which sattva is subordinate. Rajas predominates in the Vaisyas to which tamas is subordinate. Tamasa predominates in the sudras to which Rajas is subordinate. Their duties are appropriate to their psychical nature. They are their Svadharma.

Regarding the specific duties or Svadharma of the four castes of human society the Bhagavat Gita says that the Brahmana should cultivate the virtues of sense – control, control of mind, tranquillity, purity, forgivingness, straight forwardness, wisdom, knowledge and faith. The Khyatriyas should cultivate the virtues of heroism, spiritedness, firmness, dexterity, not flying away form battle, generosity, sovereignty. They ought to fight against battle. The Vasyas should tend cattle and carry on agriculture, trade and commerce. The Sudras should serve the higher castes. An individual attains perfection by perfoming his own specific duties. Sri Krishna says that one's specific duties ill-done are better than another's specific duties well-done.

According to the Bhagavat Gita, specific duties ought to be done or performed without attachment and aversion and any desire for enjoying their fruits. We have a right to do actions, but not on their result. We are under moral obligation to do our specific duties. But their fruits depend upon the will of God. We should renounce the fruit of our action to God. We should dedicate all our action to God. We ought to perform our duties with equanimity without any consideration of success or failure. The Gita strongly emphasizes the renunciation of fruits of actions. Desire for fruits leads to bondage. The renunciation of desire for fruits leads to eternal peace. One, who renounces fruits of action and performs one's appointed duties is a true yogin or in another term as Sthitapragya. In which way a lotus although in clay and is not touched by clay ,in the same way, to a sthitapragya no sorrow or joy can not effect. He is free from all limitations of the worldly life.

3.0 Findings:

- The Bhagavat Gita recommends us to do niskama karma which is done without desire or result. The result of all action is determined by the will of God. We have only right to do our own duty, not on their result. The performance of this type of karma leads to the union with God.
- The niskama karma of the Gita somehow partly resemblances Kant's concept of moral action. Like The Gita, kant also says that the rightness or wrongness of an action is not determined by its consequences, rather is determined by whether the action is fulfilled or not. We should do our action just for the sake of duty, not for result (Duty for duty sake).

  But it should be minded that although it seems similarities between kant's ethics and the Gita but they are differ in some respects:

  (i) Kant does not accord any place to feelings in moral life,while Gita preaches the transformation not repression of feeling
  (ii) According to kant, the motivating cause of public service is faith in moral law, while according to Gita public service is a means to God realization.
  (iii) Kant is a formalist, while the Gita is a teleologist.
  (iv) Kant's ethics is ascetic, while the Gita ethics does not advocate ascetic. It is the ethics of God realization through selfless service of humanity.
- The Bhagavat Gita anticipates Bradley's conception of ' My Station and its Duties'. Every individual is born with a particular aptitudes. His station in society is determined by his particular aptitude. By performing his own specific duties appropriate to his station in society, he can contribute to the good the society, and

realize his infinite self. This doctrine of Bradley is anticipated by Gita's concept of svadharma. Only the Gita enjoins the performance of specific duties for the good of humanity and the realization of God, while Bradley enjoins the performance of duties appropriate to one's station in society for the sake of self- realization.

4.0 Conclusion:

Based on the discussion it may come to the conclusion that although the practice of the niskama karma is impossible for ordinary people,still its ethical significance can not be totally denied. Modern age is an age of science. Hence, some person doubt the utility of Gita in the present times. But as a matter of fact perhaps it is in the present age alone that Gita is the most urgently needed. It can be said without exaggeration that most of the acute problems of man at present can be solved by following the teachings of Gita. The Gita is based upon the fundamental principles of human nature and hence it will always be a source of inspiration to human beings. In the age many philosophers, politicians and scientists have been inspired by Gita. According to William Von Humboldt, Gita is " the most beautiful perhaps the only philosophical song existing in any known tongue." Mahatma Gandhi says that when he got depressed he used to read the Gita that gave peace. Annie Besant and Sri Aurobindo have also interpreted Gita in the context of the modern age.

Bibliography :

1. SHARMA DR. R.N ---- INTRODUCTION TO ETHICS
   Surjeet Publication
2. SINHA JADUNATH ----- A MANUAL OF ETHICS
   Published by New Central Book Agency (P)
   8/1 Chintamoni Das Lane, Kalkata 700009
3. RADHAKARISHNAN . DR. S --- INDIAN PHILOSOPHY (VOL-1)
4. SHARMA,CHANDRADHAR ---A CRITICAL SURVEY OF INDIAN PHILOSOPHY

Email : appubora38@gmail.com Mobile number: 8720969603

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 172-175
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चार्वाक दर्शन

डॉ. रंजीता कटकवार, अतिथि प्राध्यापक (हिंदी विभाग),
शा.एम.एम.आर.पी.जी. महाविद्यालय चाम्पा छत्तीसगढ़

शोध सारांश

चार्वाक दर्शन जो सुखवाद के पक्ष में रहकर हमेशा भोग-विलास और मस्त होकर दुनिया में जीवन जीने का उपदेश देता है मानवीय जीवन क्षण-भंगुर माना जाता है जिमसे मरने के बाद इंसान का अस्तित्व मीट जाता है| 'जीते जी' जीवन के सारे सुख बटोर लो, जीवन के रंगीन पलों में खोकर जिंदगी जीना इनका प्रमुख उद्देश्य था 'चार्वाक दर्शन' भारत की प्राचीन भौतिकवादी नास्तिक दर्शन के रूप में प्रसिध्द है **'यदा जीवते सुखं जीवते, ऋणं कृत्वा, घृतं पिबते'** (जब तक जिओ सुख से जिओ,उधार लो और घी पियो)

बीज-शब्द - इहलोक =यह वाले लोक, घृतं=घी आदि|

प्रस्तावना

न ईश्वर है, न आत्मा है, न स्वर्ग है, न नरक है, न पवित्र है, और न ही मोक्ष है| चार्वाक दर्शन का मानना है कि जीवन में जो कुछ है केवल इंसान के जीवित रहने तक ही, मरने के बाद कुछ नहीं है इसलिए जब तक इंसान जीवित है तब तक सुख से जीवन व्यतित करने की सलाह देता है| तथा 'चार्वाक दर्शन' सुख की कामना करना व्यक्ति का स्वाभाविक धर्म मानता है| जात-पात, धर्म-मजहब की दीवार गिराकर मेल कराती जहां हरिवंशराय बच्चन की **'मधुशाला'** वैसे ही चार्वाक, पाप- पुण्य, धर्म-अधर्म को नहीं मानता है जो कुछ भी है केवल इस संसार में भोग-विलासिता को परम सुख मानता है|

लोकयात दर्शन - चार्वाक दर्शन का दूसरा नाम लोकायत दर्शन है| लोकयात भारत में अकेला दर्शन है जो 2 वजह से है एक तो **इहलोक** जो ईश्वर, लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक कुछ नहीं मानते है| क्योकि यह भारतीय परम्परा का अकेला दर्शन है| कुछ लोग इसलिये मानते है क्योकि इसका लोक जीवन में बहुत प्रभाव पड़ा है|

चार्वाक दर्शन के संस्थापक

चार्वाक अकेला व्यक्ति नहीं है यह एक समूह है| चार्वाक दर्शन के संस्थापक के बारे में सहमति है कि देवगुरू **बृहस्पति** ने इसकी स्थापना की है इसलिए इसका एक नाम **बार्हस्पत्य दर्शन** भी है| हमारी भारतीय परम्परा में बृहस्पति एक नहीं बल्कि सैकड़ों है पर कुछ लोग मानते है कि ये वही बृहस्पति हो सकते है जिनका नाम **वात्स्यान** था जिन्होंने कामसूत्र ग्रंथ की रचना की थी देवताओं के गुरू बृहस्पति ने इस दर्शन की स्थपना इसलिए की थी ताकि दानव और असुर इन्हें पढ़े और सुखवाद एवं भोग-विलासिता में फसकर हार जाये| कुछ लोगों का कहना था बृहस्पति के शिष्य **चार्वाक** थे बाकि लोग इनका अनुसरण करने वाले लोग चार्वाक बन गए| चार्वाक दर्शन के संस्थापक के रूप में एक और नाम सामने आया अजित केश कंबली का| **अजित केश कंबली और वात्स्यान इस** परम्परा के दो प्रमुख व्यक्ति है|

प्रत्यक्ष ज्ञान-

चार्वाक दर्शन अनुमान को नहीं मानते वे केवल प्रत्यक्ष ज्ञान को ही प्रमाण मानते है इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ही प्रत्यक्ष होता है अनुमान से प्राप्त होने वाला ज्ञान व्याप्तिज्ञान होता है| चार्वाक का मत है कि दुनिया में चार ही तत्व है पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु उनके अनुसार आकाश नाम का कोई तत्व नहीं है केवल चार तत्वों के मेल से शरीर बना है तथा किसी विशिष्ट संयोजन से शरीर में चैतन्य उतपन्न हो जाता है जिसे लोगों द्वारा आत्मा की संज्ञा दी जाती है और जब देह नष्ट हो जाता है तब चैतन्य भी विलुप्त हो जाते है इसलिए चार्वाक का मानना है चेतन में जो शरीर नजर आते है वही आत्मा का रूप है बाकि काया के अतिरिक्त आत्मा का कोई प्रमाण नहीं है| चार्वाक कहते है कि **सर्वदर्शनसंग्रह, सर्वदर्शनशिरोमणि** और **बृहस्पतिसूत्र** में देखना चाहिए|

"तत्र प्रत्यक्षैकप्रमाणवादिनो लोकायतशास्त्रप्रवर्तकस्य चार्वाकस्य 'मनुस्यो$म', 'स्थूलो$हम', 'कृशो$हम' इति प्रत्यक्षसिद्धश्चैतन्यगुणाश्रयो देह एवं प्रमाता| उच्चावचदेहरूपेण संभवादेहसंहर्ति पूंनर्विहती च प्रतिपाद्यमानानि पृथ्वी-वारि- वहिन्वायुलक्षणानि चत्वारि तत्त्वानि प्रमेयम|"

अर्थात-

लोकायत शास्त्र भी प्रत्यक्षमूलक होने के कारण उन्हीं में अंतर्भूत है 'सारे अन्न भूख के निवर्तक है क्योकि भुक्त अन्न के समान सारे ही अन्न है|' यह अनुमान भी प्रत्यक्ष के अन्दर इसलिए अंतरभूर्त है कि प्रत्यक्षमूलता समान है| अभ्युदय- निःश्रेसफलक एवं धर्म तथा ब्रम्हा के प्रतिपादक वेद इसीलिए प्रमाण नहीं अप्रमाण हैं कि अतीन्द्रिय अर्थ के प्रतिपादक हैं| जैसा कि कहा गया है-

अग्निहोत्र, तीनो वेद, त्रिदण्ड और भस्मलेपन|
ये बुद्धि पौरूषहिन व्यक्तियों के लिए जीविका हैं||

भाण, धूर्त और राक्षस ये तीनों वेद के कर्ता है।[1]

चार्वाक के सिद्धांत -

आस्तिक दर्शनों में शंकर दर्शन शिरोमणि के रूप में प्रख्यात् है उसी प्रकार नास्तिक दर्शनों में सबसे सर्वोत्तम चार्वाक दर्शन माना जाता है| इस जगत में ईश्वर को नहीं मानने वाले चार्वाक केवल सुखवाद को मानते है तथा जब तक मनुष्य जीवित रहता है तब तक सारे सुखों को भोगता है मरने के बाद मनुष्य का अस्तित्व ख़त्म हो जाता है और आत्मा केवल जीवित मनुष्य के देह में विद्यमान होता है और हर इंसान की मृत्यु निश्चित ही है इससे कोई बच नहीं सकता है तथा भष्म किए गए शारीर का दोबारा निर्माण कैसे हो सकता है?

"यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्य्योरगोचरः|
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः"[2]

चार्वाक दर्शन भारतीय चिंतन परंपरा में एक विलक्षण और विरोधाभासी स्थान रखता है। यह वह दर्शन है जिसने आस्था, आत्मा, पुनर्जन्म, और मोक्ष जैसे पारंपरिक विश्वासों को चुनौती दी तथा प्रत्यक्ष अनुभव को ही एकमात्र प्रमाण मानकर भौतिक यथार्थवाद की स्थापना की। चार्वाक का यह दृष्टिकोण जहां एक ओर तर्कवाद, वैज्ञानिक सोच, और जीवन के आनंदवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिकता एवं नैतिकता की परंपरागत अवधारणाओं को नकारता है।

यद्यपि चार्वाक दर्शन आज के समय में पूर्ण रूप से स्वीकार्य नहीं है, किन्तु इसका ऐतिहासिक महत्व, आलोचनात्मक दृष्टिकोण तथा स्वतंत्र विचार की चेतना आधुनिक युग में भी प्रासंगिक है। यह दर्शन हमें यह समझने के लिए प्रेरित करता है कि विचारों की विविधता ही दर्शन की आत्मा है, और प्रत्येक विचारधारा–विचार क्षेत्र में योगदान देती है।

इस प्रकार, चार्वाक दर्शन न केवल भारतीय नास्तिक परंपरा का एक सशक्त स्तंभ है, बल्कि वह एक ऐसा चिंतन भी है जो तर्क, अनुभव और भौतिक यथार्थ के आधार पर मनुष्य को जीवन के प्रति एक नई दृष्टि देता है। आधुनिक समाज में इसकी तार्किकता, भौतिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा भोगवादी चेतना आज भी विमर्श का विषय बनी हुई है|

इस दर्शन की सबसे प्रमुख विशेषता इसका **भौतिकवादी दृष्टिकोण (materialism)** है। यह शरीर को ही आत्मा मानता है और मृत्यु के उपरांत किसी जीवन या आत्मा की यात्रा को अस्वीकार करता है। इसके अनुसार, जीवन का लक्ष्य केवल सुख और आनंद प्राप्त करना है। चार्वाक दर्शन मानव जीवन को इस लोक में ही पूर्ण मानता है और किसी अलौकिक या परलोकिक अवधारणा की अपेक्षा नहीं करता।

चार्वाक दर्शन की आलोचना यह कहकर की जाती रही है कि यह नैतिकता, संयम और सामाजिक जिम्मेदारी की उपेक्षा करता है, लेकिन यह भी समझना आवश्यक है कि यह दर्शन उस समय की धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध एक आवश्यक वैचारिक प्रतिरोध के रूप में सामने आया। इसने मनुष्य को स्वतंत्र चिंतन की प्रेरणा दी, तर्क का महत्व बताया और यथार्थ को देखने की नई दृष्टि प्रदान की।

आधुनिक युग में, जब विज्ञान और तर्क पर आधारित सोच को महत्व मिल रहा है, चार्वाक का दर्शन पुनः प्रासंगिक हो उठा है। वैज्ञानिक पद्धति, संदेहवाद, अनुभव पर आधारित ज्ञान और भौतिक सुखों की खोज आज के मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। हालांकि, चार्वाक की अत्यधिक भोगवादी सोच और नैतिक मूल्यों की उपेक्षा को आधुनिक मानव स्वीकार नहीं कर सकता, लेकिन उसका तर्क आधारित दृष्टिकोण आज भी शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों और दार्शनिकों के बीच विचार का विषय है।

निष्कर्ष -: चार्वाक दर्शन मानव जीवन के वास्तविकता को दर्शता है जो भी है इसी जीवन में जब तक सांसें है तब तक अस्तित्व है मरने के बाद कुछ नहीं है| चार्वाक दर्शन भारतीय दर्शन की नास्तिक परंपरा का एक प्रमुख स्तंभ है, जिसने परंपरागत धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताओं को सिरे से खारिज करते हुए एक मौलिक और तर्कप्रधान दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यह दर्शन प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानता है और वेद, आत्मा, ईश्वर, पुनर्जन्म, कर्मफल, स्वर्ग-नरक जैसी अवधारणाओं को मिथ्या तथा अप्रमाणिक मानता है। चार्वाक ने कहा कि जो कुछ प्रत्यक्ष देखा, सुना और अनुभव किया जा सकता है, वही सत्य है; बाकी सब केवल भ्रम और अंधविश्वास हैं।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. आनन्द झा आचार्य- चार्वाक दर्शन,उतरप्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ (पृष्ठ क्रमांक- 404)
2. एस.एस. गौतम - चार्वाक दर्शन,सिद्धार्थ बुक्स दिल्ली (पृष्ठ क्रमांक -09)
3. राधाकृष्णन, डॉ. एस. (2016). भारतीय दर्शन. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन|
4. शर्मा, डॉ. चन्द्रधर. (2017). भारतीय दर्शन का इतिहास. वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन|
5. गुप्त, डॉ. बलवंत. (2015). भारतीय दर्शन. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन|
6. शास्त्री, डॉ. धर्मेन्द्रनाथ. (2014). दार्शनिक परंपराएं. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन|
7. त्रिपाठी, डॉ. गोविंद. (2013). भारतीय तर्कशास्त्र का इतिहास. वाराणसी: चौखम्भा विद्याभवन|

ई-मेल aktranjeeta@gmail.com फोन-8770809641

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 176-180
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य मैं भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान

डॉक्टर वैशाली सिंह, हिन्दी संकाय
B 29 A top fioor Rameshwar nagar main road MCD flates
Ajadpur New Delhi 110033

परिचय

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य के महान लेखक, कवि, नाटककार, और पत्रकार थे, जिनका योगदान हिंदी साहित्य के विकास में अनमोल है। उनका जीवन 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्थित था, और उनके साहित्यिक योगदान ने हिंदी साहित्य की नींव को मजबूत किया। भारतेंदु ने साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एक नया दिशा दी, जो भारतीय समाज और संस्कृति में जागरूकता और परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करता है। उनके लेखन ने न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्व अर्जित किया, बल्कि उन्होंने समाज सुधार, भाषा की शुद्धता, और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) हिंदी साहित्य के एक महान रचनाकार और साहित्यिक सुधारक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी और उसे समृद्ध किया। वे न केवल कवि थे, बल्कि नाटककार, निबंधकार, पत्रकार, और समाज सुधारक भी थे। उनके योगदान से हिंदी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश हुआ। भारतेंदु के साहित्यिक योगदान ने हिंदी को एक समृद्ध और सशक्त भाषा बना दिया, जो भारतीय समाज के हर पहलू को प्रभावित करने वाली थी। इस शोध पत्र में हम भारतेंदु हरिश्चंद्र के योगदान पर विस्तार से चर्चा करेंगे और यह समझेंगे कि उनका साहित्य किस प्रकार हिंदी साहित्य को नई दिशा देने में सक्षम रहा।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जीवन परिचय

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितंबर 1850 को काशी (अब वाराणसी) में हुआ था। उनका वास्तविक नाम 'हरिश्चंद्र' था, और 'भारतेंदु' उपनाम उन्होंने बाद में अपनाया। भारतेंदु का जीवन साहित्य और समाज सुधार के प्रति समर्पित था। वे हिंदी साहित्य के पहले लेखक थे जिन्होंने साहित्य को राष्ट्रीयता और सामाजिक जागरूकता से जोड़ा। वे अपने समय के सबसे प्रभावशाली साहित्यकार थे, जिन्होंने न केवल हिंदी साहित्य को नए रूप में प्रस्तुत किया, बल्कि पत्रकारिता, नाटक, और कविता के क्षेत्र में भी अपनी छाप छोड़ी।

भारतेंदु ने अपनी शिक्षा बनारस में प्राप्त की और संस्कृत, हिंदी, और अंग्रेजी साहित्य में गहरी रुचि दिखाई। उनके लेखन में एक तरह की सामाजिक चेतना का विकास हुआ, जिसने उन्हें सामाजिक सुधारक और राष्ट्रीयतावादी के रूप में स्थापित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्यिक योगदान

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी। उन्होंने न केवल हिंदी भाषा को समृद्ध किया, बल्कि हिंदी साहित्य में एक आधुनिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया। उनका साहित्य पारंपरिक संस्कृत साहित्य से अलग था, और उन्होंने हिंदी साहित्य को समाज, राजनीति और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से जोड़ा। उन्होंने भाषा को सरल और सहज बनाते हुए हिंदी के साहित्यिक संदर्भों में आधुनिकता को समाहित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के योगदान को प्रमुख रूप से तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है - कविता, नाटक, और पत्रकारिता। इसके अलावा, उन्होंने समाज सुधार के लिए भी अपने लेखन के माध्यम से आवाज उठाई। उनके योगदान के मुख्य पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की जाती है।

1. कविता लेखन में योगदान

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने काव्य लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके काव्य संग्रह जैसे 'विनय पत्रिका', 'भारत दुर्दशा', और 'काव्य महोत्सव' में भारतीय समाज और राष्ट्र की स्थिति पर गहरी सोच दिखाई गई है। उनकी कविताओं में भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय जागरूकता, और समाज की कुरीतियों के खिलाफ प्रहार किया गया।

उनकी कविता में यथार्थवाद की स्पष्टता थी। भारतेंदु ने न केवल शृंगारी काव्य की परंपरा को बढ़ावा दिया, बल्कि उसमें सामाजिक और राजनीतिक चेतना को भी समाहित किया। 'भारत दुर्दशा' कविता के माध्यम से उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विरोध और भारतीय समाज की दयनीय स्थिति को उजागर किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी कविता को एक नया रूप दिया। उन्होंने संस्कृत से प्रभावित पारंपरिक हिंदी कविता की जगह लोक जीवन, समाज और प्रकृति से जुड़ी सरल और सशक्त कविता का निर्माण किया। उनके काव्य संग्रहों में "निज भाषा उन्नति अहै" (जिसमें उन्होंने हिंदी को मातृभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया) और "युवराज" प्रमुख हैं।

भारतेंदु ने हिंदी कविता में व्याकरण और लय के नए प्रयोग किए। उनकी कविता में शास्त्रीयता की जगह संवेदनशीलता और सामाजिक जागरूकता ने एक नई दिशा ली। "निज भाषा उन्नति अहै" कविता में उन्होंने हिंदी को एक समृद्ध और सक्षम भाषा के रूप में प्रस्तुत किया। यह कविता आज भी भारतीय भाषाओं के उत्थान के प्रति उनके विचारों को दर्शाती है।

2. नाटक लेखन में योगदान

भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाटक लेखन हिंदी साहित्य में एक नई क्रांति लेकर आया। उन्होंने हिंदी में नाटक लेखन की शुरुआत की और नाट्य साहित्य को एक नया आयाम दिया। उनके नाटक भारतीय समाज की समस्याओं को उजागर करते थे और सामाजिक सुधार की आवश्यकता

को दर्शाते थे। उनका प्रसिद्ध नाटक 'अंधेर नगरी' अपने व्यंग्यपूर्ण दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध है, जिसमें उन्होंने तत्कालीन समाज की स्थिति को कटाक्ष करते हुए पेश किया।

'भारत दुर्दशा' नाटक में उन्होंने भारत की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति पर गहरी चिंता व्यक्त की। यह नाटक भारतीय जनता को जागरूक करने का एक प्रयास था। इसके अलावा, 'नृसिंह अवतार' जैसे धार्मिक और सांस्कृतिक नाटकों ने भी लोगों को गहरे स्तर पर प्रभावित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाटक साहित्य में भी महत्वपूर्ण योगदान था। उनका मानना था कि नाटक के माध्यम से समाज में जागरूकता फैलाना और सामाजिक सुधार लाना संभव है। उन्होंने 'नाटक' के माध्यम से भारतीय समाज की समस्याओं को उजागर किया। उनके प्रमुख नाटक "भस्मासुर" और "हरिश्चंद्र की कहानी" ने न केवल मनोरंजन किया, बल्कि समाज के मुद्दों को भी उजागर किया।

भारतेंदु का नाटक न केवल शिक्षा का माध्यम था, बल्कि वे एक सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण थे। उनकी रचनाओं में नैतिकता, सत्य, और न्याय के पक्ष को प्रमुखता दी गई थी। इसके अतिरिक्त, उन्होंने हिंदी नाट्य साहित्य को शास्त्रीय नाट्य विधाओं से मुक्त कर इसे भारतीय समाज के अनुकूल बनाने का प्रयास किया।

3. पत्रकारिता में योगदान

भारतेंदु हरिश्चंद्र का पत्रकारिता के क्षेत्र में भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता की नींव रखी और 'उदंत मार्तण्ड' तथा 'हिंदोस्तान' जैसी पत्रिकाओं का संपादन किया। 'उदंत मार्तण्ड' को हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में एक मील का पत्थर माना जाता है, क्योंकि यह हिंदी में प्रकाशित होने वाली पहली दैनिक समाचार पत्रिका थी।

भारतेंदु ने अपने लेखन के माध्यम से समाज को जागरूक किया और उसे एक दिशा दिखाई। उनकी पत्रकारिता ने समाज के लिए एक प्रेरणा का काम किया और हिंदी पत्रकारिता को मजबूत किया।

भारतेंदु ने हिंदी पत्रकारिता को नई दिशा दी। उनकी पत्रिका "हिंदू पाठशाला" हिंदी में शिक्षा और जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से प्रकाशित हुई। इसके माध्यम से उन्होंने न केवल साहित्यिक विचारों को प्रसारित किया, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर भी लेख लिखे।

इसके अतिरिक्त, उनकी पत्रिका "कविवचन सुधा" ने साहित्यिक आलोचना और कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतेंदु ने पत्रकारिता के माध्यम से भारतीय समाज में परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया और समाज को जागरूक करने के लिए अपनी लेखनी का उपयोग किया।

4. सामाजिक सुधार में योगदान

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज की कुरीतियों और समस्याओं को उजागर किया। उन्होंने जातिवाद, अंधविश्वास, बाल विवाह, और शिक्षा के महत्व

को अपने लेखन में प्रमुखता से उठाया। उनके लेखों में समाज सुधार के संकेत मिलते हैं और उन्होंने समाज में व्याप्त असमानताओं के खिलाफ आवाज उठाई। उनका जीवन और लेखन भारतीय समाज के सुधार के लिए समर्पित था। वे भारतीय समाज की छुआछूत, अंधविश्वास, और पाखंड के खिलाफ थे। उनका मानना था कि समाज में बदलाव लाने के लिए शिक्षा और जागरूकता आवश्यक है।

उन्होंने महिलाओं के अधिकार, शिक्षा, और समानता के लिए भी लिखा। उनके लेखन में भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता के खिलाफ स्पष्ट आक्रोश था। उनके साहित्य ने समाज को जागरूक किया और उसे सुधार की दिशा में सोचने के लिए प्रेरित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी पत्रिकाओं "हिंदू पाठशाला" और "कविवचन सुधा" के माध्यम से समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और कुरीतियों पर चोट की। उनके लेखन ने समाज के जागरूक वर्ग को उत्प्रेरित किया और सामाजिक सुधार की दिशा में एक बड़ा योगदान किया।

5. भाषा और साहित्य की शुद्धता

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी भाषा की शुद्धता और सुंदरता पर भी ध्यान दिया। उनका मानना था कि हिंदी भाषा को उच्च स्तर पर लाना आवश्यक था, ताकि वह अन्य भाषाओं के बराबर हो सके। उन्होंने हिंदी साहित्य की शुद्धता के लिए कई प्रयास किए और इसके विकास के लिए प्रेरणा दी। उनकी भाषा सरल, स्पष्ट, और आम जनता से जुड़ी हुई थी, जिससे उनकी रचनाएँ और अधिक प्रभावशाली हो गईं।

भारतेंदु का साहित्यिक दृष्टिकोण

भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्यिक दृष्टिकोण पारंपरिक और आधुनिक के बीच संतुलन बनाए रखने का था। उनका मानना था कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं होना चाहिए, बल्कि यह समाज के हर पहलू को उजागर करने और सुधार की दिशा में कार्य करने का माध्यम होना चाहिए।

भारतेंदु के लेखन में एक ओर विशेषता यह थी कि उन्होंने हिंदी को एक सशक्त और समृद्ध भाषा के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से हिंदी को एक साहित्यिक भाषा बनाने के लिए प्रयास किए। इसके साथ ही, उन्होंने हिंदी भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए भी कई कदम उठाए।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रभाव

भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रभाव हिंदी साहित्य, पत्रकारिता, और भारतीय समाज में आज भी महसूस किया जाता है। उन्होंने न केवल हिंदी साहित्य के विकास में योगदान दिया, बल्कि उन्होंने समाज में व्याप्त असमानताओं और कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। उनका लेखन समाज को जागरूक करने का एक साधन था, और उनके विचारों ने भारतीय समाज को एक नई दिशा दी।

उनकी रचनाएँ आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत हैं, और उनके साहित्यिक योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्य एक ऐसे काल में उत्पन्न हुआ,

जब भारतीय समाज में अंधविश्वास, जातिवाद, और सामाजिक असमानताएँ व्याप्त थीं, और उन्होंने अपने लेखन से इन समस्याओं पर प्रकाश डाला।

निष्कर्ष

भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान हिंदी साहित्य के इतिहास में अनमोल रहेगा। उन्होंने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी और इसे सामाजिक, सांस्कृतिक, और राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा। उनका लेखन न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि वह समाज सुधारक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण था। उनके साहित्य ने समाज में जागरूकता का प्रसार किया और उन्हें भारतीय साहित्य का महान स्तंभ बना दिया। उनके काव्य, नाटक, पत्रकारिता, और समाज सुधारक दृष्टिकोण ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी। उन्होंने न केवल साहित्य को, बल्कि समाज को भी जागरूक किया और उसे नई सोच देने का कार्य किया। उनका साहित्य आज भी हमें समाज के प्रति जिम्मेदारी और अपने साहित्यिक कर्तव्यों को निभाने की प्रेरणा देता है। उनका योगदान हिंदी साहित्य के इतिहास में सदैव अमर रहेगा।

संदर्भ सूची

1. तिवारी, रामशंकर. “भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्यिक योगदान.” हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, 2005.
2. शुक्ल, सूर्यकांत. “भारतेंदु हरिश्चंद्र: जीवन और काव्य.” साहित्य जगत, 2010.
3. कुलश्रेष्ठ, राधेश्याम. “भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों में सामाजिक चेतना.” नाटक और समाज, 2013.
4. भारतेंदु और हिंदी नाटक - लक्ष्मी देवी शाह
5. वर्मा, शंकर. “हिंदी साहित्य में भारतेंदु का योगदान.” साहित्य समीक्षा, 2008.
6. भारतेंदु हरिश्चंद्र. “भारत दुर्दशा और अन्य रचनाएँ.” हिंदी ग्रंथ रत्नालय, 2000.
7. भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्यिक दृष्टिकोण. हिंदी साहित्य की धारा, पुस्तकालय प्रकाशन, 2012.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 181-185
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अमृतलाल नागर के उपन्यास 'नाच्यो बहुत गोपाल' में दलित चित्रण

डॉ0 निशा चौहान, सहायक आचार्या- हिंदी विभाग,
राजकीय कन्या महाविध्यालय शिमला, हिमाचल प्रदेश 171001

सारांश:-

भारतीय साहित्य में अमृतलाल नागर का विशिष्ट स्थान है, जिन्होंने अपने गहन अध्ययन, संवेदनशील दृष्टि और यथार्थवादी लेखन के माध्यम से सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। उनके प्रसिद्ध उपन्यास "नाचे बहुत गोपाल" में मध्यकालीन भारतीय समाज, विशेषतः भक्तिकालीन वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है। यह वह युग था जब समाज जातिगत विभेद, धार्मिक पाखंड और सामाजिक विषमता से ग्रस्त था। तत्कालीन निम्नवर्ग, विशेषकर दलित समुदाय, घोर शोषण और अपमान का शिकार था।

यद्यपि अमृतलाल नागर स्वयं उस युग के प्रत्यक्ष साक्षी नहीं थे, फिर भी ऐतिहासिक तथ्यों, लोककथाओं, जनश्रुतियों तथा भक्तिकालीन संत साहित्य के गहन अध्ययन के आधार पर उन्होंने उस समय के सामाजिक यथार्थ को अत्यंत प्रामाणिकता एवं संवेदनशीलता के साथ अंकित किया है। उपन्यास में दलित वर्ग की पीड़ा, उनकी सामाजिक स्थिति, भक्ति आंदोलन के माध्यम से उनकी आत्मगौरव की चेतना तथा संघर्षशीलता का मार्मिक चित्रण मिलता है।अमृतलाल नागर हिंदी साहित्य में यथार्थवादी रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी रचना नाचो बहुत गोपाल में दलित जीवन के संघर्ष, पीड़ा, सामाजिक विसंगतियों तथा चेतना के उभार को अत्यंत प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है। इस शोध पत्र में उपन्यास में उपस्थित दलित चेतना के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द – अमृतलाल नागर, नाचो बहुत गोपाल, दलित चेतना, सामाजिक विषमता, यथार्थ चित्रण

भूमिका

दलित विमर्श हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण आंदोलन रहा है, जिसने समाज के सबसे वंचित वर्ग की आवाज़ को प्रमुखता से प्रस्तुत किया। अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यास 'नाच्यो बहुत गोपाल'[1] में दलित जीवन के यथार्थ को बिना किसी आडंबर के उकेरा है। वे अपने समय के उन रचनाकारों में से हैं जिन्होंने सामाजिक यथार्थ के तल पर दलितों की पीड़ा को एक मानवीय दृष्टि से चित्रित किया। इस शोध पत्र का उद्देश्य उपन्यास में दलित चित्रण के विभिन्न पक्षों का गहन विश्लेषण करना है।

दलित जीवन की वास्तविकता का चित्रण

'नाच्यो बहुत गोपाल' उपन्यास की कथा पृष्ठभूमि उत्तर भारत के एक छोटे नगर और आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों पर आधारित है। यहाँ दलित समुदाय की सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। अमृतलाल नागर दलितों की भूख, बेबसी, और सामाजिक अपमान को बिना किसी कृत्रिमता के उद्घाटित करते हैं।

आर्थिक शोषण

उपन्यास में दलित वर्ग मुख्यतः आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। उनके पास ज़मीन नहीं है और वे उच्च वर्ग के जमींदारों पर निर्भर हैं। रघुआ उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है जो दलित समुदाय के शोषित और हताश जीवन की प्रतीकात्मकता के रूप में प्रस्तुत होता है। लेखक एक दलित चरित्र की विवशता का उल्लेख करते हैं- "हम तो बस बाबूजी, पेट पालने को ही जीते हैं, नहीं तो हमारा जीना भी कोई जीना है?"[2] यह संवाद दलित जीवन की असहायता और पराधीनता को उजागर करता है। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी ने नाच्यो बहुत गोपाल के संदर्भ में लिखा है कि अमृतलाल नागर ने उपन्यास में भारतीय समाज की जातिवादी और वर्गीय विषमताओं को बहुत प्रभावी तरीके से चित्रित किया है। वे मानते हैं कि यह उपन्यास समाज के सबसे वंचित वर्गों के लिए आवाज़ प्रदान करता है "नागर का यह उपन्यास समाज के दलित वर्ग की अस्मिता और संघर्ष का मार्मिक चित्रण करता है। उन्होंने इस उपन्यास में यथार्थवाद की दिशा में महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया है, जिसमें दलितों की वास्तविक पीड़ा को उकेरा गया है।"[3]

2. सामाजिक बहिष्कार

नागर ने वर्णन किया है कि किस प्रकार दलितों को मंदिर प्रवेश, सार्वजनिक कुओं से पानी लेने तथा सामाजिक कार्यक्रमों में भागीदारी से वंचित किया जाता था। फुलवा, एक दलित स्त्री, समाज के बहिष्कार का शिकार होती है, और इसका उदाहरण उपन्यास में धार्मिक असमानता को प्रकट करता है। "हमें मंदिर के बाहर ही रुकना होता है, भगवान भी हमसे दूर हैं।"[4] यह धार्मिक असमानता दलित जीवन में व्याप्त सामाजिक अन्याय को दर्शाती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने

अपने विश्लेषण में नाचो बहुत गोपाल को दलित साहित्य का एक महत्वपूर्ण उदाहरण माना है। उन्होंने इस उपन्यास को समाज में व्याप्त धार्मिक और जातिगत असमानताओं के खिलाफ एक सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। "नागर के उपन्यास में दलित जीवन की सच्चाई को यथार्थ रूप से दर्शाया गया है। यह उपन्यास दलित साहित्य की अपनी पहचान को स्पष्ट करता है और समाज में छिपी हुई असमानताओं को सामने लाता है।"[5]

3.दलित चेतना और आत्मसम्मान

अमृतलाल नागर का दृष्टिकोण केवल दलितों की दुर्दशा का चित्रण करना नहीं है, बल्कि वे दलित चेतना के उभार को भी रेखांकित करते हैं।

3.1 स्वाभिमान का प्रस्फुटन

उपन्यास में दलित पात्र धीरे-धीरे अपनी स्थिति को पहचानने लगते हैं। बिजुआ दलित चेतना के उभार का प्रतीक है और उसका संघर्ष सामाजिक अन्याय के खिलाफ है। "अब हम हाथ जोड़कर नहीं रहेंगे, अब हमें भी जीने का हक़ चाहिए।"[6] यह संवाद दलित समाज में उभरती आत्मसम्मान की भावना का परिचायक है। सतीश चौहान के अनुसार, नाचो बहुत गोपाल उपन्यास में नागर ने दलित चेतना के जागरण का प्रभावी चित्रण किया है। उनका कहना है कि इस उपन्यास ने सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं में गहरे परिवर्तन की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित किया। "यह उपन्यास दलित समाज की चेतना और संघर्ष को उजागर करता है। इसके पात्र न केवल अपने उत्पीड़न के प्रति जागरूक होते हैं, बल्कि वे सामाजिक सुधार की दिशा में भी कदम बढ़ाते हैं।"[7]

3.2.विद्रोह का स्वर

कई प्रसंगों में दलित वर्ग द्वारा सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की झलक मिलती है। यह विद्रोही चेतना स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि में अधिक मुखर होती है।

4.प्रतीकात्मकता और भाषा

नागर ने अपनी कथा भाषा में लोक बोली और दलित समुदाय के बोलचाल को जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया है। पात्रों की भाषा में पगे हुए मुहावरे, लोकोक्तियाँ और गीतों का प्रयोग उपन्यास को एक विशिष्ट जीवन्तता प्रदान करताहै।

दलित स्त्री फुलवा द्वारा गाया गया गीत- "ना जाने कब हमरे अँगना भी फूलेगा सुख का फुलवा रे।"[8] जो दलित समाज की आकांक्षाओं और आशाओं को प्रस्तुत करता है, जहाँ उम्मीदें और संघर्ष जीवन के अभिन्न हिस्से के रूप में उभरते हैं।

रामविलास सिंह ने नाचो बहुत गोपाल को दलित साहित्य का एक अभूतपूर्व उदाहरण बताया है। उन्होंने इस उपन्यास में नागर के द्वारा प्रस्तुत यथार्थवाद की सराहना की और इसे समाज में व्याप्त जातिवाद और असमानता के खिलाफ एक कड़ा संदेश माना। "नागर का यह

उपन्यास दलितों के जीवन के यथार्थ का सटीक चित्रण है। उनके पात्र न केवल शारीरिक, बल्कि मानसिक रूप से भी उत्पीड़ित हैं, और इस उत्पीड़न के बावजूद वे अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करते हैं।"[9]

5.उपन्यास में प्रमुख दलित पात्र

1. रघुआ – जो अपनी मेहनत के बावजूद सम्मान से वंचित है। 2. फुलवा – जो सामाजिक बहिष्कार के बावजूद अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है। 3. बिजुआ – जो जातिवादी अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध का प्रतीक बनता है। इन पात्रों के माध्यम से नागर ने दलित जीवन के विविध रंगों – पीड़ा, संघर्ष और आशा – का प्रभावी संयोजन प्रस्तुत किया है।

6. नागर का दृष्टिकोण

मानवीय और सहानुभूतिपूर्ण है। वे दलितों को दया का पात्र नहीं बनाते, बल्कि उन्हें समाज में सम्मानपूर्वक स्थान दिलाने के पक्षधर हैं। उन्होंने अपने पात्रों को स्वतंत्र चेतना के साथ प्रस्तुत किया है। उनका यह दृष्टिकोण उन्हें अन्य समकालीन लेखकों से अलग करता है। जैसा कि वे स्वयं कहते हैं (भूमिका, पृष्ठ 5): "मुझे मानव मात्र के दुःख-दर्द को समझना और उसे अभिव्यक्त करना प्रिय है, भले ही वह किसी भी जाति या वर्ग का हो।"[10]

निष्कर्ष:-

अमृतलाल नागर का उपन्यास नाचो बहुत गोपाल हिंदी साहित्य में दलित चित्रण का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। उपन्यास में नागर ने दलित जीवन के यथार्थ को न केवल यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया, बल्कि दलित चेतना और आत्मसम्मान के जागरण को भी प्रमुखता से उकेरा है। उन्होंने समाज की जातिवादी और वर्गीय विषमताओं को सरल और प्रभावशाली भाषा में दर्शाया है। उनके पात्र केवल शारीरिक उत्पीड़न के शिकार नहीं हैं, बल्कि वे मानसिक और सामाजिक उत्पीड़न से भी जूझते हैं। उपन्यास में रघुआ, फुलवा, बिजुआ जैसे पात्र न केवल दलित वर्ग की पीड़ा को प्रकट करते हैं, बल्कि वे अपनी अस्मिता, सम्मान, और समानता के लिए संघर्ष करते हैं। यह उपन्यास दलित समाज की मानसिकता और उनके संघर्ष को समाज के सामने लाने का प्रयास करता है। नागर के उपन्यास में प्रतीकात्मकता, लोक जीवन की अभिव्यक्ति और सामाजिक चेतना का अद्भुत मेल है। वे दलित पात्रों को महज उपेक्षित और शोषित नहीं दिखाते, बल्कि उनकी मानसिक शक्ति, आत्मसम्मान, और स्वाभिमान को भी उजागर करते हैं। उपन्यास में आने वाले गीत, लोकोक्तियाँ, और संवाद दलित समाज की मानसिकता का गहरा चित्रण करते हैं। निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि नाचो बहुत गोपाल सिर्फ एक उपन्यास नहीं, बल्कि दलित चेतना का एक गहरा विश्लेषण है जो हमें समाज की असमानताओं और उत्पीड़न के बारे में सोचने के लिए मजबूर करता है।

संदर्भ सूची :-

1. नागर, अमृतलाल। नाच्यो बहुत गोपाल (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959।पृष्ठ संख्या: 82, 121, 177, 215
2. नागर, अमृतलाल। नाचो बहुत गोपाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 82।
3. त्रिपाठी, विश्वनाथ। हिंदी उपन्यास: यथार्थ और यथार्थवाद, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2003,पृष्ठ संख्या:75
4. नागर, अमृतलाल। नाचो बहुत गोपाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959, पृ.स.121
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश। दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2001,पृष्ठ संख्या: 92
6. नागर, अमृतलाल। नाचो बहुत गोपाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959, पृ.स.177
7. चौहान, सतीश। हिंदी में दलित चेतना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005,पृष्ठ संख्या: 120
8. नागर, अमृतलाल। नाचो बहुत गोपाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959, पृ.स.215
9. सिंह, रामविलास। दलित साहित्य विमर्श, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2010,पृष्ठ संख्या: 110
10. नागर, अमृतलाल। नाचो बहुत गोपाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959, भूमिका, पृ. 5.

nc008194@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 186-189
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी भाषा और हिंदी सिनेमा

प्रा. छाया गुलाबराव जाधव, हिंदी विभाग प्रमुख,
श्रीमती सूरज देवी रामचंद मोहता महिला महाविद्यालय, खामगांव।

जनसंचार का प्रमुख माध्यम 'सिनेमा' ने बोलचाल की हिंदी में अपना अमूल्य योगदान दिया है। जहां हिंदी भाषा क्षेत्र के प्रवासी लोग भारत के प्रमुख शहरों में काम करने गए थे वहां हिंदी सिनेमा उनके मनोरंजन का साधन बना ।सभी भाषा-भाषी लोगों को जोड़ने का माध्यम बना। नेल्सन मंडेला कहते हैं- "अगर आप किसी से ऐसी भाषा में बात करते हैं जिसे वह समझता है तो वह उसके दिमाग तक जाती है यदि आप उससे उनकी ही भाषा में बात करते हैं तो वह उसके हृदय तक जाती है"1 सिनेमा देखते समय सिनेमा गृह में हमारे समीप किस जाति का व्यक्ति बैठा है यह भाव नहीं आता बल्कि आनंद से सिनेमा देखते हैं ।राष्ट्रभक्ति पर आधारित सीन हिंदी सिनेमा ने स्वतंत्रता काल में देशभक्ति को प्रेरणा देने का कार्य किया है ।लता मंगेशकर द्वारा गाया गया 'यह मेरे वतन के लोगों' इस गीत ने सैनिकों की वेदना की अनुभूति का परिचय संपूर्ण देश को कराया है। हिंदी सिनेमा के गीतों ने हिंदी सीखने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और अहिंदी क्षेत्र के बालक भी हिंदी गीत गुनगुनाते हैं । अर्थात "हिंदी भाषा को विश्व स्तरीय पहचान दिलाने में सिनेमा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।"2

हिंदी मध्यम वर्गीय ,अर्ध शहरी ,शहरी समाज की संपर्क भाषा है। टेलीविजन की पहुंच जहां तक है वहां तक हिंदी भाषा की खेती है। आरंभिक हिंदी सिनेमा के कलाकार, निर्माता, निर्देशक, संगीतकार, गायक हिंदी भाषा क्षेत्र से ही रहे हैं। आज भारत के प्रत्येक प्रांत का प्रतिनिधित्व इस उद्योग में है। सिनेमा उद्योग ने अधिकांश लोगों को रोजगार उपलब्ध करके दिया है। इस उद्योग में पैसा भी काफी कमाया जाता है। हिंदी बोलचाल के रूप को प्रसारित करने में सिनेमा की भूमिका अहम् रही है ।हिंदी भाषा की अनेक बोलियों का ज्ञान सिनेमा के ही माध्यम से ही हुआ है। जो व्यक्ति हिंदी की अन्य बोलियों से परिचित होना चाहता हो तो उसके लिए सिनेमा उचित माध्यम है ,क्योंकि आज के दौर में प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक प्रांत में हिंदी बोलियों का आस्वाद लेने तो नहीं जा सकता न इसके लिए इतना समय एवं धन खर्च करने की क्षमता

होती है यदि बोलियां का प्रात्यक्षिक देखना हो तो इसके लिए सिनेमा उचित साधन है। "जब हम हिंदी सिनेमा का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं की भाषा का प्रचार -प्रसार, साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रूपांतर ,हिंदी गीतों की लोकप्रियता, हिंदी की अन्य उपभाषाएं और अन्य हिंदी बोलियों का सिनेमा और सांस्कृतिक एवं जातीय प्रश्नों को उभारने में भारतीय सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है"3 हिंदी सिनेमा भारतवर्ष के सभी प्रांत में दिग्दर्शित होते है । "फिल्मों में हिंदी भाषा की फिल्मों की संख्या सर्वाधिक है"4अर्थात अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिंदी सिनेमा का प्रमाण अधिक है, दर्शकों की सबसे अधिक उपस्थित हिंदी सिनेमा गृह में ही रही है, जिसके फल स्वरुप भारत का प्रत्येक व्यक्ति हिंदी समझता है और सरलता से टूटी-फूटी हिंदी का प्रयोग करता है ।अर्थात बोलचाल की हिंदी में हिंदी सिनेमा ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है किंतु मानक हिंदी भाषा क्षेत्र में विशेष योगदान नहीं दिया है ।भारतीय समाज के सभी स्तरों पर हिंदी सिनेमा लोक रंजन एवं लोक शिक्षा का प्रभावी साधन बना है।

हिंदी भाषा की संरचना विश्व की सभी भाषाओं की संरचना की अपेक्षा अधिक उदार है। गद्य -पद्य के सभी विषय हिंदी में सुगमता से कहे जा सकते हैं। रसों का प्रत्यक्ष चित्र खींचने की क्षमता हिंदी में है ,क्योंकि वह शब्द भंडार से परिपूर्ण है। अन्य भाषाओं के उपन्यास, नाटक, कहानी या कोई भी लिखी हुई रचना हिंदी में सरलता पूर्वक अनुवादित हो सकती है। हिंदी की सरलता, सुगमता , सरसता मनोवैज्ञानिकता जनसंप्रेषणीयता आदि पक्ष सर्वथा प्रशंसनीय है किंतु फिर भी हिंदी सिनेमा ने मानक हिंदी भाषा विकास में विशेष योगदान नहीं दिया है। जावेद अख्तर कहते हैं "हिंदी फिल्में सही हिंदी में कम ही लिखी जाती हैं। सरल हिंदी में लिखी पटकथा में भी बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों का उपयोग जमकर किया जाता है। ऐसी स्क्रिप्ट यहां कम ही देखने को मिलती है जिसमें अंग्रेजी शब्दों के मोह से बचते हुए शुद्ध हिंदी या उर्दू के शब्दों का उपयोग किया जाता हो।"5 बहुत ही अल्प प्रमाण में एखाद पात्र मानक हिंदी का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। भूल भुलैया सिनेमा में सिद्धार्थ नामक पात्र का चाचा शुद्ध हिंदी का प्रयोग करता है। विवाह सिनेमा में आलोक नाथ प्रारंभ में शुद्ध हिंदी में वार्तालाप करता है। अनुराग कश्यप की सिनेमा हनुमान में कुछ पात्रों के मुख से शुद्ध हिंदी का प्रयोग हुआ है, उदाहरण हनुमान और ब्रह्मा ब्रह्मा जी का वार्तालाप मानक हिंदी में हुआ है जो व्याकरण की दृष्टि से सटीक है। केवल उक्त बातों से मानक हिंदी का विकास नहीं हो सकता। उसमें विस्तारित दृष्टिकोण की आवश्यकता है, सिनेमा एक व्यापक प्रभाव वाला माध्यम है परिणाम स्वरुप दर्शकों को सिनेमा में प्रयुक्त हिंदी भाषा चुनने की आदत सी पड़ती है और मानक हिंदी भाषा के शब्द संपदा से मानचित्र रहते हैं यदि स्थिति ऐसी रही तो मानक हिंदी का अस्तित्व समाप्त हो सकता है। संस्कृत भाषा की तरह मानक हिंदी की दशा हो सकती है ।

"हिंदी सिनेमा की भाषा को बचाए रखने की कोशिश पहले नहीं की जाती थी क्योंकि सब कुछ स्वत:ही चला करता था। हिंदी फिल्मों में हिंदी को कोई खतरा नहीं था। बाद में चीजें बदलना शुरू हुई।"6 सिनेमा निर्माण में करोड़ों रुपए खर्च होते हैं क्योंकि इसके पीछे व्यावसायिक दृष्टिकोण होता है इसलिए निर्माता ऐसी सिनेमा का निर्माण करता है जिससे अधिक लाभ हो, चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कहीं बार व्याकरण की दृष्टि से गलत शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। आज का दर्शन भी चकाचौंध से प्रभावित होता है, परिणाम स्वरुप उच्च कोटि की सिनेमा गृह से एक ही सप्ताह में उतर जाती है ।बौद्धिक वर्ग एवं साहित्यकार सिनेमा की भाषा के प्रति अपने दायित्व को निभाते नहीं ।पत्रिकाएं भी उच्च कोटि के सिनेमा उसके भाषा सौंदर्य प्रशंसा में तथा निकृष्ट सिनेमा की आलोचना करने में विशेष योगदान देते नहीं। सिनेमा लेखक ईमानदारी और समझदारी से कार्य करते नहीं बल्कि व्यावसायिक दृष्टि से सिनेमा की कहानी लिखने में अनेक समझौते करते हैं । "हिंदी फिल्मों की स्क्रिप्ट की दुर्दशा के लिए आज के अभिनेता ज्यादा जिम्मेदार है क्योंकि उनकी सबसे बड़ी परेशानी यह है कि वह हिंदी या उर्दू साहित्य के जरा भी नजदीक नहीं है ।उर्दू की बात जाने दे हिंदी पढ़ने में भी उन्हें खासी दिक्कत होती है ।इसका सीधा असर अच्छी स्क्रिप्ट पर पड़ता है।"7

हिंदी भाषा को नियंत्रित करने के लिए 20वीं शताब्दी में व्याकरण की कई पुस्तकें लिखी गई है, जैसे कामता प्रसाद गुरु की 'हिंदी व्याकरण', किशोरी दास वाजपेई की 'हिंदी शब्दानुशासन', निगमानंद परमहंस की 'राष्ट्रभाषा का व्याकरण' आदि किताबों का अध्ययन करना आवश्यक है। हिंदी भाषा की शुद्धता के लिए सिनेमा द्वारा सफल प्रयास भी हो सकते हैं ,जैसे कि अधिकांश हिंदी सिनेमा में मानक हिंदी का प्रतिनिधित्व करने वाले दो-तीन पात्रों का समावेश करना आवश्यक है। हिंदी सिनेमा अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम है, इसके द्वारा हिंदी शब्द संपदा जनमानस तक पहुंच कर दर्शकों के शब्द संग्रह में वृद्धि करने का कार्य संभव हो सकता है। सिनेमा का प्रभाव बालकों पर भी होता है ,बालक अनुकरण से ही भाषा सीखते है इसलिए मानक हिंदी भाषा सीखने के लिए सिनेमा उचित माध्यम है। उच्च कोटि की सिनेमा एवं मानक भाषा की प्रशंसा सिनेमा पत्रिकाओं से प्रकाशित होनी चाहिए।दर्शकों को सिनेमा के संदर्भ में योग्य मार्गदर्शन पत्रिकाओं के माध्यम से होना चाहिए। सिनेमा लेखक ने अपने ईमान से विमुख न होने का संकल्प लेना चाहिए। "हिंदी न केवल हमारी भाषिक अस्मिता का प्रतीक है,

बल्कि वह हमारे देश के संवाद, गौरव, अतीत और भविष्य के लिए हमारे देश की प्रतिनिधि भाषा है। इस कारण हिंदी फिल्मों में भी हिंदी का स्थान सम्मान पूर्ण ही होना चाहिए ।"8

21वीं सदी में भी भाषा पर चिंतन, विश्लेषण और व्याकरण का विवरण करने की आवश्यकता है। अमरेंद्र कुमार कहते हैं "हिंदी संचार- क्रांति के इस युग में लाभान्वित हो रही है लेकिन दु:खद बात

यह है कि 21वीं सदी में हिंदी का रूप विकृत हो रहा है।" सिनेमा में बोलचाल की भाषा अपनाते समय व्याकरण के नियमों की परवाह नहीं की जाती हैं जो निश्चय चिंतनीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वाति चौधरी, "हिंदी सिनेमा और भाषा के बदलते संदर्भ" सेतु ,ISSN:- 2475-1359 https://www.setumag.com
2. वहीं
3. वहीं
4. "हिंदी सिनेमा में हिंदी का अस्तित्व", Hindi chetan Bharti https://shwetashindi.blogspot.com
5. world press.com https://tirchhispelling.worldpress.com
6. शब्दांकन, सुनील मिश्र , "हिंदी सिनेमा की भाषा" https://www.shabdankan.com
7. चंदन श्रीवास्तव, "हिंदी सिनेमा की भाषा- एक के भीतर अनेक" world press.com https://tirchhispelling.worldpress.com
8. "हिंदी सिनेमा में हिंदी का अस्तित्व", Hindi chetan Bharti https://shwetashindi.blogspot.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 190-194
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृषक समाज और कृषि नीति (शिक्षा)

बॉबी, शोधार्थी,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

परिचय :

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ कि 75 प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि करती है। व कृषि करके अपना जीवन व्यापन करते है। व किसान (कृषक) शब्द उस व्यक्ति को संदर्भित करता है। जो फसल उगाने और अन्य प्राथमिक कृषि वस्तुओं का उत्पादन करने की आर्थिक और या आजीविका गतिविधि में सक्रिय रूप से लगा हुआ है। "इस परिभाषा में कृषि परिचालन धारक, कृषक, खेतिहर मजदूर, बटाईदार, किरायेदार, मुर्गीपालन और पशुपालन, मछुआरे, मधुमक्खीपालन, माली, चरवाहे, गैर-कापरेंट बागान मालिक और शोषण मजदूर साथ ही विभिन्न खेती से संबंधित व्यवसायों में लगे व्यक्ति शामिल है। जैसे रेशम उत्पाद, वर्मी कल्चर और कृषि वानिकी। वह व्यक्ति होता है। जो खेत में दौड़ता और काम करता है।"[1]

कृषक समाज:-

प्रथम, कृषक समाज, कृषि नीति, शिक्षा रॉबर्ट रेडफील्ड ने कृषक समाज की अवधारणा के माध्यम से ग्रामीण समाज की आन्तरिक एवं बाह्य संरचना को समझाने का प्रयत्न किया है। "यहां इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भारत या चीन में कृषक समाज है। जिन समाजो में संख्या कि दृष्टि से कृषकों की अधिकता पायी जाती है। वहां भी ऐसे अकृषक लोग पाए जाते है। जो संपूर्ण समाज की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण या निर्णायक भूमिका निभाते है।"[2]

"आन्द्रे विताई ने कृषक शब्द के तीन अर्थों पर प्रकाश डाला है। (प्रथम, कृक्षक भूमि से जुड़ा होता है। वह न केवल उस पर निर्भर करता है। बल्कि उसे अपने श्रम से फलदायक बनाता है। कानूनी दृष्टि से वह भूमि का स्वामी होता है। बिना भूस्वामी अधिकार के एक श्रमिक हो सकता है। लेकिन इन सब स्थितियों में वह श्रम द्वारा अपनी आजीविका कमाता है।"[3]

द्वितीय, ऐसा माना जाता है कि अधिकांश समाजो में कृषको की निम्न स्थितियां होती है। वे लोग जो कृषक के परिश्रमी, सरल तथा मितव्ययी होने की प्रशंसा करते है। स्वीकार करते है। कि समाज में उनकी वास्तविक प्रतिष्ठा ऊँची नहीं होती।

तृतीय, कृषको को मजदूरी का प्रतिपक्ष या पूरक माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषको तथा श्रमिको के लिए यह समझा जाता है कि ये एक ही श्रेणी के अन्तर्गत आते है। ऐसा मानने से यह स्पष्ट होता है। कि कृषको का विभिन्न वर्गों के द्वारा शोषण होता है। एक ओर शोषित कृषक वर्ग आता है। तो दूसरी ओर उनके शौषणकर्ता। कृषक शब्द के उपर्युक्त तीन अर्थों को ध्यान में रखने पर स्पष्ट हो जाता है। कि सम्पूर्ण भारतीय समाज के लिए कृषक समाज शब्दावली का प्रयोग अनुपयुक्त है।

समस्या:-

किसान शिक्षा के अभाव के कारण अच्छे बीज व कीटनाशको का कीटनाशको का संतुलित प्रयोग को लेकर जागरूक नहीं है।

कृषक समाज की भूमिका:-

एक कृषक समाज अपने विशिष्ट क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं के लिए जिम्मेदार होता है। एक कृषक के पास समग्र रूप से कृषि उद्योग का व्यापक ज्ञान होता है चाहे वह नकदी फसल फार्म पर गुणवत्तापूर्ण प्रजनन स्टॉक की खरीद हो, या आहार और देखभाल हो पशु उत्पादन फार्म पर विशिष्ट प्रकार के पशुधन एक किसान को रोपण तिथियो और कटाई की अवधि के सामान्य ज्ञान के अलावा, अपने उपकरणो को कार्यशील और इष्टतम स्थिति में रखने के लिए अक्सर यांत्रिकी की ठोस कार्यशील समझ की आवश्यकता होती है।

कृषक समाज का महत्व:-

कृषक समाज के महत्व को ग्रहणाधिकार में वर्णित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वे हर किसी के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। कृषक समाज का महत्व निम्नलिखि है :

1. ताजे फल और सब्जियों तक हमारी पहुँच के लिए किसान जिम्मेदार है।
2. किसान सच्चे योद्धा है। क्योंकि वे हमे भोजन उपलब्ध कराते समय-समय पर कई चुनौतियों का सामना करते है।
3. किसान मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है।
4. किसान देश की आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

कृषि नीति क्या है?

भारतीय प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने शिक्षा नीति 2020 (एमएसपी) में मध्य विद्यालय स्तर पर कृषि शिक्षा शुरू करने की घोषणा की थी। उसी के परिणाम स्वरूप यह राष्ट्रीय कृषि शिक्षा नीति लागू की गई है। भारत में अपनी तरह की पहली परियोजना है और इसका उद्देश्य फसल विज्ञान, मत्स्य पालन, पशु चिकित्सा और डेमरी तैयारी और अनुसंधान पर केन्द्रित विश्वविद्यालय में प्रवेश विकास विकल्पो के साथ अकादमिक क्रेडिट बैंक और डिग्री कार्यक्रम लाना है।

उपलब्ध प्रवेश-विकास विकल्पो के साथ, राष्ट्रीय कृषि शिक्षा नीति छात्रो के लिए अपने डिप्लोमा और उन्नत डिप्लोमा को जारी रखने का अवसर खोलती है। जब वे अपनी पढाई फिर से शुरू करने और पूर्णकातिक कॉलेज की डिग्री हासिल करने में सक्षम होते है। राष्ट्रीय कृषि शिक्षा नीति में शामिल किए गए विश्वविद्यालयों को चार भागों में विभाजित किया गया है:

1. केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय इसमे तीन विश्वविद्यालय शामिल है, जिनमे से एक इम्फाल, समस्तीपुर और झाँसी से है।
2. आईसीएआर डीम्ड विश्वविद्यालय इस कैडर में चार विश्वविद्यालय है
3. राज्य कृषि विश्वविद्यालय इसमें 63 विश्वविद्यालय शामिल है।
4. कृषि संकाय के साथ केन्द्रीय विश्वविद्यालय विश्वविद्यालय शामिल है। इसमें चार

राष्ट्रीय कृषि शिक्षा नीति:-

राष्ट्रीय कृषि शिक्षा नीति के दो प्रमुख पहलुओ पर चर्चा :

शैक्षणिक क्रेडिट बैंक:-

1. वांछनीय छात्र समुदाय के लिए उपलब्ध सेवा प्रदाता, जो अंतर और अंतर विश्वविद्यालय प्रणाली के भीतर छात्र गतिशीलता बनाकर परिसरों और वितरित शिक्षण प्रणालियों के एकीकरण को आसान बना सकते है।
2. क्रेडिट पहचान तंत्र प्रदान करके क्रेडिट आधारित औपचारिक प्रणाली के रूप में कौशल और अनुभवो का लगातार एकीकरण प्राप्त किया जा सकता है।
3. मान्यता प्राप्त उच्च शिक्षा संस्थानो (एचईआई) से अर्जित शैक्षणिक क्रेडिट बैंको के माध्यम से प्रबंधित किया जा सकता है।
4. यह प्रमाण पत्र, डिग्री या डिप्लोमा प्रदान करने के लिए क्रेडिट गोयल की भी अनुमति देगा।

अनुभवात्मक शिक्षा:-

1. अनुभवात्मक शिक्षा एक शिक्षण पद्धति या दर्शन है, जिसके अनुसार एक शिक्षक प्रत्यक्ष अनुभव पर ध्यान केन्द्रित करता है और शिक्षार्थी को समझाता है। इसके परिणामस्वरूप ज्ञान बढ़ता है, कौशल विकसित होता है और योगदान करने के लिए लोगों की क्षमता और कौशल का विश्लेषण भी होता है।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार, भारत का लक्ष्य कृषि स्नातक पाठयक्रमो को चार साल की पूर्णकालिक अवधि के लिए निर्धारित करना है। हालाँकि, भारत पहले से ही चार साल के कार्यकाल वाले अपने सभी कृषि पाठयक्रमो के साथ एक कदम आगे है।
3. एनईपी उन सभी 74 विश्वविद्यालयो के लिए अनुभावत्मक शिक्षा का भी उल्लेख करता है जिन्हे राष्ट्रीय कृषि शिक्षा नीति के तहत कवर किया गया है हालाँकि, यह मील का पत्थर भी हासिल कर लिया गया था क्योंकि 2016 से कृषि शिक्षा में अनुभवात्मक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी।

राष्ट्रीय कृषि शिक्षा नीति के साथ चुनौतियाँ और मुद्दे:-

1. प्रवेश और विकास मॉडयूल के विकल्प को प्रबंधित करना थोड़ा जटिल होगा। विश्वविद्यालयों को ऐसे उपाय करने होंगे कि प्रत्येक छात्र की शिक्षा पूरी करते समय संपूर्ण शिक्षा और अनुभवात्मक पद्धति दोनों को अनुकूलित जा सके।

2. कृषि विश्वविद्यालयो को भूमि अनुदान पैटर्न पर तैयार किया गया है, जिसमें अनुसंधान और विस्तार और गहरे सामुदायिक कनेक्शन पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, जो इस दर्शन से प्रेरित है कि किसानो को उनकी समस्याओं के समग्र की आवश्यकता है।

भारत सरकार ने किसानो के लिए राष्ट्रीय नीति को मंजूरी कब दी ?

"स्वामीनाथन आयोग द्वारा प्रस्तुत 'किसानों' हेतु मसौदा राष्ट्रीय नीति (एनपीएफ), 2007 को मंजूरी दे दी है, जिसका लक्ष्य कृषि की आर्थिक व्यवहार्थता में करना और किसानो की निल आय में वृद्धि करना है।"[4]

भारत में अब तक कितनी बार शिक्षा नीति बनाई गई है ?

"राय कहते है कि गौर करने की बात यह है कि अब तक सिर्फ दो बार शिक्षा नीति लागू हुई है। पहली बार शिक्षा नीति 1968 में लागू हुई थी, जिसमे कहा गया था कि इसका हर पांच साल में रिव्यू होगा। 1986 तक एक बार भी नहीं हुआ। इसी साल दूसरी शिक्षा नीति बनाई गई।"[5]

भारत की नई कृषि नीति कब लागू हुई?

"सन् 1966-1967 में भारत सरकार ने नई कृषि नीति का ऐलान किया।"[6]

तीसरी शिक्षा नीति कब लागू हुई?

"प्रथम शिक्षा नीति 1968 में डीराम कोठारी की अध्यक्षता में बनी दूसरी शिक्षा नीति 1986 में बनी और 1992 में उसमे आवश्यकतानुसार संशोधन भी किया गया। अब 34 वर्ष पश्चात् बहुत बड़े विमर्श के बाद 29 जुलाई, 2020 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा तीसरी शिक्षा नीति की घोषणा की गई।"[7]

दैनिक मानवस्वरूप कृषक समाज के लिए शिक्षा का महत्व:-

अगर किसान व उसका परिवार पढ़ेगा लिखेगा तो वह उन्नत किसान के रूप में निखरेगा। ऐसा नहीं है कि वह पढ़-लिखकर कोई नौकरी ही करे वह शिक्षा का उपयोग कृषि में कर उससे भी उन्नति कर सकता है। यह बात कृषि विभाग द्वारा कृषि उपज मंडी परिसर में आयोजित कृषि संगोष्ठी को संबोधित करते हुए स्वास्थ्य प्रमुख सचिव गौरी सिंह ने कही। उन्होंने कहा कृषि को बढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाए संचालित है, जिसका लाभ किसानो को होना चाहिए। कार्यक्रम को विद्यालय दिलीप सिंह शेखावत ने संबोधित करते हुए कहा कि कृषक समाज पढ़ा लिखा होगा तो वह लेपटॉप से ही मानसून के आने, उसके लिए होने वाली तैयारी, उत्पादन की प्रक्रिया व उसके विक्रय की जानकारी एकत्रित कर सकेगा। क्षेत्र में कई किसानों ने उन्नति की है। "किसानो को प्रयास करना होगा तभी वह अपने सपने साकार कर सकते है। संगोष्ठी में कृषि विभाग द्वारा किसानो को विभिन्न जानकारियो से अवगत कराया गया। साथ ही जैविक खाद की महत्ता बताते हुए इसका उपयोग अधिक से अधिक करने का आहान किया गया"[8] इस

मौके पर जनपद पंचायत अध्यक्ष शयामूबाई माल्वीय, उपाध्यक्ष लाल सिंह बंजारी, एसडीएम राजीव रंजन मीणा, अपर तहसीलदार रमेश सिसौदिया, जनपद पंचायत एम.एल. स्वर्णकार आदि मौजूद थे।

निष्कर्ष:-

कृषक समाज वह है जो मानव उपयोग के लिए पौधो का विकास करता है और जानवरो को पालता है। जैसा कि हमने लेख में देखा है। वास्तविक फसल पाने के लिए कृषक को शिक्षित, होना चाहिए। ताकि वह अपने सारे कार्य स्वयं कर सके व अच्छे-बुरे का पता लगा सके। व सरकार द्वारा इस को उन्नत बनाने के लिए शिक्षा संस्थान खोले जाने चाहिए। केवल शिक्षित किसान ही पोषक खाद्य के लाभो को समझ कर उसे उगा सकते है। किसानो को शिक्षित करने के उद्देश्य से गुणावत्ता युक्त स्कूल, कॉलेज और शिक्षण संस्थान खोले जाने चाहिए तथा ग्रामीण क्षेत्रों में शहरो की तरह स्कूल, कॉलेज और बिजली जैसी सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1 Robert Redfield, Peasant Society and Culture, p. 29.

2 Andre Redfield, Peasant Society and Culture, p. 29.

3 https://sahsad.in>setfile>hindi

4 https://sahsad.in>setfile>hindi

5 https://www.bhaskar.com>news

6 https://www.eklavya.in>pfs>SSTP

7 http://sites-google.com>यगहाकमर

8 www-vedanta-com.translate.google:-किसान की भूमिका

House no 99
Police line Gurgaon, pin 122001
Ph no. 8527150382
Gmail- bobysingh15519@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 195-198
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

निर्मल वर्मा और कृष्णनाथ के यात्रा साहित्य में समकालीन परिवेश : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रीना कुमारी , शोधकर्ता,
डॉ. मीनू , मार्गदर्शिका,
एस. के. डी. विश्वविद्यालय हनुमानगढ़

शोध सारांश :–
यह शोध पत्र हिंदी यात्रा साहित्य के दो प्रमुख हस्ताक्षरों – निर्मल वर्मा और कृष्णनाथ के लेखन में समकालीन परिवेश की प्रस्तुति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। यात्रा साहित्य, जहाँ एक ओर भौगोलिक स्थलों का वर्णन करता है, वहीं दूसरी ओर वह लेखक के समय, संवेदना और सामाजिक सरोकारों को भी प्रतिबिंबित करता है। निर्मल वर्मा के यात्रा वृत्तांतों में यूरोपीय देशों की साम्यवादी और पूंजीवादी संरचनाओं के अंतर्विरोध, सांस्कृतिक संक्रमण और भारतीय आत्मबोध की खोज स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। वे विदेशी भूमि पर खड़े होकर भारतीयता को नए दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करते हैं। वहीं कृष्णनाथ का यात्रा साहित्य भारतीय समाज, संस्कृति और इतिहास और भूगोल के बीच संवाद स्थापित करता है। साथ ही हिमालयी समाज पर आधुनिक जीवन शैली के प्रभाव से चिंतित है। उनके यात्रा वृत्तांतों में परंपरा और आधुनिकता के बीच का द्वंद्व, सामाजिक विषमताएँ, हाशियाकृत समुदायों की उपस्थिति और भारत की आत्मा व बौद्ध धर्म दर्शन की खोज गहराई से देखने को मिलती है। वे भारत के भीतर रहकर भारत को एक जीवित, गतिशील और जटिल संरचना के रूप में प्रस्तुत करते हैं।
दोनों लेखकों का दृष्टिकोण भिन्न होते हुए भी समकालीन परिवेश की जटिलताओं को समझने और व्यक्त करने में सक्षम है। निर्मल वर्मा जहाँ मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समकालीनता को देखते हैं, वहीं कृष्णनाथ सामाजिक–सांस्कृतिक व धार्मिक यथार्थ और ऐतिहासिक संदर्भों के माध्यम से इसे उजागर करते हैं। यह शोध पत्र लेखकों के यात्रा साहित्य में समय, समाज और संस्कृति के समकालीन परिदृश्य की प्रस्तुति को तुलनात्मक रूप से विश्लेषित करता है, जिससे हिंदी यात्रा साहित्य की व्यापकता और प्रासंगिकता को नई दृष्टि मिलती है।
शब्द कुंजी :– यात्रा साहित्य, समकालीनता, सांस्कृतिक संदर्भ, निर्मल वर्मा, कृष्णनाथ, तुलनात्मक अध्ययन इत्यादि।

पृष्ठभूमि :–

हिंदी साहित्य के विविध विधाओं में यात्रा साहित्य एक ऐसी विधा है जो न केवल स्थानों के भौगोलिक विवरण को प्रस्तुत करती है, बल्कि लेखक की मानसिक, सांस्कृतिक और सामाजिक यात्रा को भी दर्शाती है। यह विधा अनुभव, अवलोकन और संवेदना का ऐसा संगम है, जो पाठक को भौगोलिक सीमाओं से परे ले जाकर समय और समाज के गूढ़ पक्षों से परिचित कराती है। समकालीन परिवेश, जिसमें राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक तत्व शामिल हैं, यात्रा साहित्य को नयी दृष्टि और गहराई प्रदान करता है।

निर्मल वर्मा और कृष्णनाथ हिंदी यात्रा साहित्य के दो ऐसे प्रतिष्ठित नाम हैं, जिन्होंने अपने यात्रा–वृत्तांतों में न केवल स्थानों का चित्रण किया है, बल्कि उस युग के परिवेश, मनोवृत्तियों और सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर्विरोधों को भी अभिव्यक्त किया है। निर्मल वर्मा की यात्राएँ मुख्यत : यूरोप और पश्चिमी समाज के इर्द–गिर्द घूमती हैं, जहाँ वे आधुनिक सभ्यता की विडंबनाओं, आत्मविरोध और सांस्कृतिक संकटों को अनुभव करते हैं। उनके लेखन में एक गहरी आत्मचिंतनशीलता और सांस्कृतिक संवाद की चेतना दिखाई देती है।1

दूसरी ओर, कृष्णनाथ का यात्रा साहित्य भारत की मिट्टी से जुड़ा हुआ है। वे यात्राओं के माध्यम से भारत की बहुलतावादी संस्कृति, ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक विविधता को उजागर करते हैं। उनका दृष्टिकोण अधिक तथ्यपरक, संवादात्मक और सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ है।2

यह शोध पत्र इन दोनों लेखकों के यात्रा साहित्य में समकालीन परिवेश की अभिव्यक्ति का विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि यात्रा साहित्य कैसे समय की धड़कन को पकड़कर साहित्य में सार्थक हस्तक्षेप करता है।

समकालीन परिवेश की अवधारणा :–

समकालीन परिवेश उस ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण को दर्शाता है जिसमें लेखक सक्रिय रहता है और जिसकी घटनाएँ उसकी संवेदना को प्रभावित करती हैं। यह केवल समय की सीमा नहीं, बल्कि उस समय में मौजूद राजनीतिक उथल–पुथल, सांस्कृतिक संघर्ष, वैश्वीकरण की प्रक्रिया, तकनीकी हस्तक्षेप और सामाजिक संरचनाओं में हो रहे परिवर्तनों का प्रतिबिंब होता है। समकालीन परिवेश लेखक की दृष्टि को दिशा देता है और उसकी रचनात्मकता को समयबद्ध बनाता है। यात्रा साहित्य में यह परिवेश स्थानों से अधिक मानवीय अनुभवों और सामाजिक अंतर्विरोधों में प्रकट होता है।

निर्मल वर्मा के यात्रा साहित्य में समकालीन परिवेश :–

राजनीतिक चेतना

निर्मल वर्मा की रचनाओं में राजनीतिक चेतना एक आत्मसात अनुभव के रूप में उपस्थित होती है। 'चीड़ों पर चाँदनी' जैसी रचनाओं में यूरोप की साम्यवादी व्यवस्थाओं और उनकी विफलताओं का विश्लेषण करते हुए वे मानव स्वतंत्रता और व्यक्तिगत गरिमा की रक्षा की बात करते हैं। सोवियत संघ में तानाशाही के प्रभावों को वे संवेदनशीलता से अभिव्यक्त करते हैं, जिससे राजनीतिक व्यवस्था की जड़ता और मानव चेतना की जटिलता उभर कर सामने आती है।3

सांस्कृतिक संक्रमण

निर्मल वर्मा के यात्रा लेखन में सांस्कृतिक संक्रमण की प्रक्रिया अत्यंत मुखर रूप से दिखाई देती है। वे पश्चिमी सभ्यता की भौतिकवादी प्रगति और उसमें निहित आत्मविहीनता को महसूस करते हुए भारतीय संस्कृति की आत्मा की ओर लौटने का आग्रह करते हैं। उनका लेखन भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति एक गहरे मोह और सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बनता है, जहाँ वे सांस्कृतिक जड़ों को आधुनिकता से जोड़ते हैं।

सामाजिक अनुभव

यूरोप में रहने के दौरान निर्मल वर्मा ने प्रवासी भारतीयों के मानसिक द्वंद्व, सांस्कृतिक असमंजस और सामाजिक अलगाव को गहराई से अनुभव किया। उनके लेखन में यूरोपीय समाज की एकाकी आधुनिकता और भारत की सामूहिक जीवन पद्धति का सुंदर और विचारोत्तेजक तुलनात्मक चित्रण मिलता है। वे सामाजिक संबंधों के बिखराव और आत्मीयता के क्षरण को यात्रा के माध्यम से उजागर करते हैं।

कृष्णनाथ के यात्रा साहित्य में समकालीन परिवेश :–

समाज और इतिहास का समन्वय

कृष्णनाथ के यात्रा लेखन में 'अरूणाचल यात्रा, कुमाउँ यात्रा, व 'दत्त दिगम्बर माझे गुरु और हिमालय त्रिक कथा' जैसे ग्रंथों के माध्यम से इतिहास और समाज का गहन समन्वय देखने को मिलता है। वे यात्रा को केवल स्थानांतरण न मानकर उसे एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संवाद मानते हैं। आधुनिकता और पारंपरिक लोक–चेतना के बीच के संघर्ष को वे स्थानीय अनुभवों के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। लेखक यात्रा के दौरान जितना बाह्य और आन्तरिक दोनों स्तरों पर एक साथ चलते हैं।

आधुनिकता और परंपरा का द्वंद्व

कृष्णनाथ के लेखन में ग्रामीण और शहरी समाज के मध्य संबंधों की पड़ताल स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे आधुनिकता और परंपरा के बीच का द्वंद्व केवल बाहरी दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि गहरे आत्मीय अनुभव से प्रस्तुत करते हैं। उनके यात्रा वृत्तांतों में आधुनिक मूल्यों के प्रभाव और परंपरागत संस्कृति की टकराहट को मानवीय संदर्भों में देखने की कोशिश की गई है।

स्त्री, जनजाति और हाशियाकृत समुदाय

कृष्णनाथ की लेखनी समकालीन सामाजिक विमर्श को अपने यात्रा वृत्तांतों में स्थान देती है। वे स्त्री अस्मिता, जनजातीय जीवन और हाशिये पर स्थित समाजों के जीवन संघर्षों को न केवल देखते हैं, बल्कि उन्हें आत्मीयता से समझने का प्रयास करते हैं। उनके यात्रा वृत्तांत सामाजिक न्याय, विविधता और अस्मिता के गूढ़ पक्षों को उजागर करते हैं।4

तुलनात्मक विश्लेषण

निर्मल वर्मा और कृष्णनाथ हिंदी यात्रा साहित्य के दो ऐसे महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, जिनकी लेखनी यात्रा को केवल भौगोलिक स्थानांतरण नहीं, बल्कि एक वैचारिक, सांस्कृतिक और आत्मिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती है। दोनों लेखकों के दृष्टिकोण, लेखन शैलियाँ और समकालीन परिवेश को देखने की प्रवृत्तियाँ एक–दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक गहरे साहित्यिक संवाद की स्थिति निर्मित करती हैं।

निर्मल वर्मा का यात्रा लेखन मुख्यतः अंतरराष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर केंद्रित है। वे यूरोप, विशेषतः साम्यवादी देशों की यात्रा के माध्यम से वहां की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियों का अवलोकन करते हैं। उनके लेखन में आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति प्रमुख है, जहाँ यात्रा उनके अंतर्मन की चेतना को झकझोरती है। उनकी रचनाओं में एक प्रकार की काव्यात्मकता, प्रतीकात्मकता और मनोवैज्ञानिक गहराई दिखाई देती है।5 वे पश्चिमी समाज की आत्मविहीनता और भौतिकतावाद की आलोचना करते हुए भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं। उनके लिए यात्रा एक सांस्कृतिक आत्मसंवाद का माध्यम है, जिसके ज़रिए वे भारतीयता की खोज करते हैं।

दूसरी ओर, कृष्णनाथ का यात्रा साहित्य भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक और अलंघ्य भौगोलिक धरातल पर आधारित है। वे भारतीय नगरों, हिमालयी देशों, जनजातीय अंचलों, बौद्धधर्मस्थलों व तीर्थस्थलों और ग्रामीण क्षेत्रों की यात्रा करते हुए वहाँ की लोकसंस्कृति, परंपराएँ, सामाजिक अंतर्विरोध और आधुनिकता के संघर्ष को चित्रित करते हैं। उनकी लेखन शैली वृत्तांतात्मक, तथ्यपरक और संवादात्मक है, जहाँ वे यात्राओं के माध्यम से समाज के हाशियाकृत वर्गों की आवाज़ बनते हैं।6 वे स्त्री, दलित, जनजाति जैसे विमर्शों को यात्रा–साहित्य में समाहित करते हैं और उन्हें सामाजिक संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं। उनके लिए यात्रा केवल आत्मान्वेषण नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को समझने का माध्यम भी है।

समकालीन परिवेश की प्रस्तुति में भी दोनों लेखकों में अंतर है। निर्मल वर्मा समकालीनता को यूरोपीय समाज के माध्यम से देखते हैं, जबकि कृष्णनाथ भारतीय समाज के भीतर रहकर ही समकालीन अनुभवों को व्यक्त करते हैं। जहाँ निर्मल वर्मा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय आत्मा की खोज करते हैं, वहीं कृष्णनाथ स्थानीय संस्कृति के माध्यम से वैश्विक अर्थों को समझने की चेष्टा करते हैं।7

इस प्रकार, दोनों लेखकों की दृष्टि और शैली भिन्न होते हुए भी समकालीन यात्रा साहित्य को समृद्ध करने में समान रूप से योगदान देती हैं। उनके साहित्यिक प्रयत्नों के माध्यम से यात्रा–साहित्य एक गंभीर, विचारशील और समकालीन विधा के रूप में प्रतिष्ठित होता है।8

निष्कर्ष :–

निर्मल वर्मा और कृष्णनाथ दोनों ही यात्रा साहित्य को केवल स्थलों के भौगोलिक विवरण से आगे ले जाकर समकालीन यथार्थ का संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करते हैं। निर्मल वर्माजी का लेखन आत्म–खोज और सांस्कृतिक अस्मिता की तलाश का माध्यम है9, जबकि कृष्णनाथ सामाजिक विविधता, संघर्ष और सामूहिक स्मृति के चित्रण के द्वारा भारतीय जीवन की जटिलताओं को उद्घाटित करते हैं।10 दोनों लेखकों की दृष्टि और शैली अलग होते हुए भी यात्रा साहित्य को समय–सापेक्ष और विचारोत्तेजक बनाते हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. वर्मा, निर्मल (2013), चीड़ों पर चाँदनी, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ.45.
2. कृष्णनाथ, (2015), वाया दार्जिलिंग. दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृ.36.
3. वर्मा, निर्मल (2016), धरती और कमरे, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ.94.
4. कृष्णनाथ, (2019), काशी : मरण और जीवन के बीच, दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृ.77.
5. पाठक, ए. (2018), समकालीन हिंदी यात्रा साहित्य में सामाजिक दृष्टिकोण. भोपाल, सहज प्रकाशन, पृ.102.
6. पाठक, ए. (2018), समकालीन हिंदी यात्रा साहित्य में सामाजिक दृष्टिकोण, भोपाल, सहज प्रकाशन, पृ.102.
7. श्रीवास्तव, एम. (2020), "हाशिए का समाज और कृष्णनाथ की यात्राएँ", हिंदी साहित्य विमर्श, 14(2), 134.
8. त्रिपाठी, आर. (2016), निर्मल वर्मा का साहित्य और मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली, साहित्य भवन, पृ.83.
9. तिवारी, एस. (2017), हिंदी यात्रा साहित्य में स्त्री दृष्टि और सामाजिक चेतना. इलाहाबाद, अनामिका पब्लिशर्स, पृ.108.
10. गुप्ता, पी. (2021), "कृष्णनाथ के यात्रा साहित्य में संस्कृति और इतिहास", यात्रा साहित्य समीक्षा, 10(1), 41–55.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 199-203
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

INDIAN VISION OF GLOBAL PEACE

भारतः वैश्विक शान्ति निर्माता

विनोद कुमार, शोधार्थी राजनीति विज्ञान
रजि. नं.– 22U002P0020 , रोल नं.– 22400235 ,
डा. एस.के. सिद्धार्थ, शोध निर्देशक
महाराजा छत्रशाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर (मध्यप्रदेश)

प्रसंगः

अखण्ड भारत आदिकाल से ही शान्तिमय रहा इसके साक्ष्य महाभारत में भी दिखाई पड़ते है। वैदिककाल से भारत शान्ति का अग्रदूत रहा है। भारत की भूमि ऋषि–मुनियों की व तपोवन है व त्याग की रही है। समय–समय पर शान्ति के उपदेश दिए हैं एवं वीरता का वर्णन तो बार–बार हुआ है।

भूमिकाः

प्राचीनकाल से ही शान्ति एवं सद्भावना भारतीय सांस्कृतिक की मूल विशेषताएं रही हैं। भारत अनेक धर्मों की जन्मस्थली है, शान्ति एवं मानवता का संदेश दिया है। स्वामी विवेकानंद का शिकागो में दिया गया भाषण, महात्मा गाँधी के सिद्धान्त और विचारधारा पूरी दुनिया में लोकप्रिय है, सर्वोदय की अवधारणा विकास का एक समावेशी मॉडल है 2 अक्टूबर को अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जाना, 21 सितम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति दिवस के रूप में माया जाना। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पंचशील सिद्धान्तों का अनुशरण, गुटनिरपेक्ष नीति को अपनाना, मानवता के हितों के साथ–साथ प्रकृति का भी संरक्षण किया जाएगा। नेल्सन मंडेला जैसे लोगों को स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा और आत्मनिर्भरता से ही मिला है। भारत वैश्विक प्रतिबद्धता का एक स्तम्भ है, भारत संयुक्त राष्ट्र शान्ति मिशनों में सबसे बड़ा योगदान देने वाले देशों में एक है। दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र शान्ति, मानवता और वैश्विक एकजुटता का हिमायती रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस और प्रवासी भारतीयों के योगदान जैसी पहलों के माध्यम से, भारत एकता और साक्षा विरासत की भावना को बढ़ावा देता है। इतिहास में भारत ने उत्पीड़न से भाग रहे विभिन्न समुदायों को शरण दी है। वैक्सीन कूटनीति और वैश्विक स्वास्थ्य पहल कोविड–19 महामारी ने भारत की भूमिका को उजागर किया गया है। वर्तमान समय में दुनिया को एक "ग्लोबल विलेज" वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया गया है। नस्लवाद खत्म करें, शान्ति का निर्माण करें विचारधारा की भूमिका है। शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में योगदान देना और भावना को बढ़ावा हैं। वैश्विक शान्ति और मानवता के लिए भारत का योगदान एक बहुआयामी दृष्टिकोण को दर्शाता है।

भारतः वैश्विक शान्मियः

भारत वैश्विक शान्ति में एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता रहा है और एक प्रमुख भूमिका निभाता है। भारत में विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग एक साथ रहते हैं जिससे यहाँ की जनता में सहिष्णुता और शान्तिप्रियता की भावना को बढ़ावा मिलता है। भारतीय संस्कृति में अहिंसा और सहिष्णुता के मूल्यों को महत्व दिया जाता है। महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने अहिंसा और सत्याग्रह के माध्यम से स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी, जिसमसे भारतीय जनता में शान्तिप्रिय की भावना को बढ़ावा मिला। भारत की जनता की शान्तिप्रियता

के पीछे कई कारण हैं। भारतीय संविधान में वर्णित मूल्यों और सिद्धान्तों का एक महत्वपूर्ण योगदान है। संविधान में समानता, न्याय और स्वतंत्रता के सिद्धान्तों पर जोर दिया गया है, जो शान्ति और सौहार्द को बढ़ावा देते हैं। यहां का इतिहास गौरवपूर्ण रहा है, सांस्कृतिक परंपरा पूरे विश्व से अलग रही है। यहां के लोग भावनात्मक हैं जिस प्रकार एक माँ अपने बच्चे को नौ महिना पेट में रखती है, जन्म के बाद उसकी देखरेख करती है अपनी वृद्धावस्था तक पहले अपने बच्चे के बारे में सोचती है ठीक उसी प्रकार हमने उसे सिर्फ भूमि का टुकड़ा न मानकर माँ का दर्जा दिया जाता है।

सम्राट अशोक ने भी कलिंग युद्ध में हिंसा से हुई क्षति का प्रत्यक्ष अनुभव करके अहिंसा को अपनाना ही श्रेष्ठ समझा। उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर हिंसा को त्याग दिया। उन्होंने अहिंसा और शान्ति के संदेश को न केवल भारत में अपितु भारत से बाहर भी प्रसारित किया। महात्मा गांधी ने भी भगवान बुद्ध के मार्ग पर चलते हुए अहिंसा को ही अपने जीवन का मूलमंत्र बनाया, उन्होंने कहा था– प्रेम और अहिंसा द्वारा विश्व के कठोर–से–कठोर हृदय को भी कोमल बनाया जा सकता है। भगवान बुद्ध का सबसे बड़ा सिद्धान्त अहिंसा ही था अपने उपदेशों में उन्होंने मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट न देने से ही अहिंसा के रूप में प्रतिपादित किया है। इसी अहिंसा के बल पर उन्होंने सुलगती मानवता को शान्ति प्रदान की।

गुटनिरपेक्षताः

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद वैश्विक स्तर पर तनाव, अविश्वास कटुता का माहौल पैदा हो रहा था। इससे बचने के लिए 1953 में सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र महासभा में वी.के. कृष्ण मेनन ने गुटनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग किया था। वैश्विक स्तर के नेताओं की दूरदर्शी विचारधारा शान्तिमय महौल पैदा करने के लिए ण्क सितम्बर 1961 को यूगोस्वालिया की राजधानी बेलग्रेड में 25 देशों ने मिलकर आयोजन किया था। वर्तमान में 100 से अधिक देशों का आयोजन जो आपसी सहयोग मित्रता शानिप्रिय सद्भावना विश्व शान्ति को बनाए रखने में सक्रीय भूमिका निभाई है। गुटनिरपेक्ष देशों ने विश्व में शान्ति व सुरक्षा के आधार तैयार करने में और मुहीम को अंजाम देने में महत्वपूर्ण भूमिका उदा की है।

अहिंसाः

महात्मा गांधी द्वारा रचित यह शब्द वैश्विक स्तर पर शान्ति के दूत कहलाए थे। असाधारण कार्यों एवं अहिंसावादी विचारों से पूरे विश्व की सोच बदल दी थी। गांधी जी प्रथम विश्व युद्ध व द्वितीय विश्व युद्ध एवं अंग्रेजों का साम्राज्यवाद उनके सामने प्रत्यक्ष उदाहरण पाकर वैश्विक स्तर शान्तिमय व आदर्शवादी विचारधारा अपनाने पर बल दिया वह जनमानस में पूरी तरह समाहित थे। वैश्विक स्तर पर अहिंसा का पुजारी भारत में राम–राज्य की स्थापना के पक्ष में थे। वह शान्ति के साथ–साथ ईमानदारी, सत्य पर कायम रहना, मेहनत करना, बड़ों का आदर करना, छुआछूत को मिटाना, समानपूर्वक रहना अनेक तथ्यों को समाहित करके वैश्विक स्तर पर शान्ति स्थापित की जा सकती है।

सम्राट अशोकः

सम्राट अशोक ने लिंग युद्ध के बाद, जिसमें भारी रक्तपात हुआ था जिसका प्रत्यक्ष अनुभव करके अहिंसा को अपनाया था। उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर हिंसा को त्याग दिया था। अहिंसा, शान्ति और धार्मिक सहिष्णुता के मूल्यों को अपनाया। सम्राट अशोक ने शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए अपने शिलालेखों में धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक सुझाव पर जोर दिया। बौद्ध धर्म को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अशोक ने "धम्म" नामक नीति के माध्यम से लोगों को अच्छे कर्म करने के लिए प्रेरित किया। धम्म नीति में दासों और सेवकों के साथ अच्छा व्यवहार, माता–पिता की सेवा और धर्मों के प्रति सहिष्णुता शामिल थी। सम्राट अशोक को अहिंसा और शान्ति का प्रतीक माना जाता है उनकी शिक्षाएं और कार्य आज भी लोगों को प्रेरणा देती हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघः

24 अक्टूबर 1945 में राष्ट्रों के बीच सहयोग और शान्ति को बढ़ावा देने के लिए स्थापित एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन हैं। यह वैश्विक स्तर आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानवतावादी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान करने में सब देशों का सहयोग प्राप्त करता है। मानवजाति की भावी संततियों को

युद्ध की विभिषिका से मुक्त करना, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाए तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के आधार पर शान्तिपूर्ण उपायों से समाधान करना।

ऐतिहासिक योगदानः

भारत का संयुक्त राष्ट्र शान्ति स्थापना के योगदान देने का एक लम्बा और उल्लेखनीय इतिहास रहा है, कोरियाई युद्ध में इसकी स्थापना हुई थी 1953 में।

दार्शनिक आधारः

शान्ति के प्रति भारत की प्रतिबद्धता अहिंसा को उसके गहन मूल्यों तथा मानवता के परस्पर संबंध में विश्वास से उपजी है, जैसा की "वसुधैव कुटुम्बकम" के उसके दर्शन में परिलक्षित होती है।

भारतीय संविधान अनुच्छेद–51ः

अनुच्छेद–51 में कहा गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की अभिवृद्धि हों। संगठित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में विधि और सन्धि के प्रति आदर बढ़ाने से, अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने के लिए प्रोत्साहन देने का प्रयास किया। भारत ने शान्ति स्थापना, निःशस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद के उन्मूलन, नवीन सदस्यों के साथ संस्था में प्रवेश आदि प्रश्नों पर संयुक्त राष्ट्र के साथ पूर्ण सहयोग किया एवं उसके आदर्शों में अपना विश्वास प्रकट किया।

पंचशील समझौताः

1954 में 'हिन्दी–चीनी भाई–भाई' भारत और चीन के बीच ऐतिहाहसिक संबंधों का एक प्रतीक बना हुआ है जो उनके अतीत में दोस्ती और समझ को दर्शाता है जिसमें शान्तिपूर्ण अस्तित्व के पांच सिद्धान्तों को रेखांकित किया गया था।

स्वामी विवेकानंदः

स्वामी विवेकानंद के शान्तिप्रिय उपदेश, आत्म–विश्वास, ज्ञान की खोज, आत्म–सुधार, दूसरों की सेवा और सार्वभौमिक भाईचारा पर जोर देते हैं। वे कहते है कि "उठो जागो और तब त कमत रूको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।" वे विश्व में शान्ति को बढ़ावा और मानवता की सेवा का समर्थन करते हैं।

प्राचीन भारत में सांस्कृतिकः

भारत की प्राचीनतम सभ्यता है, कला, साहितय, धर्म, दर्शन और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं को दर्शाती है, जिसमें सिन्धु घाटी सभ्यता, वैदिक सभ्यता और विभिन्न धर्मों का विकास शामिल है। यह संस्कृति जीवन के प्रति वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण का एक अद्‌भुत मिश्रण शामिल है।

समावेशी मॉडलः

"समावेशी मॉडल" जीवन के विभिन्न पहलुओं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, रोजगार और सामाजिक सेवाओं पर लागू किया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति दिवसः

21 सितम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति दिवस मनाया जाता है। यह व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्रों के बीच शान्ति और सद्‌भाव को बढ़ावा देने और विकसित करने का एक विश्वव्यापी उत्सव है। यह संघर्ष की बजाए संवाद और समझ के माध्यम से संघर्षों को हल करने के महत्व को उजागर करता है। जैसे– शान्ति, समाधान, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय जैसे मुद्‌दों पर शैक्षिक कार्यशालाएं, सेमीनार और पैनल चर्चाएं आयोजित की जाती हैं। सार्थक बातचीत को बढ़ावा देने के लिए अक्सर विशेषज्ञों, कार्यकर्ताओं और सामुदायिक नेताओं द्वारा इनक र्यशालाओं का नेतृत्व किया जाता है।

शान्तिप्रिय प्रकृति का संरक्षणः

यह एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। प्रकृति के साथ शान्तिपूर्ण तरीके से रहना और उसकी देखभाल करना। यह प्रकृति के संसाधनों का सतत उपयोग, प्रदूषण को कम करना, और जैव विविधता को बनाए रखना शामिल है। यह पृथ्वी और उसके जीवों के साथ एक सम्मानजनक संबंध बनाने के बारे में है, ताकि भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक साथ स्वास्थ्य और टिकाऊ ग्रह सुनिश्चित किया जा सके।

नेल्सन मंडेला अन्तर्राष्ट्रीय दिवसः

18 जुलाई को नेल्सन मंडेला के सम्मान में मनाया जाता है दुनियाभर में शान्ति के दूत के रूप में मंडेला का रंग भेद के खिलाफ लड़ाई में योगदान को कोई भूला नहीं सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवसः

21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाया जाता है जिसकी उत्पति प्राचीन भारत में हुई थी योग अभ्यासों से शारीरिक और मानसिक कल्याण के लिए, वैश्विक स्वास्थ्य, शान्ति को बढ़ावा देने के लिए।

प्रवासियों भारतीयों का योगदानः

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की सॉपट पावर में योगदान देने के अलावा प्रवासी भारतीयों का सांस्कृतिक प्रभाव भी बहुत बड़ा है। प्रवासियों को भारत की आर्थिक स्थिति व परंपरागत योगदान शान्तिपूर्ण सहयोग भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान है। हर वर्ष 9 जनवरी को प्रवासी दिवस मनाया जाता है। भारतीय मूल के निवासी दूसरे देशों में भी अपनीराजनीति दिशा को महत्व देते हैं, वे अपने सेमीनार, कार्यशालाएं, चर्चाएं शान्तिपूर्ण भारत के हित में करते हैं वे भारत को जोड़ने का काम करते हैं।

ग्लोबल विजन इंडियाः

नवीनतम प्रौद्योगिकियों को अपनाने के प्रति स्वागतपूर्ण दृष्टिकोण, तेज और प्रतिस्पर्धी मूल्य निर्धारण, गुणवत्ता सेवा, विश्ववसनियता और जागरूकता, उज्ज्वल भविष्य के लिए वैश्विक शान्ति आवश्यकः सफलता एकता में निहित है। एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य के दर्शन से प्रेरीत होकर वैश्विक शान्ति एकता और भाईचारे को बढ़ावा देने के लिए समर्पित है। इस मानव केन्द्रित दृष्टिकोण का उद्देश्य भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक शानितपूर्ण दुनिया का निर्माण करना है।

दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्रः

वैश्विक एक जुटता का हिमायती रहा है भारत, समय–समय पर चुनाव प्रणाली का निष्पक्ष रहना व शान्तिप्रिय परिणाम पर कायम रहा है सभी धर्मों का पालन व निरपेक्ष रहना निःस्वार्थ भावना से कार्य करना गरीबी रेखा से नीचे मकान, राशन, फैलोशिप, वृद्धा पेंशन, असहाय बच्चों की पेंशन और जरूरतमंद समुदायों का समर्थन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लगातार शान्ति, मानवता और वैश्विक एकजुटता का हिमायत रहा है।

भगवान बुद्ध का शन्तिप्रिय उपदेशः

इनका मानना है कि अहिंसा, करूण, मानसिक शान्ति पर केन्द्रित है। तृष्णा और इच्छाओं पर नियंत्रण, सत्य और न्याय, आत्म निर्भरता और मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन जीना चाहिए।

भारत वैश्विक शान्ति की विशेषताएंः

भारत संयुक्त राष्ट्र शान्ति स्थापना अभियानों में महत्वपूर्ण योगदानकर्ता रहा है। भारत ने 290000 से अधिक शान्ति सैनिक संयुक्त राष्ट्र के 50 से अधिक मिशनों में भेजे हैं।

भारत गुटनिरपेक्षता और कूटनीति में विश्वास रखता है। भारत एक तटस्थ मंच प्रदान करता है, जिससे सभी हितधारक शान्तिवार्ता में भाग ले सकते हैं।

भारत सार्वभौमिक मानवाधिकारों की रक्षा और युद्ध की रोकथाम के लिए प्रतिबद्ध है।

भारत सामाजिक विकास और प्यावरण की सुरक्षा के लिए भी काम करता है।

भारत की संस्कृति में विभिन्न धर्मों और परम्पराओं का समावेश है, जो शान्ति और सुद्राव को बढ़ावा देता है। महात्मा गांधी का मानना था कि अहिंसा और प्रेम से विश्व शान्ति स्थापित की जा सकती है।

भारत ग्लोबल पीस इंडेक्स (GPI) में 2014 में 116वें स्थान पर था।

2047 तक विकसित भारत को आगे बढ़ावा देना।

वशिंगटन में भारत को शान्ति पुरस्कार मिला।

मूल्य आधारित शान्ति स्थापना एक मानव परिवार ग्लोबल पीस शान्ति निर्माण के लिए मूल्य–आधारित दृष्टिकोण अपनाता है। विजन इंडिया 2047 तक विकास का एक खाका तैयार करने के लिए भारत की शीर्ष नीति थिंक टैंक नीति आयोग द्वारा शुरू की गई एक परियोजना है। विकसित भारत 2047 तक देशों को आत्म निर्भर और समृद्ध अर्थव्यवस्था में बदलने के लिए सरकार का विजन है। आर्थिक

विकास, तकनीकि उनयन, बुनियादी ढ़ांचे का विकास, सामाजिक शक्तिकरण और स्थिरता इस कार्यक्रम के मापदंड है। शून्य गरीबी शत–प्रतिशत अच्छी गुणवत्ता वाली स्कूली शिक्षा उच्च गुणवत्ता वाली, सस्ती और व्यापक स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच।
सार्थक रोजबार के साथ–साथ शत–प्रतिशत कुशल श्रमिक।
आर्थिक गतिविधियों में 70 प्रतिशत महिलाएं।
किसान हमारे देश को विश्व की खाद टोकरी बना रहे हैं।

निष्कर्षः

विकासशील भारत समावेशन, बुनियादों ढ़ांचे में निवेश। कार्यबल को बेहतर बनाना और सतत विकास भारत के विजन के लिए सरकार के कुछ लक्ष्य एवं पहल है। भारत एक महत्वपूर्ण शान्ति स्थापनाकर्ता है, जो संयुक्त राष्ट्र शान्ति मिशनों में सक्रीय रूप से भाग लेता है और वैश्विक स्तर पर शान्ति और सुरक्षा को बढ़ावा देने में अपनी भूमिका निभाता है।

भारत का विजन 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनना है जो समावेशी शान्ति और स्थिरता को बढ़ावा देता है। इंस्टीट्युट फॉर इकोनोमिक्स एंड पीस द्वारा निर्मित, ग्लोबल पीस इंडेक्स वैश्विक शान्ति दुनिया का अग्रणी माप है भारत विजन युवाओं को शसक्त बनाना भारतीय शोध पद्धति के आधार पर विजन उद्देश्यपूर्ण, भारत केन्द्रित शोध और प्रकाशनों की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए सहयोगी मंच प्रदान करता है। इसमें आर्थिक समृद्धि, सामाजिक उन्नति, पर्यावरणीय स्थिरता और प्रभावी शासन जैसे विकास के विविधि पहलू शामिल हैं। भारत विजन ग्लोबल में सार्वभौमिक मानवाधिकारों की सुरक्षा, युद्ध की रोकथाम, सुरक्षित निरशस्त्रीकरण, सामाजिक विकास, पर्यावरण की सुरक्षा और कई अन्य वैश्विक चुनौतियों का समाधान शामिल है। विभिन्न धार्मिक और निरपेक्ष संगठनों द्वारा घोशित उद्देश्य मानवाधिकारों, प्रौद्योगिक, शिक्षा, इंजीनियरिंग, चिकित्सा या कूटनीति के माध्यम से विश्व शान्ति प्राप्त करना है। भारत को विश्वबंधु के रूप में रेखा जाता है और इसे वैश्विक शान्ति स्थापना में अधिक सक्रिय रूख अपनाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथः

1. **अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति** : लेखकः डॉ. वी.एल. फड़िया एंड डॉ कुलदीप फड़िया ; प्रकाशकः साहित्य भवन
2. सी 17, साइट सी, सिकन्द्रा, औद्योगिक क्षेत्र आगरा उत्तरप्रदेश–282007
3. **समसायियिक राजनीति मुद्दे** : लेखकः रचना सुचिन्मयी ; प्रकाशकः रावत पब्लिकेशन्स जयपुर–302004 ISBN 978-1-316-0777-0 ; ISBN 97-81-316-0778-7
4. **भारत समाज में कार्यक्षेत्र** : लेखकः मनोज मिश्रा ; प्रकाशकः इशिका पब्लिशिंग हाउस ए–25 गणेश सदन, गली नं.– 4 आदर्श बस्ती जयपुर–302018 ISBN 978-81-89471-16-3
5. **समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय संबंध** : लेखकः विवेक ओझा ; प्रकाशकः राजकमल प्रकाशक प्रा.लि. 1बी, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली–110002 ISBN 978-93-89598-51-3

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 204-210
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी की दलित हिन्दी कविताएँ: प्रतिरोध का आख्यान

चंद्रकांत यादव, शोधार्थी,
डॉ. दीनानाथ मौर्य, शोध निर्देशक,
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताएँ विविध सांस्कृतिक आयामों के साथ प्रस्तुत है और उनमें एक प्रतिरोध का रूप दिखाई देता है। भारतीय सामाजिक कुरीतियों में जाति के विद्रूपता और विषमता को देखा जा सकता है। जातिगत विद्रूपता ,विषमता पर कविताएँ और आलोचनाएँ तथा टीका- टिप्पणी का सूत्रपात दलित कवियों ने सर्वाधिक किया है। दलित कवियों में प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में ओम प्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नेमिशराय, मलखान सिंह, कँवल भारती आदि प्रतिष्ठित हैं। अब तक दलित और पिछड़े वर्गों ने गुलामों की भांति सदियों गुजार दिए जबकि उन्होंने भी पुरुषों की योनि में जन्म लिया था। भारत देश की आजादी के बाद उन्होंने भी स्वतंत्र और आजाद रहने का स्वप्न देखा, परन्तु उनकी स्थिति आजादी के पचहत्तर वर्षों बाद भी वैसी ही रही जैसी आजादी के पहले थी, जिसका उल्लेख दलित कवि मलखान सिंह जी अपनी कविता में करते हैं -

“तभी तो आज
आजादी की आधी सदी बाद
हमारे पेट खाली हैं
हमारे हाथ खाली हैं
हम बिकने जाते है चौराहों पर
नहीं बिक पते उस रोज
चूल्हा भी नही जल पाता है”1

मलखान सिंह जी कहते हैं कि इस नई सदी में आज़ादी का आर्थिक और सामाजिक लाभ केवल सवर्ण और सत्तासीन आर्थिक रुप से मजबूत लोगों को मिला। पहली सफ़ में बैठे अभिजात्य लोगों ने उस अवसर को अच्छी तरह भुनाया। आज़ादी के बाद जाति का भयानक और भयावह चित्रण यह है कि दलितों को आज भी न रोजगार नसीब है, न भूख मिटाने को अन्न। इक्कीसवीं

सदी में भी भूख, बेरोजगारी और आर्थिक रुप से पिछड़े होने का सबसे प्रमुख कारण उनकी जाति है। इसी बात का विरोध उनकी कविता में लक्षित होता है।

कविताएँ स्वानुभूत हो तो कविताएँ चरितार्थ होती है। समसामयिक सदी में कविताएँ अपना सर उठाकर चलती है। उसमें कोमलता - कठोरता है तो आशा - निराशा भी है, उपेक्षा है तो विद्रोह भी है। समकालीन दलित कविताओं ने अपने हक अधिकारों की माँग करना सीख लिया है। पिछली सदी की अपेक्षाकृत नयी सदी की कविताएँ निडर होती गयी हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में साहस के साथ जाति, आरक्षण, और व्यंग्य किया है। उन्हें पता है कि सम्मान के पाना है तो सामने आना होगा, बोलना होगा और रुढियों का विरोध भी करना पड़ेगा। इसकी बानगी दलित कवियों के कविताओं में देखने को मिलती हैं। इसे प्रतिष्ठित दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविताओं से समझा जा सकता है। कविता का शीर्षक है- 'अब और नहीं'। वे लिखते हैं कि

"बहुत दिन जी चुके हताशा और नैराश्य के बीच
कलाबाजियों और चतुराई भरे शब्दों का
खेल हो चुका
अब और नहीं
तय करना होगा
कहाँ खड़े हो तुम
साये या धप में!"2

कविता 'अब और नहीं', सदियों से सितम और यातनाएँ ढो रही अनुसूचित जाति ,जनजातियों के हमदर्दी और सहानुभूति की कविता है। तथाकथित कुछ लोगों ने सामाजिक अहाते में स्वयं को सबसे ऊपर स्थापित किया तथा निम्न और दलित कौम पर जुल्म करते रहें ,उन्हें परेशान करते रहें। उसकी पीड़ा और टीस वाल्मीकि जी की कविता में व्यक्त है। वाल्मीकि जी अपनी इस रचनात्मक संघर्ष के माध्यम से राजा- प्रजा, सवर्ण-दलित, ऊँच-नीच और छोटा-बड़ा जैसे वर्ग - संघर्ष के परम्परा को समाप्त करना चाहते हैं जिसे अब तक उनके पुरखे झेलते आये हैं। यह कविता उनके (सवर्णजन) कलाबाजी और चतुराई के खेल को बंद करने का उद्घोष है और साथ ही उनके मनोबल को तोड़ने का हथियार भी है। वे ऊंची और अगड़े जातियों के ढोंग और स्वांग का पर्दाफाश करते हैं और चलती चली आ रही इस परंपरा को खत्म करने की चुनौती भी देते हैं। कुछ इसी प्रकार मलखान सिंह भी अपनी कविता में विरोध का वितान रचते है। वे अब नये संविधान के झंडे तले जी रहे है। उन्हें इस बात की खबर पूरी तरह से है कि अब बेगारी का समय खत्म हो चुका है। अब कोई जोर- जबरदस्ती नहीं चलेगी। अब वे किसी के नौकर बनकर नहीं रहेंगे। वे लिखते हैं कि-

"मत भूलो की अब
मेहनतकश कंधे
तुम्हारा बोझ ढोने को

तैयार नहीं हैं
बिल्कुल तैयार नहीं हैं''3

वाल्मीकि जी की कविता 'श्रेष्ठ' जिसमें जाति के सामाजिक ताने-बाने बुने हुए है; में उनकी इसी कविता का प्रतिउत्तर भी हैं। उन्होंने अपनी इसी कविता में वर्ण- व्यवस्था के पोषक और जाति को मानने वालों तथा खुद को श्रेष्ठ जाति का बताने वालों पर कटु उपहास भी किया है। उन्होंने जाति के पीछे होने वाले शोषण और दुर्व्यवहार को नज़दीक से देखा है और यह उनका स्वयं का अनुभव भी है। अतः उन्होंने जाति पर सवाल खड़ा कर दिया है। उन्होंने बनाई गई ऐसी जाति का उपहास भी किया है और साथ में तीखी आलोचना भी। कवितांश कुछ इस प्रकार है -

"हिकारत से पूछा उसने
मेरा नाम
मेरा जाति
मैं गड़ गया जमीन में
हीनता बोध से
एक रोज मैंने भी/ जुटायी हिम्मत
और पूछ लिया उससे/ वही सवाल
देखा उसने मेरी ओर
बोला, 'मैं जन्मा हूँ मैं ब्रह्मा के मुख से
इसलिए मैं श्रेष्ठ हूँ
ताज्जुब है!
मनुष्य का जन्म तो होता है
सिर्फ माँ के गर्भ से
फिर आप कैसे पैदा हो गये
ब्रह्मा के मुख से?''4

वाल्मीकि जी आँखों से देखे हुए पर विश्वास करने वाले कवि हैं। उनके लिए ब्रह्मा के मुख से पैदा होना ताज्जुब करने वाली है। उनके अब तक जाने और भोगे गए दुनिया में यह तथ्य आश्चर्यजनक है। वह ऐसी परंपरा,संस्कृति और सभ्यता को भी खारिज करते है जिस सभ्यता और संस्कृति में मनुष्य योनि के सिवाय ब्रह्मा के मुख से, भुजाओं से, जांघों से और पैर से पैदा होते हैं। जबकि दुनिया के सारे मनुष्य योनि से पैदा होते हैं। वहीं एक कविता और है 'विरासत', जो संरचना में तीखी, तल्ख और कड़वा है जिसे तथाकथित अपने को श्रेष्ठ मानने वाले के लिए यह कविता अपच है -

"सभी पर है
स्पर्श हमारा
लगे है जो घरों में आपके

फिर भी बना दिया आपने
हमें अछूत और अन्त्यज
भंगी- डोम-चमार
माँग - पासी और महार
छूना भी उन्हें पाप
हिस्से में जिनके सिर्फ
उपेक्षा और उत्पीडन
'जाति' कही जाए जिनकी नीच
आप बता सकते हैं
यह किस सभ्यता और संस्कृति की देन है"5

इस कविता के जरिए वे भारतीय सनातन संस्कृति के आचरण और मानसिकता पर संदेह करते हैं। भारतीय सनातन संस्कृति के पुरोधाओं के सारे कार्यों में दलित समाज और मजदूरों का योगदान है। उनके घर में लेपन से लेकर महल बनाने तक, झाड़ू - पोछा से लेकर खेत-खलिहानों में फसल कटने तक, प्रत्येक जगह इन्हीं दलित मजदूरों का योगदान है। फिर भी उन्होंने उन्हें अछूत बना दिया और नीच से संबोधित किया। कवि इस बात को प्रश्नांकित करते हुए रेखांकित करते हैं कि वे कौन लोग हैं और किस सभ्यता से ताल्लुक रखने वाले हैं जो अपना पूरा काम कराने और स्वार्थ साधने के बाद उन लोगों को अछूत और अंत्यज बना देते हैं। उन्हें भंगी, डोम, चमार, पासी और महार जैसी जाति के साथ मुफ़्त में उपेक्षा और उत्पीड़न को जीवन भर के लिए सौंप दिया जाता है। इस प्रकार 'जाति' है कि जाती नहीं' कहना आज भी चरितार्थ हो रहा है। राम मनोहर लोहिया द्वारा कही गई बात इक्कीसवीं सदी में भी चरितार्थ हो रही है। मलखान सिंह जी अपनी कविता में समाज में जाति के सरोकारों का उत्तम उदाहरण पेश करते है। दलित और पिछड़ी जातियों का सामाजिक सरोकार कैसा है, जाति किस कदर उन्हें अपमानित करती है, शोषित करती है, उसको प्रस्तुत करते हैं। यह जाति उन्हें न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक स्तर पर भी प्रताड़ित और शोषित करती है। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, करते-कराते हर क्षण जाति उन्हें छलनी करती रहती है जिसे मलखान सिंह ने जाति को 'फटी बंडी' के रूपक के रूप में प्रस्तुत किया हैं। यह कविता जाति की विद्रूपता, क्रूरता और अपमान का आख्यान है। जाति केवल घर-गाँव तक ही सीमित नहीं है,जाति का प्रसार व्यापक है। कल-कारखानों, कंपनियों, बाजार, विश्वविद्यालयों, खेत-खलिहानों और बड़ी - बड़ी निजी और सार्वजनिक संस्थाओं में पूरी तरह व्यवहारित है। जाति जन्म से लेकर मृत्यु तक पीछा करती है और निरंतर अपमानित करती रहती है, वैसे ही जैसे पैदा होते मृत्यु पीछे लग जाती है। जिसका जिक्र फट बण्डी कविता में किया गया है। कविता कुछ इस प्रकार है-

"कमबख्त जाति
सधे बाज सी निरंतर
मेरा पीछा करती है.

मैं गाँव में हूँ
जाति छप्पर में आ टंगी है
काले झंडे- सी।
मैं दंगड़े में हूँ
जाति कन्धों में आ फँसी है
फटी बंडी सी
मैं खेत खलिहान
बाज़ार में हूँ
बंडी मेरे कन्धों में है।
मैं कल कारखानों
सभागार में हूँ
फैंटी बंडी' कविता
बंडी मेरे कन्धों में है
मैं दाएं मुड़ता हूँ
बंडी दाए मुड़ती है
मैं बाएँ मुड़ता हूँ
बंडी बाएँ मुडती है
यहाँ तक की खाते-पीते
उठते-बैठते और
चिता में पसरने तक भी
यह सनातनी बंडी
मेरा पीछा नहीं छोडती"6

दलितों को लेकर भारतीय समाज में उच्च वर्गीय तथा सवर्णों ने अपने आपको अभिशापित महसूस किया है। उनको सदा अपने से कमतर दिखाना, नीचा महसूस कराना और अपमानित करके अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं। जिसका असर दलित तथा निम्न जातियों पर मानसिक और दैहिक दोनों पर पड़ा है। दलितों ने इन्हें अपने विकास का बाधक समझा है बदले में दलित कवियों की कविताओं में प्रतिरोध की लपट भभक रही है।

मलखान सिंह दलितों की संवेदना से संबंध रखने वाले कवि हैं और बदले में प्रतिरोध और प्रतिशोध की भावना को कविता की वाणी में जाहिर करते हैं। उनकी कविता सैकड़ों वर्षों से हो रहे दलितों पर अत्याचार के खिलाफ है। वह खिलाफ है अत्याचार सहने वाले और अत्याचार करने वाले पर। इसीलिए कहते हैं कि मेरे खुद के थूथन अथवा चेहरे पर अनगिनत चोट के दाग है अर्थात वे अब तक अपमानित, शोषित, प्रताड़ित होते रहे हैं। जिसका प्रमाण है कि वे अब तक अपमानित होते रहे हैं और अब तक उनका चेहरा शर्म से झुका हुआ है,परंतु अब वे अपने खिलाफ ऐसा नहीं होने देना चाहते। जिन्हें अपने आने वाली पीढ़ियों को ऐसा जुल्म कभी

सहना न पड़े। इस बात का वे अपनी कविता में मुखर विरोध करते हैं। कविता का कुछ अंश इस प्रकार है-

"मेरी खुद की थूथन पर
अनगिनत चोटों के निशान हैं
जिन्हें अपने बेटे के चेहरे पर
नहीं देखना चाहता"7

कवि 21वीं सदी में वर्ण- व्यवस्था व रूढ़िवादी परंपरा को खारिज कर देते हैं। वर्ण व्यवस्था का निर्वहन करने वाले गुरु द्रोणाचार्य, गुरु वशिष्ठ को चुनौतियां देते हैं। वे उनकी परंपराओं, उनकी आस्थाओं की अवहेलना करते हुए मुखर विरोध करते हैं और उन्हें चेतावनी भी दे जाते हैं कि अब ब्राह्मणों तथा पुरोहितों द्वारा जो परंपरा बनाई गई थी अब नहीं चलने वाली। यह विज्ञान और शिक्षा का दौर है। इसमें दलित, पिछड़े, आदि तुम्हारे जाल में नहीं फँसने वाले हैं। यह मेहनतकश कंधे तुम्हारी खेती नहीं करेंगे, बोझ नहीं उठाएँगे, मैला नहीं ढोएँगे और छोटे-बड़े कोई भी काम नहीं करेंगे, हरगिज़ नहीं करेंगे। जमाना बदल चुका है, अब तुम्हारी चालाकी नहीं चलेगी और नकली खेल भी बंद होगा। सदियों से लोगों को छलते रहे पर अब नहीं। इस प्रतिरोध की अभिव्यक्ति का एक उदाहरण -

"तो सुनो वशिष्ठ/ द्रोणाचार्य तुम भी सुनो,
हम तुमसे घृणा करते हैं/तुम्हारे अतीत/
तुम्हारी आस्थाओं पर थूकते हैं/
मत भूलो कि अब /मेहनतकश कंधे/
तुम्हारा बोझ ढोने को तैयार नहीं है/
बिल्कुल तैयार नहीं हैं"8

दलित साहित्य में 'ओम प्रकाश वाल्मीकि' एक चर्चित नाम है जिन्होंने दलित साहित्य में अप्रतिम रचनाएँ किए हैं। दलित चेतना से युक्त उनके खिलाफ रचे गए षड्यंत्र को भापने वाले कवि वाल्मीकि जी अपनी कविता 'जाति' में दलित और दलितों की पीड़ा और उनकी समस्याओं का सबसे बड़ा कारण जाति को मानते हैं। जाति का प्रभाव दिखाकर उनका शोषण किया गया है। उन्हें प्रत्येक चीजों से वंचित किया गया है। जाति को उन्होंने औजार और उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया है। जाति के पीछे सारे तर्क निराधार है। इस बात का कवि प्रतिरोध करता है। वे जाति को अस्वीकार कर उसका विरोध करते है-

"न जाने किस.....ने/ तुम्हारे गले में डाल दिया है जाति का फंदा/
जो न तुम्हें जीने देता है/ ना हमें/ लुटेरे लूटकर जा चुके हैं/
कुछ लूटने की तैयारी में है/ मैं पूछता हूँ/
क्या उनकी 'जाति' तुमसे ऊंची है?"9

इसके अतरिक्त अपने हिस्से की रोटी, अब और नहीं, श्रेष्ठ, शब्द आदि दलित प्रतिरोध की कविताएँ हैं।

जाति इस सदी में प्रत्येक जगह दिखाई देता है जिसका प्रतिरोध इक्कीसवीं सदी की दलित कविताओं में सर्वाधिक दिखाई देता है। जाति मात्र जाति ही नही है; वह एक मानसिक रोग भी है जिसे ओढ़कर कोई दम्भ से पागल हो जाता है तो किसी के लिए आद्यंत नासूर बन जाता है। यह कर्क रोग के दर्द की भांति हमेशा चुभता रहता है। इसी रोग के निदान हेतु कविता अपने प्रतिरोधी विशेषता द्वारा लाइलाज बीमारी से निजात पाना चाहता है जिसकी अभिव्यक्ति अपनी कविताओं के सहारे करना चाहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. सिंह, मलखान, ज्वालामुखी के मुहाने, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण:2019, पृष्ठ - 17
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,दूसरा संस्करण:2018,
3. सिंह मलखान, सुनो ब्राह्मण, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण:2019,पृष्ठ - 102
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण:2018,पृष्ठ - 69
5. वही,पृष्ठ - 92,93
6. सिंह, मलखान, सुनो ब्राह्मण, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण:2018, पृष्ठ - 75,76
7. वही,पृष्ठ - 72
8. वही, पृष्ठ - 102
9. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण:2018,पृष्ठ - 21

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 211-217
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

THE ROLE OF HUMAN FACTORS IN CYBER SECURITY VULNERABILITY

Dr. Ved pal, Assistant Prof.,
KIIT College of Education, Gurugram

Abstract
In today's digital landscape, cybersecurity vulnerabilities extend beyond technical flaws to include significant human factors. This chapter explores the pivotal role human behavior, cognition, and organizational dynamics play in creating and mitigating cybersecurity risks. While traditional approaches have focused on technical defenses, increasing incidents of social engineering, insider threats, and negligent behavior highlight the urgent need to address human-centric vulnerabilities. The chapter delves into psychological principles, cognitive biases, cultural influences, and behavioral economics to examine how individuals and organizations inadvertently expose themselves to cyber threats. It also presents strategies for reducing human-related risks through security awareness training, organizational policy enforcement, human-centric system design, and interdisciplinary collaboration. By integrating these insights into cybersecurity planning and risk management, organizations can build more resilient defense mechanisms that account for both technological and human dimensions.
Keywords: Cybersecurity vulnerability, human factors, cyber threats, social engineering, insider threats, organizational culture, human behavior, cognitive bias, cybersecurity awareness, risk management, behavioral economics, security training, human-centric design.

Introduction: In an increasingly digital world, the threat of cyber crime looms larger than ever. This chapter explores the various aspects of cyber crime vulnerability, delving into its causes, types, impact, and preventive measures. Understanding these vulnerabilities is crucial for individuals, organizations, and governments to safeguard against cyber threats and enhance cyber security measures.

Cyber security vulnerabilities are not solely a result of technological shortcomings; human factors also play a significant role in determining an organization's susceptibility to cyber threats. This chapter aims to explore the various human elements that contribute to cyber security vulnerabilities and provide insights into mitigating these risks. Objectives: To examine the impact of human behavior, cognition, and decision-making on cyber security vulnerability. To identify organizational and individual factors that influence cyber security practices. To discuss the importance of addressing human-related risks in cyber security strategies. Content Outline: Introduction to Human Factors in Cyber security: Defining cyber security vulnerability and its relationship with human behavior. Highlighting the importance of understanding human factors in cyber security risk management. Human Behavior and Cyber security Vulnerability: Discussing common human behaviors that can lead to cyber security incidents, such as negligence, ignorance, and social engineering. Examining the role of cognitive biases in decision-making and their impact on cyber security posture.

Organizational Factors Affecting Cyber security Practices: Analyzing the influence of organizational culture, policies, and training programs on cyber security awareness and compliance. Discussing the importance of leadership and organizational commitment to cyber security. Individual Factors in Cyber security Practices: Exploring the role of individual characteristics, attitudes, and perceptions in shaping cyber security behavior. Discussing the challenges of changing individual behaviors and promoting cyber security awareness. Addressing Human-Related Cyber security Risks: Proposing strategies and best practices for mitigating human-related cyber security risks, including training and awareness programs, policy enforcement, and technological solutions. Discussing the importance of integrating human factors considerations into cyber security planning and incident response. Conclusion: Understanding the role of human factors in cyber security vulnerability is essential for developing effective risk management strategies. This chapter has explored the various ways in which human behavior, cognition, and organizational factors contribute to cyber security risks. By addressing these human-related vulnerabilities, organizations can enhance their cyber security resilience and better protect their assets from cyber threats. Target Audience: Cyber security professionals IT managers and executives Researchers and academics in cyber security Policy makers and regulators Keywords: Cyber security vulnerability, human factors, human behavior, decision-making, organizational culture, cyber security practices, risk management.

Definitions: Cyber crime vulnerability refers to the weaknesses or gaps in digital systems, networks, or devices that can be exploited by cyber criminals to gain unauthorized access, cause damage, or steal sensitive information. These vulnerabilities can arise from various factors, including technical flaws, human errors, and inadequate security practices.

Common Types of Cyber Crime Vulnerabilities

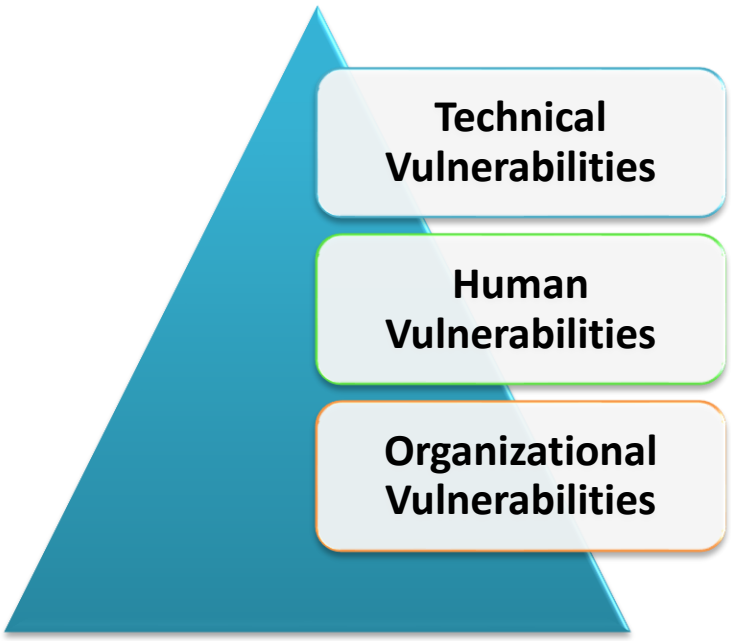

Technical Vulnerabilities

- Software Bugs and Flaws: Errors in software code that can be exploited by attackers to perform malicious actions.
- Unpatched Systems: Failure to apply security patches and updates, leaving systems open to known exploits.

- Weak Encryption: Use of outdated or weak encryption methods that can be easily broken.

Human Vulnerabilities

- Social Engineering: Manipulating individuals into divulging confidential information through deception.
- Phishing Attacks: Fraudulent attempts to obtain sensitive information by pretending to be a trustworthy entity.
- Weak Passwords: Use of easily guessable passwords that can be quickly cracked by attackers.

Organizational Vulnerabilities

- Insufficient Security Policies: Lack of comprehensive security policies and procedures.
- Inadequate Employee Training: Employees not trained in cyber security best practices.
- Third-Party Risks: Vulnerabilities introduced through partnerships with third-party vendors who may have weaker security measures.

Major Categories of Cyber Crime Exploiting Vulnerabilities

- Malware Attacks: Viruses and Worms: Malicious software that spreads and damages systems.
- Ransom ware: Encrypts victim's data and demands payment for the decryption key.
- Spyware: Covertly gathers information from a computer without consent.

Network Attacks

- Denial-of-Service (DoS) Attacks: Overwhelm a network to make it unavailable.
- Man-in-the-Middle (MitM) Attacks**:** Intercept and alter communication between two parties.
- SQL Injection**:** Exploit vulnerabilities in web applications to gain access to the database.

Identity Theft and Fraud

- Credential Theft: Stealing usernames and passwords to gain unauthorized access.
- Financial Fraud: Unauthorized use of financial information to commit fraud.
- Data Breaches: Unauthorized access and theft of sensitive data from databases.

Impact of Cyber Crime Vulnerabilities

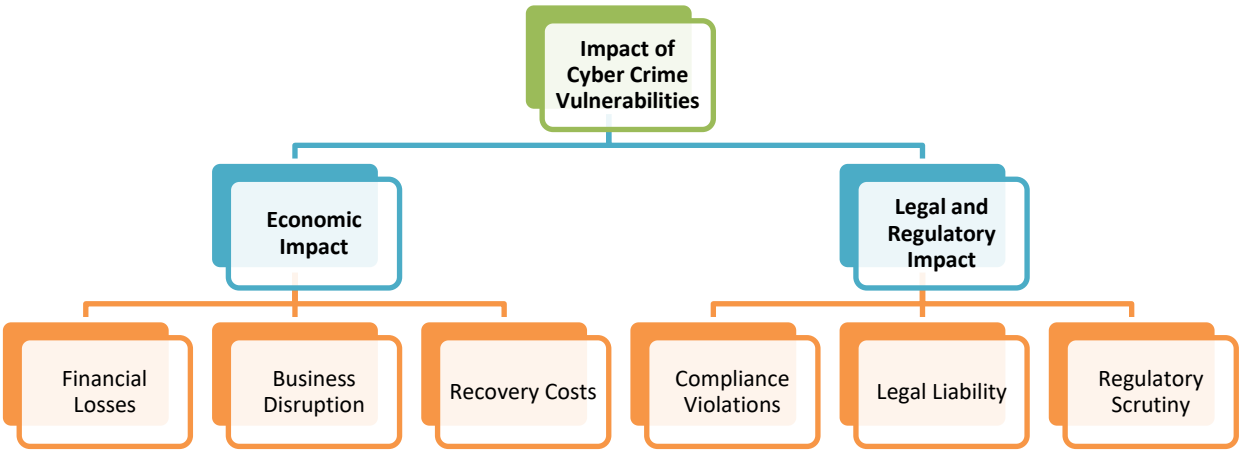

Economic Impact

- Financial Losses: Direct costs from theft, fraud, and ransom ware payments.

- Business Disruption: Downtime and operational disruptions leading to loss of revenue.
- Recovery Costs: Expenses related to data recovery, system repairs, and legal fees.

Legal and Regulatory Impact

- Compliance Violations: Failure to comply with data protection regulations leading to fines.
- Legal Liability: Potential lawsuits from affected customers and stakeholders.
- Regulatory Scrutiny: Increased oversight and audits by regulatory bodies.

Strategies to Mitigate Cyber Crime Vulnerabilities

Technical Measures

- Regular Patching and Updates: Keeping software and systems up-to-date with the latest security patches.
- Strong Encryption Practices: Implementing robust encryption methods for data protection.
- Network Security: Utilizing firewalls, intrusion detection systems, and secure network configurations.

Human Measures

- Security Awareness Training: Educating employees on cyber security best practices and recognizing threats.
- Password Management: Enforcing strong password policies and the use of multi-factor authentication.
- Phishing Simulations: Conducting regular phishing simulations to test and improve employee responses.

Organizational Measures

- Comprehensive Security Policies: Developing and enforcing detailed cyber security policies and procedures.
- Regular Security Audits: Conducting frequent security assessments and vulnerability scans.
- Incident Response Plans: Establishing and regularly updating incident response plans to address potential breaches.

Introduction to Human Factors in Cyber security:

Defining cyber security vulnerability and its relationship with human behavior is crucial as it sets the stage for understanding the multifaceted nature of cyber security risks. Cyber security vulnerability refers to weaknesses in a system that can be exploited by attackers to compromise its integrity, confidentiality, or availability. Human behavior, such as clicking on suspicious links or sharing sensitive information, often inadvertently exposes these vulnerabilities. Highlighting the importance of understanding human factors in cyber security risk management emphasizes the need to address not only technical aspects but also the human elements that contribute to vulnerabilities.

Human Behavior and Cyber security Vulnerability:

- Discussing common human behaviors that can lead to cyber security incidents, such as negligence, ignorance, and social engineering, provides concrete examples of how individuals inadvertently contribute to security breaches. Negligence, such as using weak passwords or failing to update software, leaves systems vulnerable to exploitation. Ignorance, where individuals lack awareness of cyber security best practices or the significance of their actions, can also lead to risky behavior. Social engineering exploits human psychology to manipulate individuals into divulging sensitive information or performing actions that compromise security.

- Examining the role of cognitive biases in decision-making and their impact on cyber security posture sheds light on how human cognition can contribute to vulnerabilities. Cognitive biases, such as overconfidence or confirmation bias, can lead individuals to make decisions that prioritize convenience over security or overlook warning signs of potential threats.

Organizational Factors Affecting Cyber security Practices:

- Analyzing the influence of organizational culture, policies, and training programs on cyber security awareness and compliance helps identify systemic issues that may contribute to vulnerabilities. A culture that prioritizes productivity over security, for example, may discourage employees from reporting security incidents or adhering to security protocols. Effective leadership and organizational commitment to cyber security are crucial for fostering a culture of security where employees are empowered to prioritize security in their daily activities.

Individual Factors in Cyber security Practices:

- Exploring the role of individual characteristics, attitudes, and perceptions in shaping cyber security behavior recognizes that each person's approach to security may differ based on their personality, experiences, and beliefs. Factors such as risk tolerance, trust in technology, and perceived susceptibility to cyber threats influence how individuals engage with cyber security practices. Addressing the challenges of changing individual behaviors and promoting cyber security awareness requires tailored approaches that take into account these diverse factors.

Human-Related Cyber security Risks:

- Proposing strategies and best practices for mitigating human-related cyber security risks emphasizes the importance of a holistic approach that combines education, policy enforcement, and technological solutions. Training and awareness programs can help employees recognize and respond to security threats effectively, while policy enforcement ensures that security protocols are followed consistently. Technological solutions, such as multi-factor authentication and behavioral analytics, can augment human capabilities and provide additional layers of defense.
- Discussing the importance of integrating human factors considerations into cyber security planning and incident response highlights the need for a proactive approach to security that anticipates and addresses human vulnerabilities. By embedding human-centric design principles into security processes and incident response procedures, organizations can better adapt to evolving threats and minimize the impact of security incidents.

Understanding the Psychology of Cyber security: In this section, we explore how psychological factors such as trust, fear, and motivation impact cyber security. For instance, trust in unfamiliar sources or websites can lead individuals to lower their guard and fall victim to scams or malware. Fear of consequences, such as punishment for violating security policies, can motivate employees to comply with cyber security measures. Understanding these psychological aspects helps in designing more effective security awareness programs and policies.

The Role of Insider Threats: Insider threats, where employees or contractors intentionally or unintentionally pose risks to an organization's cyber security, are a significant concern. Factors like job dissatisfaction, financial stress, or lack of awareness about security protocols can drive insiders to compromise security. By addressing these factors through comprehensive training, monitoring, and access control measures, organizations can mitigate insider threats effectively.

Cultural Considerations in Cyber security: Cultural differences can influence perceptions of cyber security and attitudes towards security practices. For example, in some cultures, hierarchical structures may discourage questioning authority, leading to less reporting of security incidents. Organizations operating in diverse cultural contexts need to tailor their cyber security strategies and training programs accordingly to ensure they resonate with all employees.

Human-Centric Design in Cyber security Solutions: Human-centric design focuses on creating cyber security solutions that prioritize user experience and usability. This approach aims to make security measures intuitive and easy to follow, reducing the likelihood of human error. For example, multifactor authentication systems designed with user-friendly interfaces are more likely to be adopted and used correctly by employees.

Behavioral Economics and Cyber security: Behavioral economics principles can be applied to influence cyber security behaviors. For instance, offering rewards or recognition for employees who consistently follow security protocols can incentivize desired behaviors. Understanding how individuals respond to incentives and nudges can inform the design of effective cyber security training and reinforcement strategies.

Case Studies and Examples: Real-world case studies and examples provide concrete illustrations of how human factors contribute to cyber security vulnerabilities and how organizations have successfully addressed these challenges. These examples can include data breaches caused by human error, successful phishing attacks, or instances where improved training and policies have reduced security incidents.

Measuring and Assessing Human-Related Cyber Risks: Various methodologies and frameworks exist for assessing human-related cyber risks, such as maturity models that evaluate an organization's security culture and behavioral analytics that monitor employee actions for suspicious behavior. These tools help organizations identify weaknesses and prioritize interventions to improve their cyber security posture.

Ethical Considerations in Cyber security Training: When designing cyber security training programs, it's important to consider ethical implications such as user privacy and the potential for biases in training content. For example, training materials should avoid stigmatizing certain groups or perpetuating stereotypes. Additionally, organizations must ensure that training methods comply with relevant regulations and respect employee autonomy.

The Future of Human-Centric Cyber security: Looking ahead, advancements in technology, such as artificial intelligence and machine learning, offer opportunities to further integrate human factors considerations into cyber security strategies. For example, AI-driven behavioral analytics can identify anomalous patterns in user behavior and alert administrators to potential threats in real-time. Similarly, gamified training platforms can engage employees and make cyber security education more interactive and effective.

Engagement and Collaboration: Interdisciplinary collaboration between cyber security experts, psychologists, educators, and policymakers is crucial for addressing human-related cyber security risks comprehensively. By sharing knowledge and best practices across disciplines, stakeholders can develop more holistic approaches to cyber security that account for both technical and human factors.

Conclusion

Cyber crime vulnerability is a multifaceted issue that requires a holistic approach to address. By understanding the various types of vulnerabilities and their potential impact, individuals and organizations can better protect themselves against cyber threats. Implementing robust technical, human, and organizational measures is essential to mitigate these risks and enhance overall cyber security resilience. Reiterating the importance of understanding human factors in cyber security vulnerability reinforces the key takeaway of

the chapter. By acknowledging and addressing the human elements that contribute to cyber security risks, organizations can enhance their resilience and better protect their assets from cyber threats. The conclusion summarizes the main points covered in the chapter and emphasizes the importance of integrating human factors considerations into cyber security strategies for effective risk management.

References:

1. Anderson, R. J. (2020). *Security engineering: A guide to building dependable distributed systems* (3rd ed.). Wiley.
2. Greitzer, F. L., & Frincke, D. A. (2010). Combining traditional cyber security audit data with psychosocial data: Towards predictive modeling for insider threat mitigation. *Insider Threats in Cyber Security*, 85–113. https://doi.org/10.1007/978-1-4419-7133-3_5
3. Hadnagy, C. (2018). *Social engineering: The science of human hacking* (2nd ed.). Wiley.
4. National Institute of Standards and Technology. (2017). *Framework for improving critical infrastructure cybersecurity* (Version 1.1). U.S. Department of Commerce. https://doi.org/10.6028/NIST.CSWP.04162018
5. Parsons, K., McCormac, A., Pattinson, M., Butavicius, M., & Jerram, C. (2014). Determining employee awareness using the Human Aspects of Information Security Questionnaire (HAIS-Q). *Computers & Security*, 42, 165–176. https://doi.org/10.1016/j.cose.2013.12.003
6. Schneier, B. (2015). *Data and Goliath: The hidden battles to collect your data and control your world*. W. W. Norton & Company.
7. Sasse, M. A., Brostoff, S., & Weirich, D. (2001). Transforming the 'weakest link'—a human/computer interaction approach to usable and effective security. *BT Technology Journal, 19*(3), 122–131. https://doi.org/10.1023/A:1011902718709
8. Verizon. (2023). *Data breach investigations report*. https://www.verizon.com/business/resources/reports/dbir/
9. Whitman, M. E., & Mattord, H. J. (2022). *Principles of information security* (7th ed.). Cengage Learning.
10. Winkler, I., & Gomes, A. (2022). *Advanced persistent security: A cyberwarfare approach to implementing adaptive enterprise protection, detection, and reaction strategies*. Syngress

kaliavedpal@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 218-222
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिला कलाकारों की चुनौतियां और संगीत में उनकी उपलब्धियां

डॉ० रचना , सहायक प्रवक्ता संगीत गायन विभाग,
आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी (हरियाणा) 127021

सार :–

संगीत द्वारा मनुष्य हृदय के सूक्ष्म भावों को भी सुगमता से व्यक्त कर सकता है , व स्त्री कों भावो की प्रतिमुर्ति ही कहा जाता है । भावों की प्रतिमुर्ति महिलोओं ने जब समाज की बेड़ियो व बंदिषो को तोड़ते हुए आधुनिक संगीत में प्रवेष किया तो , संगीत कला को और भी मनमोहक व रंजक तरिके से अभिव्यक्त किया । संगीत कला पर पुरूशो का वर्चस्व आदि काल से ही रहा , किन्तु महिलाओं ने समय–समय पर पुरूशों को पुरा सहियोग प्रदान किया । वैदिक काल से लेकर बोद्ध–जैन साहित्यों में भी महिला संगीतज्ञों की संगीत में प्रमुख भूमिकाएं प्राप्त होती है । मुगल काल में संगीत कला के क्षेत्र में मीरा बाई के संघर्श से सब परिचित है , आपने ही महिला संगीतकरों को घर की चार दिवारी सें समाज के मध्य लाने में जो संघर्श किया वह महिला कलाकारों को आगे बढ़ने की प्रेरणा दे गया ।संगीत कला पर पुरूशों का ही वर्चस्व प्रारम्भ से ही रहा , महिलाओं ने भी पुरूशों के कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रत्येक सामाजिक क्षेत्र की तरह संगीत कला में भी अपना सहियोग दिया व संगीत कला की विविद्य विधाओं को अपने भावपूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्त कर समृद्ध बनाया । संगीत कला की प्रत्येक विधा में महिला कलाकारों ने उतम प्रदर्षन किया व अनेक पुरस्कर भी अर्जित किए । वास्तव में कहा जाए तो संगीत की मधुर स्वर लहरियों को माधुर्य व भावंनात्मक्ता महिला कालकारों द्वारा ही प्राप्त हुई है, व संगीत कला को समृद्धि प्रदान करने में महिला कलाकारो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । जिस में आधुनिक समय में प्रचलित ख्याल गायन षैली हो या पुरूश प्रधान ध्रुपद गायन षैली जो महिलाओं की आवाज के लिए उचित नहीं मानी जाती थी । किन्तु महिला कलाकारों ने ध्रुवपद गायन षैली को भी अपनी आवाज में समाज के समक्ष प्रस्तुत किया व सराहना प्राप्त की । ठुमरी, भजन लोकगीतों में तो महिलाओं की भूमिका से सब अवगत ही है । इन गायन शैलियों को प्रसिद्धि व समृद्धि दिलाने में महिलाओं ने मुख्य योगदान दिया है । आधुनिक काल में संगीत की विभिन्न विधाओं ख्याल, ध्रुवपद, ठुमरी, भजन, लोकगीत आदि को समृद्धि प्रदान करने में महिला कलाकारों ने प्रमुख भूमिका निभाई ।

मुख्य शब्द :– संगीत कला , रंजक, सामाजिक उत्थान, संघर्श, माधुर्य, महिला कलाकार ।

संगीत कला :–

संगीत शब्द की व्यत्पत्ति 'सम' उपसर्ग में 'गै' से 'कत' प्रत्यय के योग से हुई है। जिसका अर्थ है– मधुर ध्वनियों या स्वरों का कुछ विशिष्ट लय में होने वाला प्रस्फुटन ।[1] इसके अतिरिक्त संगीत षब्द की व्युत्पति 'गीत' धातु मे 'सम' उपसर्ग लगाकर हुई , ऐसा भी माना जाता है । 'सम' यानी 'सहित' या 'अच्छी' तरह 'गीत' का अर्थ है 'गायन' अर्थात अच्छी प्रकार का गान संगीत है ।

मानक हिन्दी कोश में भी संगीत शब्द की उत्पति सं+सम, गै+गान+क्त धातुओं के संयोग द्वारा स्वीकर की गई है । संगीत के विशय में विद्वानों का कथन है , संगीत वह आलौकिक ध्वनि है जो सुनने मात्र से मनुष्य हृदय को रंजकता से भर कर आंनद की अनुभूति करा दे । वास्तव में संगीत न तो देखने के लिए है व न ही समझने के लिए यह केवल अनुभूति है, जिसे महसूस किया जाता है । जिस प्रकार एक बालक जिसे किसी भी विशय का ज्ञान नही, वह भी गीत सुनकर रोना छोड़कर हर्षित हो जाता है व

मुस्कुराने लगता है । संगीत सृष्टि द्वारा मनुश्य को प्राप्त सबसे खूबसूरत वरदान है । संगीत कला द्वारा ही मनुष्य अपनी ह्रदय के सूक्षम भावों को भी सुगमता से प्रकट कर सकता है । संगीत मनोहर कला है । संगीत के विशय में यह भी कहा गया है 'संगीत कं न मोह्येत' अर्थात संगीत किसको मोहित नही करता ।[2]

सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक जीवन के प्रत्येक पहलुओं के विकास में स्त्री तथा पुरूष का समान योगदान रहा है । वह चाहे समाजिक क्षेत्र हो, आर्थिक हो अथवा सास्ंकृतिक ! पुरूष प्रधान समाज में रहते हुए भी स्त्री के बिना समाज की उन्नति सम्भव ही नहीं है । यही स्थिती संगीत में भी है । विद्वानों के कथानुसार जब शिव ने क्रोधित होकर प्रल्यकारी ताण्डव नृत्य किया तो उन्हें शान्त करने के उदेश्य से माता पार्वती ने लास्य नृत्य किया था अतः संगीत में माधुर्य की स्थापना नारी ने ही की । भारतीय संगीत के विकास में महिलाओं की विषेश भूमिका रही है । जब हम शब्दों पर ध्यान देते है तो देखते है अधिकांश गीतों की षब्दा रचना नारी को केन्द्र में रख कर ही कि गई है । जैसेः– बिहाग राग की अत्यंत लोकप्रिय बंदिष

'लट उलझी सुलझा जा बालम
हाथ में मेरे मेहंदी लगी.....।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण भारतीय संगीत की प्रत्येक विधाओं ख्याल, ध्रुवपद, धमार व ठुमरी , दादरा , टप्पा , चित्रपट संगीत एवं लोकसंगीत में देखने को मिलते है इसके अतिरिक्त ग़ज़ल का अर्थ ही नारी सौन्दर्य में प्रयोग किए गए शब्द ही है एसा विद्वानों का कथन है ।

संगीत की अधिष्ठात्री वीणा वादिनी माँ सरस्वती ने ही नारद मुनि द्वारा तीनों लोंको में संगीत का प्रसार करवाया एवं संगीत सम्बन्धित किसी भी क्रार्यक्रम का आरम्भ माँ सरस्वती के स्मरण एवं स्तुति द्वारा ही किया जाता है , यह तथ्य भी संगीत के क्षेत्र में नारी प्रेरक शक्ति को सिद्ध करता है । वैदिक काल में भी अपाला, लोपामुद्रा, धोशा आदि कों संगीत का उत्तम ज्ञान था । महाकाव्य काल में राज्य सभाओं में भी संगीत कला में निपुर्ण महिलाओं को राज कलाकार के रूप में नियुक्त किया जाता था । गुलाम रसुल संगीतज्ञ ने तो संगीत का दुसरा रूप नारी को माना है ।

नारी ही संगीत है , जाके है दो रूप ।
एक रूप तो गीत है , दुजा नृत्य स्वरूप ।।[3]

बोद्ध साहित्य तथा जैन साहित्यों में नारियों द्वारा मधुर गायन का उल्लेख मिलता है। गुप्त काल जो भारतीय संगीत के इतिहास का स्वर्ण युग कहलाता है , इसी काल खण्ड के प्रसिद्ध काव्यों व नाटकों में वासवदत्ता और बसंतसेना नामक गायिकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है ।

गुप्त काल से मुगल काल भारतीय संगीत के पतन का समय रहा इस काल खण्ड में महिलाओं के बलिदानों की मर्म भेदी कथाए ही सामने आई किन्तु इस काल खण्ड में भी मीरा बाई जैसी वीरागना अवतरित हुई । मीरा बाई का जन्म उस काल खण्ड में हुआ जों संगीत का स्वर्णिम युग था उस समय में तानसेन , बैजू बावरा , गोपाल दास , कबीरदास आदि महान संगीतज्ञ हुए उस समय महिलाएं केवल घर में रहकर गायन व वादन करती थी किन्तु मीरा बाई ने सभी परमराओं को तोड़ते हुए साधु–सन्तों की मण्डलीयों में कृश्ण भक्ति के भजन गाएं, वे एक उत्तम कवियत्री व गायिका थी उनके भजन–

'हरितुम हरो जन की पीर ।
द्रौपदी ली लाज राखी , तुम बढाओ चीर '।।
'पग घुधरू बाँध मीरा नाची रे ।
मैं तो अपने नारायण की , हो गई आपही दासी रे ।[4]

आज भी शास्त्रीय गायन सभाओं में गाई जाती है । वास्तव में कहा जाए तो मीरा बाई ने आधुनिक काल के संगीत में महिलाओं को आगे बढने की प्रेरणा प्रदान की । शास्त्रीय संगीत की प्रत्येक गायन शैली में महिलाओं ने अपना योगदान दिया व उस गायन शैली को समृद्ध बनाया ।

ध्रुवपद गायन शैली :–

ध्रुवपद शब्द की रचना दो शब्दों ध्रुव+पद के मेल से हुई है ध्रुव का अर्थ है – शान्ति, सादगी , स्थिरता , आदि 'पद' शब्द गीत की पक्ति चरण तथा तुक का बोध कराता है । अतः ध्रुवपद का अर्थ है

जो परिवर्तित न किया जा सके । इसलिए ध्रुवपद का शाब्दिक अर्थ हुआ । वह पद जो निर्धारित और निश्चित है ।[5]

ध्रुवपद गायन शैली जो मुख्यत पुरूष कण्ठ के योग्य अथवा पुरूष प्रधान गायन शैली है, इस गायन शैली को भी बाई नार्वेकर , असगरी बाई , सुमति मुटाटकर , जैसी सुप्रसिद्ध गायिकाओं ने केवल गाया अपितु अनेक पुरस्कार भी अर्जित किए ।[6]

ख्याल गायन शैली :–

ख्याल वर्तमान युग की अत्यत लोकप्रिय विद्या है । ख्याल अरबी भाषा का शब्द है । जिसका अर्थ है – विचार , ध्यान , कल्पंना आदि ।

इस गायन शैली में राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी कल्पना एवं इच्छा से आलाप–तानों द्वारा विभिन्न भावों को प्रकट करते है और स्त्री भावों का प्रतिरूप है , इस गायन षैली में भी महिलाओं ने पुरुषों के साथ कन्धा मिलाकर अनेक ख्यालो का निर्माण किया व गायन भी किया । कुछ प्रमुख ख्याल गायिकाएं – ताराबाई शिरोडकर , अजंनी बाई मालपेकर , केसरबाई केरकर , श्रीमती मोधूबाई कुर्डीकर , श्रीमती हीरबाई बडौदकर , लक्ष्मीबाई बडौदकर , वर्तमान काल में श्रीमती गंगू बाई हंगल , श्रीमती सुषीला पोहनकर , श्रीमती मालविका कानन , श्रीमती किषोरी अमोणकर , लक्ष्मी षंकर , आप न केवल ख्याल अपितु ठुमरी भी अत्यंत मधुर गाती थी ।[7] परवीन सुल्ताना , सुमित्र गुहा , श्रीमती मालिनी राजुरकर आदि ख्याल गायिकाओं को सख्याओं में गिनना मुश्किल है क्योंकि अनेक महिला संगीतकरों ने षास्त्रीय संगीत की इस विद्या में योगदान दिया व ख्याती प्राप्त करने के अलावा पद्मश्री, पद्मविभूशण प्राप्त किए । आधुनिक समय में कौषिकी चक्रवर्ती , विजया जाधव गाटलीवार , ललित जे0 राव भी अत्यन्त प्रसिद्ध गायिकाएं ।

ठुमरी गायन शैली :–

ठुमरी उपशास्त्रीय संगीत की लोकप्रिय विधाओं में से एक उपशास्त्रीय संगीत , षास्त्रीय संगीत के कड़े बन्धनों से मुक्त परन्तु शास्त्रीय संगीत पर ही आधारित है । उपशास्त्रीय संगीत में षास्त्रीय नियमों की अपेक्षा भावों , रसों और सौन्दर्याभिव्यक्ति पर विषेश ध्यान दिया जाता है । उपशास्त्रीय संगीत के अर्न्तगत ठुमरी , दादरा , टप्पा आति है । इन गायन षैलियों ने जनसाधारण को अपनी तरफ अधिक आकर्शित किया है । ठुमरी गायन शैली में भावों की सूक्ष्मता , सुकुमारता पायी जाती है । इसमें षब्दों को भावों और कोमलता के साथ प्रस्तुत किया जाता है । ठुमरी एक माधुर्य गुण सम्पन्न श्रृंगारिक गेय विद्या है । इस शैली में स्वर व लय के साथ–साथ काव्य पक्ष का भी अत्यंत महत्व है । ठुमरी के विशय में विद्वानों की धारणा है – 19 वीं षताब्दी में 'उ0 वाजिद अली शाह' के समय लखनऊ दरबार में ठुमरी गान का प्रारंभ हुआ । ठुमरी गायन शैली राज दरबारों से आम जनतक पहुचीं व इस गायन की चंचलता व कोमलता पुर्वक स्वरों और शब्द रचना का प्रयोग सबको मोह गया – 'अख्तर पिया' की एक प्रसिद्ध ठुमरी इस प्रकार है :–

"बाबुल मोरा नैहर छुटोहि जाय ,
चार कहार मिल डोलिया उठावें
अपना बेगाना छूटो हि जाय "!

इस प्रसिद्ध ठुमरी का गायन लगभग सभी ठुमरी गायकों व गायिकाओं ने अपने–अपने अदांज में किया है । ठुमरी की षब्द रचना में राधा–कृश्ण की रास व होली खेलने का चित्रण भी संजीवता से दर्षाया जाता है । कुछ प्रसिद्ध ठुमरी गायिकाएं इस प्रकार है । जिन्होने ठुमरी गायन षैली को समृद्ध बनाने में अपना योग्दान दिया – बड़ी मैना , छोटी मोती बाई , षिव कुंवरबाई , जद्वनबाई , श्रीमति षान्ति हीरानन्द , पारूल बनर्जी , हुस्नाबाई , चुन्नाबाई , राजेष्वरी बाई , बडी मोती बाई , गोहरजान , बेगम अख्तर , रसूलन बाई , सिदेष्वरी देवी , गिरिजादेवी , वागेष्वरी देवी , श्रीमती निर्मला अरूण , षोभगुर्टू , सविता देवी , पूणिमा चौधरी , आदि प्रमुख रही ।[8] आदि गायिकओं ने न केवल ठुमरी अपितु अन्य उपषास्त्रीय गायन षैलियों को भी प्रसिद्धि प्रदान की ।

सुगम संगीत की गायन शैलियाँः–

सुगम संगीत वह संगीत कला है जिसे सहजता से गाया व बजाया जा सके । सुगम संगीत षास्त्रीय व उपषास्त्रीय संगीत की तरह नियमों में नहीं बधा है अपितु मानव मन की सहज अनुभूति इसमें व्याप्त है । सुगम संगीत जैसा नाम से ही ज्ञान होता है । सरल एवं सहजता से पाने योग्य अतः सुगम संगीत का अर्थ होगा वह संगीत जो सरल है , या जो मानव मन के भावों का परिणाम है वही सुगम संगीत कहलाता है ।[9]

ग़ज़ल , भजन व लोकगीत सुगम संगीत की क्षेणी में आते है । अपनी सहजता व सरलता के कारण सुगम संगीत आमजन में अत्यंत लोकप्रिय है । सुगम संगीत के अर्न्तगत ग़ज़ल , भजन , लोकगीत संगीत कलाएं आती है ।

ग़ज़ल गायन षैली के विशय में कहा जाता है –

''फिक्र मोमिन की , जुबा दाग की , गालिब का बयां
मीर का रंगे सुखन हो तो ग़ज़ल होती है ।
सिर्फ अल्फाज ही मोन नहीं पैदा करते
जज्बा–ए–ख़िदमते–फन हो तो ग़ज़ल होती है ।[10]

ग़ज़ल का मुख्य गुण दोहे व छन्द द्वारा थोड़े में बहुत कुछ कहने अथवा गागरं में सागर भरने का समर्थ निहित होता है । ग़ज़ल श्रृगांर व भाव प्रधान एक गायन विधा है । इसके विशय में रविन्द्रनाथ टैगोर जी ने कहा है – 'जिस षाष्वत सत्ता तक मैं पंखों के सहारे कदापि नहीं पहुंच सकता था, वहां ग़ज़ल गान के माध्यम से सलरता से पहुंच गया'।[11] ग़ज़ल गायन षैली में भी महिला कलाकरों ने उत्तम प्रदर्षन किया व प्रसिद्धि भी प्राप्त की उन में से कुछ मुख्य ग़ज़ल गायिकाएं इस प्रकार है – बेगम अख्तर (अखतरी बाई) , सीतारा कृष्ण कुमार ,सुरैया , सुनाली राठौड़ , अनीता सिधवी , पीनाज़ मसानी , चित्रा सिंह, राधिका चोपड़ा , आशा भोसले , लता मंगेशकर आदि । इन चर्चित ग़ज़ल गायिकाओं ने फिल्मों में भी ग़ज़ल गायन किया व ग़ज़ल के अतिरिक्त अन्य गायन विधाओं में भी प्रसिद्धि प्राप्त की।

भजन गायनशैली :–

ईश्वर अराधना सम्बंधित षब्द जो भक्ति व भाव पूर्ण हो और मन को शान्ति एवं पवित्र भावना से भर दे उन्हे भजन कहते है । भजन गायन षैली में अपना योग्दान देने वाली प्रमुख महिला कलाकार इस प्रकार है – अनुराधा पौडवाल , लता मंगेषकर , कविता पौडवाल , रूनकी गोस्वामी , रिचा षर्मा , मीरा बाई , शोभा अभ्यंकर , शिल्पा अनंत , बतूल बेगम , माता अमृतानंदमयी , बाम्बे जयश्री , बबला मेहता , अमृता सुरेश , स्वाति मिश्रा आदि ।[12] इन महान कलाकारों के भजनों में खोकर कोई भी स्वय के भीतर ही प्रभु से साक्षातकार कर ले।

लोकगीत गायन शैली : –

लोकसंगीत तो है ही , आम जन का संगीत जो पीढी दर पीढी एक मुख से दुसरे के ह्रदय में स्थान पाता रहा है लोकसंगीत की उत्पति व समृद्धि में महिलाओं का योगदान ही नही रहा अपितु लोक संगीत का निर्माण ही महिलाओं द्वारा हुआ । कहना अतिष्योक्ति नहीं होगी । अपने दैनिक जीवन के कार्यो को करते–करते मन की भावनाओं (खुषी–दुख, आदि सभी भाव) को स्वर , लय ,ताल में पिरोकर गायन करना यह गुण महिलाओं में ही

विद्धमान है , प्रत्येक प्रान्त–क्षेत्र विषेश का लोक संगीत भिन्न है, उसी प्रकार स्थान विशेष की लोक गायिकाएं भी भिन्न–भिन्न होगी जिसमें से कुछ इस प्रकार है – नवीन रंगियाल , षरदा सिन्हा , मलिनी अवस्थी , मैथिली ठाकुर , ममता चन्द्राकर , कल्पना पाटोवरी , मांगीवाई , गवरी देवी , अल्लाह जिलाई बाई नूरन बहने , इला अरूण , कल्पना पटोवरी , तेजन बाई , मालिनी अवस्थी आदि प्रमुख है ।

चित्रपट संगीत में महिला कलाकारों का योगदान :–

चित्रपट शब्द का अर्थ है वह पर्दा जिस पर चित्र उद्धर्त हो यानि जिस पर्दो पर चित्र उभरकर सामने प्रस्तुत किया जा सके । उसे चित्रपट कहते है व चित्रपट में प्रस्तुत किया गए गीतों को चित्रपट संगीत के नाम से संबोधित किया जाता है आम–बोल–चाल , में इसे फिल्मी गीत भी कहा जाता है । भारत में चित्रपट का आरम्भ 1913 राजा हरिषचन्द्र फिल्म से माना जाता है 1930–40 के दषक में जद्नबाई हुसैन ने पहली महिला म्यूजिक कंपोजर के रूप में भारतीय सिनेमा ज़गत में कार्य किया उस समय

भारतीय चित्रपट पर पूर्णत पुरूशों का अधिकार था यहा तक की कोई महिला हिरोइन भी सिनेमा जगत में कार्य नहीं करती थी अपितु पुरूशों द्वारा ही महिला कलाकार का किरदार निभाया जाता था । ऐसे समय में जद्वन बाई हुसैन ने अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुए चित्रपट संगीत में कार्य किया व महिला संगीतकारों के लिए मार्ग प्रषस्त किया । उस समय से आधुनिम समय तक अनेक महिला गायिकाओं ने चित्रपट संगीत में अपना योग्दान दिया जिन में से कुछ इस प्रकार है – सरस्वती देवी पहली गायिका , एम.एस सुब्बालक्ष्मी , आरती मुखर्जी , अंजलि मराठें , आषा भोसले , अंतरा मिश्रा , पी. भानुमति , चारूलता माणि , फाल्गुनी पाठक , गीतादत्त , कविता कृश्ण मुर्ति , लता मंगेषकर , महालक्ष्मी अय्यर , नेहा कक्कड़ , निहिरा जोषी , उशा उत्थुप , आदि आप सभी महिला कलाकारों ने न केवल हिन्दी चित्रपट संगीत अपितु , तमिल , तेलुगु , असमिया , मराठी , गुजराती , पंजाबी , अग्रेंजी , कनंड़ ,उड़िया , मलयालम ,गीतों का भी गायन कर इस कला को समृद्धि प्रदान की ।

निष्कर्ष:–

भारतीय संगीत कला की प्रत्येक विधा को समृद्धि प्रदान करने में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । संगीत कला के क्षेत्र में कार्य करना महिलाओं के लिए सरल नहीं रहा । पुरूष प्रधान समाज में संगीत कला पर पुरूशों का ही वर्चस्व प्रारम्भ से ही रहा , महिलाओं ने भी पुरूशों के कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रत्येक सामाजिक क्षेत्र की तरह संगीत कला में भी अपना सहियोग दिया व संगीत कला की विविद्य विधाओं को अपने भावपूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्त कर समृद्ध बनाया । संगीत कला की प्रत्येक विधा में महिला कलाकारों ने उतम प्रदर्षन किया व अनेक पुरस्कर भी अर्जित किए । वास्तव में कहा जाए तो संगीत की मधुर स्वर लहरियों को माधुर्य व भावंनात्मक्ता महिला कालकारों द्वारा ही प्राप्त हुई है, व संगीत कला को समृद्धि प्रदान करने में महिला कलाकारो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रमाकान्त दिवेद्वी , संगीत स्वरित , साहित्य रत्नालय , कानपुर 208001 प्रथम संस्करण 2004.
2. मधुबाला सक्सेना , भारतीय षिक्षा प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर , हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डिगढ़ , प्रथम संस्करण , 1990.
3. डॉ. अनिल कुमार शर्मा , भारतीय संगीत और नारी , (।तजपबंस)
4. डॉ. स्वतन्त्र शर्मा , उत्तर भारतीय संगीत में महिला संगीतकारों का योगदान , इलाहबाद विश्वविद्यालय , इलाहबाद , प्रथम संस्करण , 2002.
5. डॉ. श्री मति मृदुलापुरी , संगीत मीमांसा , सत्यम पब्लिशिंग , नई दिल्ली , प्रथम संस्करण–2007,
6. अषोक कुमार 'यमन' संगीत रत्नावली , अभिशेक पब्लिकेशन्स चण्डिगढ़ , प्रथम संस्करण , 2008.
7. डॉ. सत्यवती शर्मा , ख्याल गायन शैली विकसित आयाम , पंचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी जयपुर , प्रथम संस्करण, 1994.
8. डॉ. सीमा वालिया , स्वर वाद्यों के वादन में ठुमरी और धुन , संजय प्रकाशन , मुरारी लाल अंसारी रोड़ , दरियागंज , नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 2007.
9. डॉ. उमाशंकर , आधुनिक गीतकाव्य , वीणा प्रकाशन दरियागंज , नई दिल्ली , प्रथम संस्करण ,1097.
10. अंजली पोहकर , सफर ठुमरी गायकी का , कनिष्ट पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली , प्रथम संस्करण , 2009.
11. डॉ. शान्ति जैन , लोकगीतों के सदर्भ और आयाम , विश्वविद्यालय वाराणसी , प्रथम संस्करण , 1999.
12. डॉ. गुरमित सिंह ,उत्तर भारतीय संगीत , महामाया पब्लिशिंग हाऊस , नई दिल्ली प्रथम संस्करण , 2002.

rachnakaushik50@gmail.com

दुरभाष न0:– 9416480658

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 May 2025 Page No. : 223-226
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भूगोल एक विज्ञान के रूप में

अन्नू यादव, भूगोल प्रवक्ता,
बाबा खेतानाथ महिला विद्यापीठ भीटेड़ा, बहरोड़

भूगोल पृथ्वी के भौतिक और सांस्कृतिक वातावरण का स्थानिक अध्ययन है। भूगोलवेत्ता पृथ्वी की भौतिक विशेषताओं, निवासियों और संस्कृतियों, जलवायु जैसी घटनाओं और ब्रह्मांड में पृथ्वी के स्थान का अध्ययन करते हैं। भूगोल सभी भौतिक और सांस्कृतिक घटनाओं के बीच स्थानिक संबंधों की भी जांच करता है। इसके अलावा, भूगोलवेत्ता यह भी देखते हैं कि सांस्कृतिक हस्तक्षेप के कारण पृथ्वी, इसकी जलवायु और इसके परिदृश्य कैसे बदल रहे हैं। भूगोल बहुत से लोगों की समझ से कहीं अधिक व्यापक क्षेत्र है। अधिकांश लोग क्षेत्र अध्ययन को भूगोल का संपूर्ण भाग मानते हैं। भूगोल पृथ्वी का अध्ययन करता है, जिसमें यह भी शामिल है कि मानव गतिविधि ने इसे कैसे बदला है। भूगोल में पृथ्वी के भू-आकृतियों के आकार को समझने से कहीं अधिक व्यापक अध्ययन शामिल हैं। भौतिक भूगोल ग्रह की सभी भौतिक प्रणालियों को प्रभावित करता है। मानव भूगोल में मानव संस्कृति, स्थानिक संबंध, मानव और पर्यावरण के बीच अंतःक्रिया और भूगोल की विभिन्न उप-विशेषताओं से जुड़े कई अन्य शोध क्षेत्रों का अध्ययन शामिल है। भूगोल में करियर बनाने में रुचि रखने वाले छात्रों के लिए भू-स्थानिक तकनीक सीखना तथा जीआईएस और सुदूर संवेदन में कौशल और अनुभव प्राप्त करना अच्छा रहेगा, क्योंकि भूगोल के अंतर्गत ये वे क्षेत्र हैं जहां पिछले कुछ दशकों में रोजगार के अवसर सबसे अधिक बढ़े हैं।

भूगोल के विषय

भूगोल हमें चार ऐतिहासिक परंपराओं के माध्यम से दुनिया को समझने में मदद करता है। स्थानिक विश्लेषण में भू-स्थानिक प्रौद्योगिकी से जुड़ी कई अवधारणाएँ शामिल हैं: भौगोलिक सूचना प्रणाली, उपग्रह इमेजरी, हवाई फोटोग्राफी और ड्रोन, वैश्विक स्थिति निर्धारण प्रणाली, और अधिक जैसे स्थानिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करके भौतिक और मानवीय वातावरण की अंतःक्रियाओं और वितरण पैटर्न का अध्ययन और विश्लेषण। पृथ्वी विज्ञान में भू-आकृतियों, जलवायु और पौधों और जानवरों के वितरण का अध्ययन शामिल है। क्षेत्रीय अध्ययन मानव

गतिविधि और पर्यावरण के बीच एक विशिष्ट अंतःक्रिया की गतिशीलता को समझने के लिए एक विशेष क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित करते हैं। मानव-पर्यावरण अंतःक्रिया का अध्ययन करने वाले शोधकर्ता अपने परिदृश्य पर मनुष्यों के प्रभाव की जांच करते हैं और पता लगाते हैं कि विभिन्न संस्कृतियों ने अपने पर्यावरण का उपयोग और परिवर्तन कैसे किया है। भूगोल प्राकृतिक या मानवीय घटनाओं को स्थान की भावना देकर कई विषयों से ज्ञान को एक उपयोगी रूप में एकीकृत करने के लिए उपकरण प्रदान करता है। भूगोल अक्सर यह बताता है कि किसी विशिष्ट स्थान पर कुछ क्यों या कैसे होता है। विश्व भूगोल हमारे वैश्विक समुदाय के घटकों को समझने में मदद करने के लिए स्थानिक दृष्टिकोण का उपयोग करता है।

भूगोल के अनुशासन को तीन मूलभूत क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है: भौतिक भूगोल, मानव भूगोल और विश्व क्षेत्रीय भूगोल। ये आवश्यक क्षेत्र इस मायने में समान हैं कि वे स्थानिक परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हैं, जिसमें स्थान का अध्ययन करना और एक स्थान की दूसरे स्थान से तुलना करना शामिल है।

भौतिक भूगोल

भौतिक भूगोल प्राकृतिक घटनाओं का स्थानिक अध्ययन है जिसमें पर्यावरण शामिल है, जैसे नदियाँ, पहाड़, भू-आकृतियाँ, मौसम, जलवायु, मिट्टी, पौधे और पृथ्वी की सतह के अन्य भौतिक पहलू। भौतिक भूगोल पृथ्वी विज्ञान के एक रूप के रूप में भूगोल पर ध्यान केंद्रित करता है। यह ग्रह के मुख्य भौतिक भागों - स्थलमंडल (सतह परत), वायुमंडल (वायु), जलमंडल (जल) और जीवमंडल (जीवित जीव) - और इन भागों के बीच संबंधों पर जोर देता है।

कुछ शोधकर्ता एक उभरते हुए क्षेत्र में पर्यावरण भूगोलवेत्ता हैं जो प्राकृतिक पर्यावरण के स्थानिक पहलुओं और सांस्कृतिक धारणाओं का अध्ययन करते हैं। पर्यावरण भूगोल के लिए भौतिक और मानव भूगोल दोनों की समझ की आवश्यकता होती है, साथ ही यह भी समझना होता है कि मनुष्य अपने पर्यावरण और भौतिक परिदृश्य की अवधारणा कैसे बनाते हैं।

भौतिक परिदृश्य शब्द का इस्तेमाल ग्रह पर किसी एक स्थान पर प्राकृतिक भूभाग का वर्णन करने के लिए किया जाता है। कटाव, मौसम, टेक्टोनिक प्लेट क्रिया और पानी की प्राकृतिक शक्तियों ने पृथ्वी की भौतिक विशेषताओं का निर्माण किया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कई राज्य और राष्ट्रीय उद्यान जनता के लिए अद्वितीय भौतिक परिदृश्यों को संरक्षित करने का प्रयास करते हैं, जैसे कि येलोस्टोन, योसेमाइट और ग्रैंड कैन्यन।

मानव भूगोल

मानव भूगोल मानव गतिविधि और पृथ्वी की सतह के साथ उसके संबंधों का अध्ययन करता है। मानव भूगोलवेत्ता मानव आबादी, धर्म, भाषा, जातीयता, राजनीतिक व्यवस्था, अर्थशास्त्र, शहरी गतिशीलता और मानव गतिविधि के अन्य घटकों के स्थानिक वितरण की जांच करते हैं। वे मानव संस्कृतियों और विभिन्न वातावरणों के बीच बातचीत के पैटर्न का अध्ययन करते हैं और

परिदृश्य पर मानव बस्ती और वितरण के कारणों और परिणामों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। जबकि मानवता के आर्थिक और सांस्कृतिक पहलू मानव भूगोल का प्राथमिक फोकस हैं, इन पहलुओं को उस परिदृश्य का वर्णन किए बिना नहीं समझा जा सकता है जिस पर आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ होती हैं।

सांस्कृतिक परिदृश्य शब्द का उपयोग पृथ्वी की सतह के उन हिस्सों का वर्णन करने के लिए किया जाता है जिन्हें मनुष्यों ने बदला या बनाया है। उदाहरण के लिए, किसी शहर के शहरी सांस्कृतिक परिदृश्य में इमारतें, सड़कें, संकेत, पार्किंग स्थल या वाहन शामिल हो सकते हैं। इसके विपरीत, ग्रामीण सांस्कृतिक परिदृश्य में खेत, बाग, बाड़, खलिहान या खेत शामिल हो सकते हैं। किसी दिए गए स्थान के लिए अद्वितीय सांस्कृतिक ताकतें - जैसे धर्म, भाषा, जातीयता, रीति-रिवाज या विरासत - किसी दिए गए समय में उस स्थान के सांस्कृतिक परिदृश्य को प्रभावित करती हैं। सांस्कृतिक परिदृश्य के रंग, आकार और आकृतियाँ आमतौर पर सामाजिक मानदंडों के संबंध में कुछ महत्व का प्रतीक हैं। स्थानिक गतिशीलता स्थानों के बीच सांस्कृतिक अंतरों की पहचान करने और उनका मूल्यांकन करने में सहायता करती है।

विश्व क्षेत्रीय भूगोल

विश्व क्षेत्रीय भूगोल दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करता है क्योंकि वे बाकी दुनिया के साथ तुलना करते हैं। तुलना के कारकों में भौतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य दोनों शामिल हैं। मुख्य प्रश्न हैं, "वहाँ कौन रहता है? उनका जीवन कैसा है? वे जीविका के लिए क्या करते हैं?" महत्व के भौतिक कारकों में स्थान, जलवायु प्रकार और भूभाग शामिल हो सकते हैं। मानवीय कारकों में सांस्कृतिक परंपराएँ, जातीयता, भाषा, धर्म, अर्थशास्त्र और राजनीति शामिल हैं।

विश्व क्षेत्रीय भूगोल पृथ्वी के परिदृश्य में विभिन्न आकारों के क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करता है और प्राकृतिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के संदर्भ में क्षेत्रों के अद्वितीय चरित्र को समझने की आकांक्षा रखता है। क्षेत्रीय भूगोल में स्थानिक अध्ययन एक आवश्यक भूमिका निभा सकते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण विभिन्न प्राकृतिक और सांस्कृतिक कारकों द्वारा सीमांकित क्षेत्रों के भीतर सांस्कृतिक और प्राकृतिक घटनाओं के वितरण पर ध्यान केंद्रित कर सकता है। अध्ययन के किसी भी क्षेत्र, जैसे क्षेत्रीय अर्थशास्त्र, संसाधन प्रबंधन, क्षेत्रीय नियोजन और परिदृश्य पारिस्थितिकी के भीतर स्थानिक संबंधों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

विश्व क्षेत्रीय भूगोल में अध्ययन किए गए क्षेत्रों को अधिक महत्वपूर्ण भागों में संयोजित किया जा सकता है जिन्हें क्षेत्र कहा जाता है। क्षेत्र ग्रह के बड़े क्षेत्र हैं, जिनमें आमतौर पर सटीक सामान्य भौगोलिक स्थान वाले कई क्षेत्र होते हैं। क्षेत्र प्रत्येक क्षेत्र के भीतर एकजुट क्षेत्र होते हैं।

भूगोल और जीआईएस में करियर

भूगोल राजधानियों, देशों, नदियों, पर्वत श्रृंखलाओं और बहुत कुछ को अंतहीन रूप से याद करने का विषय नहीं है। यह विषय हमारे भौतिक और सांस्कृतिक वातावरण के स्थानिक और लौकिक वितरण, कनेक्शन और पैटर्न का वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण करता है।

भूगोल में करियर के बारे में निम्नलिखित जानकारी एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन जियोग्राफर्स (AAG) की वेबसाइट से ली गई है, जो भूगोल में रोजगार पाने के इच्छुक लोगों के लिए एक संसाधन है। Esri भू-स्थानिक तकनीकों का उपयोग करने वाले उद्योगों के बारे में भी बहुत सारी जानकारी प्रदान करता है।

कई व्यवसायों में भूगोल के ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है। भूगोलवेत्ता कई क्षेत्रों में काम करते हैं, जैसे पर्यावरण प्रबंधन, शिक्षा, आपदा प्रतिक्रिया, शहर और काउंटी नियोजन, सामुदायिक विकास, और बहुत कुछ। भूगोल एक अंतःविषय क्षेत्र है जो विविध कैरियर के अवसर प्रदान करता है।

कई भूगोलवेत्ता व्यवसाय, स्थानीय, राज्य या संघीय सरकारी एजेंसियों, गैर-लाभकारी संगठनों और स्कूलों में पुरस्कृत करियर बनाते हैं। स्नातक (मास्टर और डॉक्टरेट) डिग्री वाले भूगोलवेत्ता उच्च शिक्षा (सामुदायिक कॉलेज और विश्वविद्यालय) में शिक्षक बन सकते हैं।

जीपीएस, वेब-आधारित मैपिंग तकनीक, सैटेलाइट इमेजरी और अब छोटे मानव रहित हवाई सिस्टम - जिन्हें ड्रोन भी कहा जाता है - जैसी आधुनिक लोकेशन तकनीक की वजह से जियोस्पेशियल तकनीक में करियर तेजी से बढ़ रहे हैं। अमेरिकी श्रम विभाग ने नेशनल जियोस्पेशियल टेक्नोलॉजी सेंटर फॉर एक्सीलेंस के साथ साझेदारी में जियोस्पेशियल टेक्नोलॉजी कॉम्पिटेंसी मॉडल (GTCM) बनाया है, ताकि उद्योग को यह निर्धारित करने में मदद मिल सके कि इस करियर पथ में सफल होने के लिए किस ज्ञान और कौशल की आवश्यकता है। जीआईएस में वैश्विक नेता, पर्यावरण प्रणाली अनुसंधान संस्थान (ESRI) ने जियोस्पेशियल प्रौद्योगिकी उद्योगों के लिए एक उत्कृष्ट संसाधन बनाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. दत्त और सुंदरम (2011)। भारतीय अर्थव्यवस्था। नई दिल्ली-110055। एस. चंद एंड कंपनी लिमिटेड।
2. अग्रवाल ए.एन. (2007). भारतीय अर्थव्यवस्था-विकास और नियोजन की समस्याएं. नई दिल्ली-110002. न्यू एज इंटरनेशनल (पी) लिमिटेड.
3. पॉल जस्टिन (2009)। बिजनेस एनवायरनमेंट-टेक्स्ट एंड केस। नई दिल्ली-110008। टाटा मैक्ग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड।
4. अग्रवाल राज (2006)। बिजनेस एनवायरनमेंट। नई दिल्ली-110028। एक्सेल बुक्स।